पौराणिक वाङ्मय में निरूपित अयोध्या : एक समीक्षात्मक अनुशीलन

लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ की पी-एच्०डी० (संस्कृत)
उपाधि-हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक

डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधच्छात्र

विनय कुमार पाण्डेय
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
वर्ष-२०२२

पौराणिक वाङ्मय में निरूपित अयोध्या : एक समीक्षात्मक अनुशीलन

लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ की पी-एच्०डी० (संस्कृत)
उपाधि-हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक

डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधच्छात्र

विनय कुमार पाण्डेय
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
वर्ष-२०२२

उपसंहार

पौराणिक वाङ्मय के महत्त्व के विषय में जितना भी कहा जाय कम है। वेदों के गूढ़तम् अर्थ को पुराणों में अत्यन्त सहज तथा सरस रूप में वर्णित किया गया है जो साधारण जनमानस को पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पालन क लिए सहज ही प्रेरित करता है। पुराणों में जिस प्रकार से धर्म–अधर्म, पुण्य–पाप, कर्म–अकर्म, उत्तम मानवीय गुण जैसे दया, दान, शौच, तप, त्याग, सेवा, सहनशीलता को उदाहरण के माध्यम से समझाया गया है, ऐसा विश्व साहित्य में कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता।

पुराणों की व्यवहारिक भाषा के द्वारा जहाँ मानव का क्लान्त मन विश्रान्ति प्राप्त करता है वहीं अनेकों प्रकार की सामाजिक एवं व्यवहारिक शिक्षा प्राप्त कर लेता है। पुराणों में सर्वसामान्य के जीवन की दैनन्दिन उपयोगिताओं से सम्बन्धित आख्यानों का वर्णन किया गया है। पुराणकार ने मनुष्य के जीवन के लिए कल्याणकारी बिन्दुओं को कहीं न कहीं स्पर्श अवश्य किया है जिससे प्राणियों के सर्वाङ्गीण विकास का मार्ग प्रशस्त हो सका। इस प्रकार पुराणों को सूर्य प्रकाश की भाँति समझा जा सकता है जो अंधेरे में भटके प्राणियों के जीवन को प्रकाशित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ। पुराणों में मनुष्य को सर्वाङ्गीण विकास के लिए अनेकों प्रकार के साधन बताये गये हैं जिनमें तीर्थ यात्रा का प्रमुखता से वर्णन किया गया है। अनेकों प्रकार के यज्ञों से मनुष्य को जो फल प्राप्त होता है वह फल तीर्थ यात्रा करके मनुष्य को सहजता से प्राप्त हो जाता है। तीर्थों की अत्यन्त महिमा है। तीर्थ यात्रा में जाकर मनुष्य स्वयं देवमय हो जाता है क्योंकि तीर्थ स्थानों में एक तो देवता या ऋषि विशेष का अंश शक्ति रूप में होता है तथा वहाँ निवास करने वाले ऋषि–मुनियों सदाचारी मनुष्यों के सत्सङ्ग से भी मनुष्य को अनेकानेक लाभ प्राप्त होते हैं।

प्राचीनकाल से ही तीर्थों की भूमि परम पवित्र मानी जाती है, वहाँ का वातावरण परम पवित्र होता है। तीर्थों में धार्मिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए मनुष्यों को सभी प्रकार से सहायता प्राप्त होती है क्योंकि तीर्थ इन सबके केन्द्रबिन्दु के रूप में होते हैं। तीर्थों में वैदिक एवं पौराणिक परम्पराओं के पालन सम्बन्धी क्रिया–कलापों के द्वारा एक आध्यात्मिक तथा धार्मिक वातावरण का सृजन हो जाता है, जहाँ पहुँचकर मनुष्य स्वयं को एक उच्च स्तर पर अवस्थित करने का प्रयास करता है, जो उसके तीर्थस्थल से लौटने के पश्चात् भी उसी प्रकार से मानवीय चेतना में रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है। तीर्थस्थल पर पहुँचकर मनुष्य के समस्त पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार स्वयमेव नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही जगत् गुरू की उपाधि से विभूषित रहा है क्योंकि कि यहाँ पर स्वयं श्री भगवान् का अवतरण हुआ है। देवता भी यहाँ जन्म लेने के लिए लालायित रहते हैं। वैसे तो सम्पूर्ण भारतभूमि तीर्थमय है परन्तु उसमें भी कुछ स्थान विशेष का अत्यधिक महत्त्व है। ऐसे ही महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थलों में अयोध्या परम पावन तीर्थस्थल है जहाँ पर स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने अवतार लिया तथा विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों को मानवता की शिक्षा प्रदान की।

अयोध्या को वैदिक काल से ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भगवान् श्री रामचन्द्र जी के अयोध्या शासन काल में समस्त प्रजा अत्यन्त सुखी तथा आनन्दित थी। मनुष्यों की कभी अकाल मृत्यु नहीं होती थी। कहीं पर रोग आदि का प्रकोप नहीं होता था। अयोध्या नगरी अपने पूर्ण वैभव पर थी। सम्पूर्ण राष्ट्र में सदा हरी–भरी खेती लहराती थी। जहाँ सुगमतापूर्वक यात्रा की जा सके ऐसे क्षेत्रों से वह देश हरा–भरा हुआ था। उस राज्य का देश सुन्दर तथा प्रजा उत्तम थी। सब लोग स्वस्थ रहते थे, गौएं अधिक थीं तथा सब प्रकार से हृष्ट–पुष्ट थीं। स्थान–स्थान पर देव मन्दिरों की श्रेणियाँ अयोध्या की

शोभा बढ़ाती थीं। अयोध्या में सभी गाँव भरे–पूरे और धन–सम्पत्ति से सुशोभित थे। वाटिकाओं में सुन्दर–सुन्दर पुष्प शोभा पाते थे और वृक्षों में स्वादिष्ट फल लगते थे, तालाब कमलों से परिपूर्ण सुशोभित होते थे।

अयोध्या के राजप्रासाद अत्यन्त भव्य थे। राजपथ सदैव साफ–सुथरे तथा बृहद् थे। बाजारों में सदैव चहल–पहल रहती थी। राज्य व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी। भगवान् राम के पूर्वज अर्थात् वे राजा जिन्होंने पूर्व में अयोध्या पर शासन किया था उन्होंने राज्य व्यवस्था की पूरे मनोयोग से देखभाल की थी तथा राजकोष को भी सुसम्पन्न किया था।

अयोध्या की सम्पूर्ण प्रजा भी अपने–अपने धर्म का पूर्ण मनोयाग से पालन करती थी। चारों वर्णों के लोग अपनी–अपनी वर्णव्यवस्था में निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करते हुए पुरुषार्थ चतुष्ट्य का अनुगमन करते थे।

नगर–निर्माण कला का जिस प्रकार का वर्णन पौराणिक तथा लौकिक साहित्य में प्राप्त होता है, उससे यह पता चलता है कि अयोध्या प्राचीनकाल से ही नगरीय सभ्यता की जननी रहा होगा। भौगोलिक, राजनीतिक तथा प्राकृतिक दृष्टिकोण से भारतवर्ष के अत्यन्त सुसम्पन्न क्षेत्र में अयोध्या नगरी स्थित है।

धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक रूप में देखा जाये तो अयोध्या ने समस्त संसार को शिक्षा प्रदान की है। सनातन धर्मियों के लिए तो यह धार्मिक केन्द्रबिन्दु रहा ही है अपितु बौद्ध धर्म के लिए भी यहीं से प्रकाशपुञ्ज बिखरा जिसने विश्व के अनेक देशों को आलोकित किया।

जैन ग्रन्थों में अयोध्या को प्रथम नगरी के रूप में वर्णन स्वयमेव अयोध्या के महत्त्व को प्रकाशित करता है। मध्यकाल में सिख धर्म के प्रथम गुरु

नानकदेव, नौवें गुरु तेग बहादुर एवं दसवें गुरु गोविन्द सिंह इस धरती को पवित्र कर चुके हैं। उनकी पावन स्मृतियों में यहाँ गुरुद्वारे भी हैं।

यहाँ पर प्राचीनकाल में वेद विद्या में पारङ्गत ब्राह्मण निवास करते थे, स्वयं वसिष्ठ, वाल्मीकि जैसे विद्वानों की अयोध्या आश्रय स्थली रही है। वर्तमान् समय में भी अनेक अखाड़े तथा छावनियाँ हैं जिनमें धार्मिक क्रिया–कलाप तथा सनातन संस्कृति का रक्षण एवं अभिवर्धन सतत् प्रयत्नशील रहता है।

अतः अयोध्या नगरी की विशिष्टता के सन्दर्भ को दृष्टिगत करते हुए अनेक क्षेत्रों में शोध की सम्भावनाएँ पायी जाती हैं। अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं ने शासन किया जिनके चरित्र तथा समाज में योगदान पर शोध सम्भव है। अयोध्या भारतीय समाज की अमूल्य धरोहर पर शोध कार्य अवश्यम्भावी होना सार्थक सिद्ध होगा।

इस प्रकार पौराणिक वाङ्मय में अयोध्या का यत्र–तत्र–सर्वत्र किसी न किसी रूप में वैभव वर्णन प्राप्त है जिसके अन्वेषण से यह विदित होता है कि प्राचीनकाल से ही अयोध्या नगरी पूर्णतयः सुसम्पन्न थी तथा इस नगरी ने सम्पूर्ण विश्व को शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान की। समय–समय पर इसके वैभव में कुछ उतार–चढ़ाव देखने को अवश्य प्राप्त हुए परन्तु प्राचीनकाल से आद्यतन इसकी महिमा में कमी नहीं आयी। यह नगरी समस्त धर्मों को स्वयं में समेटे है तथा सभी धर्मों की आस्था की सङ्गमस्थली के रूप में विद्यमान् है तथा हम सभी का यह कर्त्तव्य बनता है कि सनातन संस्कृति की रक्षा तथा अभिवर्धन हेतु अयोध्या के महत्त्व को समझें तथा इसके सम्वर्धन हेतु प्रयास करें।

*****

संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ–225007
उत्तर प्रदेश

घोषणा–पत्र

मैं **विनय कुमार पाण्डेय** शोधच्छात्र संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ घोषणा करता हूँ कि मैंने संस्कृत विषय में "Doctor of Philosophy" की उपाधि हेतु **"पौराणिक वाङ्मय में निरूपित अयोध्या : एक समीक्षात्मक अनुशीलन"** शीर्षक पर शोध–कार्य पूर्ण किया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध **डॉ0 प्रयाग नारायण मिश्र**, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के दिशा–निर्देशन में संरचनात्मक स्वरूप को प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में प्रयुक्त तथ्य एवं सङ्कलित सहायक सामग्री स्वतंत्र एवं पूर्णतया मौलिक हैं। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में जिन ग्रन्थों के भावों एवं विचारों की सहायता ली गई है, उनका सन्दर्भ सङ्केत शोध–प्रबन्ध में यथास्थान प्रदर्शित किया गया है। प्रस्तुत शोध–अध्ययन में लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के साथ–साथ प्रदेश के विभिन्न पुस्तकालयों एवं इंटरनेट से सङ्कलित सहायक सामग्री को समाहित किया गया है।

दिनाङ्क : **शोधच्छात्र**

स्थान : लखनऊ

विनय कुमार पाण्डेय

संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र
(एम0ए0, पी–एच्.डी.)
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ



संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ–225007
उत्तर प्रदेश

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **विनय कुमार पाण्डेय आत्मज श्री बाबूलाल पाण्डेय** शोधच्छात्र संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ ने मेरे निर्देशन में **"पौराणिक वाङ्मय में निरूपित अयोध्या : एक समीक्षात्मक अनुशीलन"** विषय पर शोध–कार्य सम्पन्न किया है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इनके मौलिक अनुसन्धान की परिणति है। इन्होंने शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत करने हेतु विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि एवं सभी अर्हताएँ समय–समय पर पूर्ण की हैं।

मैं इस शोध–प्रबन्ध को संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ की पी–एच्.डी. उपाधि हेतु परीक्षणार्थ अग्रसारित करता हूँ तथा इनके उज्ज्वल एवं मङ्गलमय भविष्य की कामना करता हूँ।

दिनाङ्क : **शोध–निर्देशक**

स्थान :

(डॉ0 प्रयाग नारायण मिश्र)
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

प्राक्कथन

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष विश्व गुरु की उपाधि से विभूषित रहा है क्योंकि भारतवर्ष ने सदैव सम्पूर्ण विश्व को मानवता की शिक्षा प्रदान की है। भारत भूमि सदैव से परम पवित्र मानी जाती रही है। देवता भी यहाँ जन्म लेने के लिए उत्सुक रहते हैं। यद्यपि भारतवर्ष की पवित्र भूमि का प्रत्येक कण पवित्र है तथापि कतिपय स्थान अत्यन्त पवित्र माने गये हैं। वैदिक तथा पौराणिक वाङ्मय में इन स्थानों को तीर्थ संज्ञा प्रदान की गयी है। पुराणों में तीर्थ की महिमा का अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन किया गया है। इन समस्त तीर्थों में अयोध्या एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थ है जिसकी गणना मोक्षदायिनी सप्तपुरियों में होती है तथा जो मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की जन्म भूमि है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अनेक वर्षों से श्रीराम की जन्म भूमि विवादों में रही अतः इसके महत्त्व को देखते हुए प्राचीन नगरीय सभ्यता की जननी अयोध्या के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व पर शोध–कार्य करने की जिज्ञासा मन में जाग्रत हुई।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को 4 परिशिष्टों सहित 9 अध्यायों में विभक्त करके अयोध्या से सम्बन्धित पौराणिक वैभव के विभिन्न परिदृश्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है–

प्रथम अध्याय "संस्कृत वाङ्मय में पुराण तथा पौराणिक वाङ्मय" के अन्तर्गत पुराणों का महत्त्व, उनकी सङ्ख्या तथा उनमें प्रतिपादित विषयवस्तु का सङ्क्षिप्त वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय "पुराणों में तीर्थ प्रशस्ति तथा श्रीराम सङ्कीर्तन में इतिहास तथा पुराण" ग्रन्थों के अन्वेषण द्वारा तीर्थ की महत्ता तथा श्रीराम सङ्कीर्तन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय "अयोध्या का पौराणिक तथा ऐतिहासिक वैभव" के अन्तर्गत पौराणिक वाङ्मय के अन्वेषण से प्राप्त महत्त्वपूर्ण तथ्यों के द्वारा अयोध्या के पौराणिक तथा ऐतिहासिक वैभव का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय "पुराणोल्लिखित श्रीराम मन्दिर तथा अयोध्या का देव प्रासाद वैभव" का वर्णन शोधार्थी द्वारा शोध स्थल के निरीक्षण तथा इतिहास एवं पुराण ग्रन्थों के अनुशीलन द्वारा किया गया है।

पञ्चम अध्याय "अयोध्या के प्रसिद्ध तीर्थ, दर्शनीय स्थल तथा परिक्रमा प्रशस्ति" का वर्णन शोधार्थी द्वारा विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों, अयोध्या से सम्बन्धित पुस्तकों तथा शोध–स्थल निरीक्षण के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय "अयोध्या की राजनैतिक, भौगालिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि" का सङ्क्षिप्त वर्णन इतिहास एवं पुराण ग्रन्थ तथा विभिन्न सहायक पुस्तकों के विशिष्ट आलोक में प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम अध्याय "अयोध्या का धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व" को शोधार्थी द्वारा विभिन्न पुराणों, ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा सम्बन्धित संस्कृत के अन्यान्य ग्रन्थों के मार्गदर्शन से वर्णित किया गया है।

अष्टम अध्याय "अयोध्या के शैक्षिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व" के विषय में पौराणिक वाङ्मय के अनुशीलन से शोधार्थी द्वारा सङ्क्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

नवम अध्याय के अन्तर्गत "पौराणिक वाङ्मय में वर्णित अयोध्या के साम्प्रतिक वैशिष्ट्य" के साथ–साथ ग्रन्थ का **'उपसंहार'** शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

शोध–प्रबन्ध के अन्त में 4 **'परिशिष्टों'** के अन्तर्गत अयोध्या के प्रसिद्ध देव–प्रासाद स्थलों की सूची तथा यथोपलब्ध चित्र, अयोध्या की राजवंशावली तथा अयोध्या की प्रमुख संस्थाएँ एवं आचार्य परम्परा से सम्बन्धित सूचियाँ सन्दर्भ ग्रन्थ सहित प्रस्तुत की गयीं हैं।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में वर्णित विषयवस्तु के सन्दर्भ में शोधार्थी द्वारा यथा सामर्थ्य त्रुटिविहीन तथा तथ्यपरक विषयवस्तु प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तथापि यदि त्रुटियाँ रह गयी हैं तो जिज्ञासु विद्वद्गण उसे मानवीय त्रुटि समझकर यथावश्यक परामर्श सहित क्षमा करने की कृपा करें।

शोधार्थी उन समस्त ऋषियों, आचार्यों तथा महाकवियों का ऋणी है जिनके ग्रन्थों की ज्ञानराशि का उपयोग प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में किया गया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध पर कार्य करने की जिज्ञासा दीर्घकाल से मेरे मन में थी, सौभाग्यवश तत्कालीन संस्कृत विभागाध्यक्ष सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, विविध विद्या विशारद परम सिद्ध आचार्य गुरुप्रवर पद्मश्री प्रो0 बृजेश कुमार शुक्ल जी की प्रेरणा, मार्गदर्शन, आशीर्वाद तथा अहेतुक स्नेह एवं सहयोग से इन्हीं के परम शिष्य सारस्वत साधना सम्पन्न विद्वद्वर डॉ0 प्रयाग नारायण मिश्र वरिष्ठ प्राध्यापक संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के निर्देशन में मुझे शोध–कार्य सम्पन्न करने का सुदुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अन्ताराष्ट्रिय ख्याति प्राप्त संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् परमगुरू, बाल्यकाल से ही संस्कृत के प्रति मेरे प्रेरणा स्रोत, प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय 'चाचा जी' पद्मश्री प्रो0 बृजेश कुमार शुक्ल जी के श्री चरणों में प्रणति निवेदित करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

मेरे द्वारा प्रस्तावित ***"पौराणिक वाङ्मय में निरूपित अयोध्या : एक समीक्षात्मक अनुशीलन"*** विषय पर शोध–कार्य की जिज्ञासा व्यक्त करने पर

श्रद्धेय गुरुवर डॉ0 प्रयाग नारायण मिश्र जी ने सहर्ष अनुमति प्रदान की, साथ ही शोध से सम्बन्धित विभिन्न बिन्दुओं पर गम्भीर परिचर्चा करते हुए मुझे विषय की गम्भीरता तथा मौलिकता का बोध कराया।

परम पूज्य गुरुवर्य की अहर्निश प्रेरणा, उदारता, उत्साहवर्धन तथा समुचित मार्गदर्शन ही शोध–कार्य की परिपूर्णता का हेतु हे। इस शोध–प्रबन्ध में जो भी अन्वेषणात्मक विवेचन, विश्लेषण, नवीनता, मौलिकता आ सकी है, वह समस्त गुरुप्रवर शुक्ल जी सहित आपकी कृपा का ही प्रतिफल है।

शोध–कार्य की सम्पूर्ण कालावधि में मेरे शोध–निर्देशक डॉ0 प्रयाग नारायण मिश्र जी ने समय–समय पर अतिव्यस्त क्षणों के मध्य पर्याप्त समय निकालकर महत्त्वपूर्ण सुझावों से आवश्यक संसोधन तथा परिमार्जन किया है। अतः शोध–प्रबन्ध की परिपूर्णता के इस पावन अवसर पर मैं सर्वप्रथम श्रद्धेय गुरुवर्य के प्रति प्रणति पूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस अवसर पर मैं संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के समस्त गुरुजनों प्रो0 अरुणा शुक्ला, प्रो0 रामसुमेर यादव, डॉ0 अभिमन्यु सिंह, डॉ0 भुवनेश्वरी भारद्वाज, डॉ0 सत्यकेतु, डॉ0 अशोक सतपथी, डॉ0 गौरव सिंह, डॉ0 बृजेश सोनकर, डॉ0 ऋचा पाण्डेय, डॉ0 पत्रिका जैन को कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने पूर्ण मनोयोग से मेरा यथावश्यक मार्गदर्शन किया तथा शोध–प्रबन्ध लेखन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों की जानकारी प्रदान की।

मैं संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के समस्त कर्मचारियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने यथासमय आवश्यकतानुसार पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

पुस्तकालयाध्यक्ष, टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय तथा पुस्तकालय के समस्त कर्मचारियों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने यथा समय पुस्तकें उपलब्ध कराकर महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

अयोध्या के प्रमुख तीर्थों तथा दर्शनीय स्थलों के निरीक्षणकाल में जिन साधु–सन्तों ने मुझे प्रमुख सूचनाएँ प्रदान की उनमें से हनुमान् गढ़ी के मुख्य पुजारी महन्त श्री राजूदास जी महाराज, वाल्मीकि रामायण के पुस्तालयाध्यक्ष, मणि पर्वत के मुख्य पुजारी, सूर्यकुण्ड मन्दिर के पुजारी, दिगम्बर जैन मन्दिर के प्रबन्धक तथा छोटी छावनी एवं बड़ी छावनी के सन्तों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

तैत्तिरीयोपनिषद् का उद्घोष है– मातृ देवो भव, पितृ देवो भव। सन्तान के अभ्युदय में माता–पिता का आशीर्वाद अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हेतु होता है। अतः परम पूज्य पिताश्री बाबूलाल पाण्डेय व वन्दनीया माता स्व0 श्रीमती शिवकली पाण्डेय को सादर प्रणाम करता हूँ जिनके परमपुण्य तथा आशीर्वाद ने सदैव मुझे सम्बल प्रदान किया।

आदरणीय अग्रजद्वय श्री विजय कमार पाण्डेय तथा श्री अजय कुमार पाण्डेय, ज्येष्ठ भगिनीद्वय श्रीमती विजय लक्ष्मी अवस्थी तथा श्रीमती अजय लक्ष्मी मिश्रा के प्रति श्रद्धा भाव तथा सादर प्रणाम निवेदित करता हूँ जिन्होंने सदैव मेरा उत्साहवर्धन किया तथा आशीर्वाद प्रदान किया।

मेरी धर्मपत्नी श्रीमती शालिनी पाण्डेय का भी मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने गृहकार्य सम्बन्धी कठिन परिस्थितियों में पूर्ण सहयोग प्रदान किया तथा शोध–प्रबन्ध लेखन के लिए सतत् प्रेरित करती रहीं।

मेरे इस सारस्वत शोध–कार्य में मेरे प्रिय सुपुत्र यशवर्धन पाण्डेय तथा सुपुत्री जाह्नवी पाण्डेय के स्नेह तथा सौभाग्य का भी सम्बल है। अतः दोनों को बहुत–बहुत प्रेम तथा शुभाशीर्वाद।

इस शोध–कार्य में मेरे परम मित्र दिवाकर सिंह भदौरिया तथा अजय कुमार बाजपेयी जी का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने अतिव्यस्त क्षणों में भी समय–समय पर शोध–स्थल निरीक्षण के लिए पग–पग पर मुझे सहयोग तथा सम्बल प्रदान किया।

शोधार्थी टङ्कण कार्य हेतु हेमेन्द्र सिंह के प्रति विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिन्होंने शीघ्र तथा उत्तम टङ्कण कार्य करते हुए अपेक्षित संसोधन–पूर्वक शोध–प्रबन्ध को स्वरूप प्रदान किया।

विनयावत

शोधार्थी
विनय कुमार पाण्डेय
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन i-vi

प्रथम अध्याय– संस्कृत वाङ्मय में पुराण तथा पौराणिक वाङ्मय 1-41

- ✓ पुराण के पञ्च लक्षण
- ✓ पुराण के दस लक्षण
- ✓ उप–पुराण
- ✓ औप पुराण परिचय

द्वितीय अध्याय– पुराणों में तीर्थ प्रशस्ति तथा श्रीराम सङ्कीर्तन 42-83

- ✓ पुराणों में तीर्थ प्रशस्ति
- ✓ श्रीराम सङ्कीर्तन

तृतीय अध्याय– अयोध्या का पौराणिक तथा ऐतिहासिक वैभव 84-111

चतुर्थ अध्याय– पुराणोल्लिखित श्रीराम मन्दिर तथा अयोध्या का देव प्रासाद वैभव 112-131

पञ्चम अध्याय– अयोध्या के प्रसिद्ध तीर्थ, दर्शनीय स्थल तथा परिक्रमा प्रशस्ति 132-179

- ✓ चक्रतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, स्वर्गद्वार, चन्द्रहरि तीर्थ, धर्महरि तीर्थ, हरिस्मृति तीर्थ, सरयू घाघरा सङ्गम तथा गुप्तहरि तीर्थ, गोप्रातार तीर्थ, क्षीरोदक तीर्थ, बृहस्पति कुण्ड, रुक्मिणी कुण्ड, धनयक्ष तीर्थ, वसिष्ठ कुण्ड, सागर कुण्ड, योगिनी कुण्ड, उर्वशी कुण्ड, घोषार्क कुण्ड, रति कुण्ड तथा कुसुमायुध कुण्ड, महारत्न तीर्थ, दुर्भर तथा सुकृतोदर सरोवर, महाविद्या तीर्थ, दुग्धेश्वर, सुग्रीव चरित

तीर्थ, हनुमत् कुण्ड तथा विभीषण कुण्ड, जटा कुण्ड, गया कुण्ड, पिशाच मोचन तीर्थ, मानस तीर्थ, तमसा नदी, माण्डव्य आश्रम, महर्षि गौतम तथा च्यवनमुनि आश्रम, भैरव तीर्थ, भरत कुण्ड, मत्त गजेन्द्र, सुरसा राक्षसी, पिण्डारक, विघ्नेश, रामजन्म भूमि, हनुमानगढ़ी, कनक भवन, नागेश्वर नाथ मन्दिर, कालेराम मन्दिर, गोरेराम मन्दिर, नयाघाट क्षेत्र के मन्दिर, दशरथ महल, कैकेयी भवन, कोप भवन, सुमित्रा भवन, श्री आनन्द भवन, सीता रसोई, वासुदेव घाट, छोटी देवकाली, बड़ी देवकाली, मणि पर्वत, भरत मन्दिर, नन्दिग्राम, तुलसी चौरा, रत्न सिंहासन मन्दिर, इच्छा भवन, सहस्त्र धारा शेषावतार लक्ष्मण मन्दिर, वेद मन्दिर, श्री सिद्धबाग हनुमान मन्दिर, पञ्चमुखी महादेव मन्दिर, दुग्धेश्वर महादेव, क्षीरेश्वर महादेव, मखभूमि, विल्वहरि, सूर्य कुण्ड इसके अतिरिक्त अयोध्या के ऐतिहासिक टीले

- ✓ परिक्रमा प्रशस्ति

षष्ठ अध्याय–	अयोध्या की राजनैतिक, भौगालिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि	180-215
सप्तम अध्याय–	"अयोध्या का धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व	216-259
अष्टम अध्याय–	अयोध्या का शैक्षिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व	260-297
नवम अध्याय–	पौराणिक अयोध्या के साम्प्रतिक वैशिष्ट	298-304

उपसंहार 305-308

परिशिष्ट

1. अयोध्या के प्रसिद्ध देव प्रासाद तथा स्थल 309-310
2. अयोध्या–देव प्रासाद–चित्रवीथिका 311-323
3. अयोध्या की राजवंशावली 324-327
4. अयोध्या की प्रमुख संस्थाएँ तथा आचार्य परम्परा 328-329

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची 330-335

प्रथम अध्याय

संस्कृत वाङ्मय में पुराण तथा पौराणिक वाङ्मय

भारतीय संस्कृति के मौलिक आधार वेद ही हैं। वेद भगवान् के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं[1] अतः वे भागवत स्वरूप ही हैं। श्रुत ब्रह्मवाणी का संरक्षण परम्परा से ऋषियों द्वारा होता रहा है, इसीलिए इसे श्रुति कहते हैं। भगवदीय वाणी वेदों के सत्य को समझने के लिए षडङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिष का ज्ञान तथा अध्ययन आवश्यक था परन्तु जन–सामान्य के लिए यह भी सहज सम्भव न हो सकने के कारण पुराणों का कथोपकथन आरम्भ हुआ जिससे वैदिक सत्य, रोचक ऐतिहासिक आख्यायिकाओं द्वारा जन–जन तक पहुँच सके। जैसे– ऋग्वेद में प्रोक्त–

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्, समूढ़ह्मस्य पांसुरे।[2]

इस पद की पूर्णतः सही–सही व्याख्या के लिए पुराणों में वर्णित वामनावतार कथा की आवश्यकता होती है। इसीलिए महाभारत में प्रोक्त है–

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्।[3]

इसीलिए कहा जाता है कि पुराणों का कथोपकथन उतना ही प्राचीन है जितना वैदिक ऋचाओं का सङ्कलन और वंशानुवंश संरक्षण।

आदिकाल में समाज का प्रतिभा सम्पन्न समुदाय जिस प्रकार वेदों के अध्ययन, अध्यापन, निर्वचन में मग्न था उसी प्रकार उसी काल में समाज के साधारण समुदाय को धर्म में लगाये रखने के लिए पुराणों का कथन श्रवण प्रवचन होता रहा।

पुराण शब्द प्रधान वेदों से तथा शब्द अर्थ गौण मानकर अभिव्यञ्जन शैली को मुख्यतयः मानने वाले काव्यों से भिन्न तथा पृथक् होता है। पुराण

---

1. यस्य निश्श्वसितं वेदः, ऋग्वेद, भाष्य भूमिका, सायण भाष्य, श्लोक 2
2. ऋग्वेद, 1/22/17
3. महाभारत, आदिपर्व, 1/267

अर्थ प्रधान होता है अर्थात् अभीष्ट अर्थ को प्रकट करने पर ही पुराण का विशेष आग्रह है। इसके निमित्त न वह शब्द का प्राधान्य मानता है और न रस का प्रत्युत् येन–केन–प्रकारेण अर्थ के प्रकाशन पर ही पुराण का समग्र बल है। वह न तो प्रभु सम्मित वेद के समान है, न कान्ता सम्मिततयोपदेश भाजन काव्य के ही सदृश है प्रत्युत् इन दोनों से विलक्षण वह सुहृत्सम्मित वाक्य होता है। जिस प्रकार कोई सुहृद अपने मित्र की हितचिन्तना से प्रेरित होकर उसे कथा–कहानियों के द्वारा अपने वक्तव्य को हृदयंगम कराता है, इतिहास पुराण भी उसी प्रकार से अपना कार्य करता है।

पुराण का विशिष्ट रूप किसी वस्तु के वर्णन मात्र से सिद्ध होता है। प्राचीन कथानकों का वर्णन करना तथा उनके माध्यम से श्रोताओं के चित्त को पापात्मक प्रवृत्ति से हटाकर पुण्यात्मक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करना पुराण का मुख्य उद्देश्य है।

पुराण इसीलिए सरल सुबोध भाषा का प्रयोग अपनाता है। पुराण की संस्कृत भाषा सुबोध, व्यवहारिक तथा अल्पाक्षरों में स्वतात्पर्य को प्रकट करती है। वह विशेष पल्लवन का आश्रयण नहीं करती, अपनी धार्मिक प्रवृत्ति को लक्ष्य में रखकर ही उसका समस्त शब्द व्यापार प्रवृत्त होता है। पुराण के साहित्यिक रूप का वैशिष्ट्य आँकते समय इस मूलभूत तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि पुराण अनुरञ्जन के साथ शिक्षण करता है। वह पाप पुण्य में विशिष्ट फल को दिखाकर एक से दूर रहने का तथा दूसरे को ग्रहण करने का उपदेश देता है। परन्तु वेद के समान वह आदेश नहीं देता। पुराणों की भाषा व्यवहारिक होती है फलतः वह पाणिनीय व्याकरण के बन्धन को अक्षरशः स्वीकार नहीं करती।

पुराण भाषा की तुलना उस पुण्य सलिला भागीरथी के साथ की जा सकती है, जो अपने मूल प्रवाह पर आग्रह रखती हुई भी इतस्ततः आने वाली जल धाराओं का तिरस्कार नहीं करती, प्रत्युत् वह उन्हें भी अपने में सम्मिलित कर गन्तव्य तक पहुँचा देती है।

पुराण में समन्वय साधन के बीज ही नहीं प्रत्युत् पल्लवित तरु की कल्पना साकार रूप से वर्तमान है। प्राचीन युग से आने वाली लोक समाज में प्रचलित होन वाली इतस्ततः विकीर्ण रूप से उपलब्ध होने वाली उपासना पद्धतियों, आचारों–विचारों, कल्पना, मान्यताओं सबका एक विराट समन्वय उपस्थित कर जो साहित्यिक रचना इनमें उपलब्ध है वह वैविध्य धारण करने पर भी सुसमञ्जस है, अनेकता से मण्डित होने पर भी ऐक्य भावापन्न है, लोकप्रिय जनविश्वासों का आगार होने पर भी शास्त्रीय विश्वासों से सम्पन्न है। इसी समन्वय भावना के कारण अवतारवाद का जन्म हुआ जिसके साथ भक्ति का सार्वभौम राज्य पुराणों में विराजने लगा।

इसी प्रकार मानव धर्म तथा मानव स्वभाव के संवेगात्मक पक्ष पर आग्रह कर पुराण ने मानव मन परिष्कृति के नवीन मार्ग की उद्भावना की। धर्म तथा साहित्य में इस भक्ति मार्ग के योग से जो मधुरिमा जो कोमलता आयी वह पुराण युग की एक विशिष्ट देन है।

भारतवर्ष में चारों वर्णों और चारों आश्रमों की रीति–नीति, विचार–आचार की सामग्री पुराण ही हैं। प्रायः इन्हीं के द्वारा पुरातन वृत्त, सर्ग, प्रति सर्ग, वंश, मन्वन्तर वंशानुचरित का बोध होता है। इन पुराणों के आख्यान से ही वेद धर्म भली–भाँति जाना जाता है। पुराणों से ही अपने पिता, पितामह का निर्मल मार्ग जाना जाता है, अनेक जातियों की उत्पत्ति, देश भेद, ज्ञान–विज्ञान, जगत् के भिन्न–भिन्न विभागों के विभिन्न नियम वह सब पुराणों से ही जाने जाते हैं–

श्रुणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणानां समुच्चयम्।

यस्मिन ज्ञाते भवेज्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम्।।[1]

पुराण इतिहास के न होने से एक प्रकार से जगत् अन्धकारमय समझा जा सकता है। भारतवासियों का तो इतिहास पुराण ही परम धन है। उपासना का भण्डार मुक्ति का द्वार पुराण ही हैं। पञ्चदेव उपासना का विस्तार भगवदावतार की विशेषता पुराण ही प्रतिपादित करते हैं। नवधा भक्ति, ईश्वर के चरणों में प्रीति पुराण कथा से ही प्राप्त होती है। दोनों लोकों का साधक पुराण ही हैं, संसार में जिन–जिन विषयों की आप खोज करना चाहें वह विषय एक मात्र पुराणों में ही मिलता है। जब ऐसा है तो ऐसा कौन सा पुरुष है जो पुराणों में श्रद्धा न करेगा।

पुराणों में लौकिक भाषा, विचित्र भाषा और समाधि भाषा लिखी गयी है और आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक यह तीन प्रकार की कथाएँ लिखी गयी हैं जिनका मार्ग समझने से बहुत सी शङ्काएँ दूर हो जाती हैं। जो नृपतिगण चरित्र लिखे हैं वह लौकिक भाषा, कूर्म, मृग, नकुलादि का कथन विचित्र भाषा तथा भगवद् सम्बन्धी रहस्य समाधि भाषा में लिखे गये हैं।

पञ्चभूत सम्बन्धी आधिभौतिक, देव सम्बन्धी आधिदैविक और आत्मा सम्बन्धी कथाएँ आध्यात्मिक हैं।

पुराण की रचना सभी वर्णों के लिए है। पुराण का लक्ष्य भारतीय समाज के अन्तर्गत विराजमान प्रत्येक वर्ण के कल्याण तथा उद्धार की भावना है। वेद के गम्भीर रहस्यों को लौकिक बोधगम्य भाषा में सरल सुबोध शैली के द्वारा

---

1. नारद पुराण, 1/92/21

जन हृदय तक सरलता से पहुँचा देना ही पुराण के उद्‌देश्यों में अन्यतम् उद्‌देश्य है।

वेद की भाषा स्वयं दुरूह है और कालक्रम से जब समझने वालों की संख्या पंडित समाज में भी न्यून हो चली तब यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि वेदों के उपदेश जो गम्भीर रूप से संहिता तथा उपनिषदों में निबद्ध हैं, भारतीय समाज के सामने रखे जायें जिससे उसे सदाचार की शिक्षा मिले। भारतीय समाज का उन्नयन हो तथा समाज के भीतर पाप की प्रवृत्ति का उन्मूलन या ह्रास हो और जनसाधारण ऐहिक अभ्युदय तथा आमुष्मिक कल्याण को पाकर अपने इहलोक तथा परलोक को सुधारे।

श्रीमद्‌भागवत महापुराण में प्रोक्त है–

भारतव्यपदेशेन ह्यग्नायार्थश्च दर्शितः।

दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत।।[1]

अर्थात् महाभारत की रचना के बहाने मैंने वेद के अर्थ को खोल दिया है, जिससे स्त्री, शूद्र आदि भी अपने–अपने धर्म–कर्म का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इतिहास पुराणों का यह उद्‌देश्य पूर्णरूपेण चरितार्थ हुआ। आज भारत में जो कुछ भी धर्म में अभिरुचि दीख पड़ती है, लोगों में धार्मिकता का जो अवशेष आज है वह सब पुराण के ही व्यापक प्रभाव का अभिव्यक्त परिणाम है।

जो पुरातन आख्यान ऋषियों की स्मृतियों में सुरक्षित थे और जो वंशानुक्रम ऋशि कण्ठों से कीर्तित थे। उन्हीं का सङ्कलन और विभागीकरण भगवान् वेदव्यास द्वारा हुआ। उन आख्यायिकाओं को व्यवस्थित करने का तथा

---

1. श्रीमद्‌भागवत महापुराण, 1/4/29

प्रकाश में लाने का श्रेय भगवान् वेदव्यास को है, इसी कारण वे पुराणों के प्रणेता कहलाये अन्यथा पुराण भी वेदों की भाँति ही अनादि अपौरुषेय एवं प्रामाणिक हैं।

स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।।[1]

भारतीय पुराण साहित्य विशाल है, गहन है उसे सचमुच ही जीवन व्यवहार सिन्धु की उपमा दी जा सकती है। जीवन व्यवहार के अनन्त क्रिया–कलापों, घटनाओं, कर्त्तव्यों–अकर्त्तव्यों तथा कार्य विधियों, कार्य प्रणालियों में ऐसा कोई भी पक्ष नहीं बचा है जो पुराणकारों की दृष्टि से स्पर्शरहित हो या उन पर प्रकाश न डाला हो। अब यह भारतीयों के लोकजीवन में इस प्रकार रच बस गया है कि इन सबका प्रात्यक्षिक रूप दैनिक जीवन व्यवहार में देखकर पुराणों में वर्णित दृष्टान्त जीवन्त से प्रतीत होने लगते हैं।

दीर्घकाल से व्यवहार में प्रयोग होते हुए निश्चय ही बहुत सी चिन्तन धाराओं का स्वरूप अपना मूल रूप खो चुका है फिर भी इसकी जड़ें पुराण से कहीं न कहीं से जुड़ी अवश्य ही हैं।

पुराणों में गाथाएँ हैं, कथाएँ हैं, सृष्टि रचना और प्रलय की प्रक्रिया के सम्बन्ध में कल्पना की अद्‌भुत उड़ानें हैं। जीवन के प्रेय और श्रेय, कर्म–अकर्म, धर्म–अधर्म, बन्धन–मोक्ष, लोक–परलोक, सुमार्ग–कुमार्ग और स्वर्ग–नरक के विश्लेषणात्मक विवरण है।

प्रवृत्ति–निवृत्ति, विधि–निषेध, यम–नियम के विस्तृत विवेचन हैं और विभिन्न अवतारों, देवताओं, तीर्थों पहाड़ों, पर्वों व अनुष्ठानों की आवश्यकताओं

---

1. स्कन्द पुराण, रेवा खण्ड ,1/23, प्रभास खण्ड, 2/18

और महात्म्य के अर्थपूर्ण विवरण हैं। सम्राटों व राजाओं के वंशों व कार्यों उनके उत्थान–पतन उनकी उपलब्धियों व कमियों की अर्थगर्भित कहानियाँ हैं तथा भूगोल, खगोल, ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेद–औषधि, व्याकरण, छन्द, विज्ञान, काव्य–मीमांसा, कवि की महत्ता, अध्यात्म, ब्रह्म विद्या आदि अनेकानेक विषयों के अवलोकन, चिन्तन व कल्पना पर आधारित अद्‌भुत विवरण हैं।

पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक विशद विवरण दिया गया है। पुराणों को मनुष्य के भूत, भविष्य, वर्तमान का दर्पण भी कहा जा सकता है। इस दर्पण में मनुष्य अपने प्रत्येक युग का प्रतिरूप देख सकता है। इस दर्पण में अपने अतीत को देखकर वह अपना वर्तमान संवार सकता है और भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है। अतीत में जो हुआ वर्तमान में जो हो रहा है और भविष्य में जो होगा वह सब पुराणों का वर्ण्य–विषय है।

पुराणों की सबसे बड़ी विशेषता यही है और उपयोगिता यही मानी गयी है कि वेदों के गूढ़ तत्त्वों और रहस्यवादी वर्णनों की विशद व्याख्या के साथ रोचक कथाशैली में उपस्थित करते हैं जिससे सामान्य स्तर के पाठक भी उनको समझ सकते हैं।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण तथा निरुक्त ग्रन्थों में दी गयी है। स्वयं पुराणों ने भी इसकी व्युत्पत्ति की है।

पुरा भवम् (प्राचीनकाल में होने वाला) इस अर्थ में–

सायं चिर प्राहवे प्रगेऽत्ययेभ्यष्ट्युट् युलौ तुट् च।[1]

1. अष्टध्यायी, 4/3/23

पाणिनि के इस सूत्र से पुरा शब्द से ट्यु प्रत्यय करने तथा तुट् के आगमन होने पर 'पुरातन' शब्द निष्पन्न होता है, परन्तु स्वयं पाणिनि ने ही अपने दो सूत्रों–

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनव केवलाः समानाधिकरणेन।[1]

तथा **पुराणप्रोक्तेषु ब्रह्मण कल्पेषु।**[2] में पुराण शब्द का प्रयोग किया जिससे तुडागम का अभाव निपात नात् सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि पुरा शब्द से ट्यु प्रत्यय अवश्य होता है परन्तु नियम प्राप्त तुट् का आगमन नहीं होता।

यास्क के निरुक्त के अनुसार पुराण की व्युत्पत्ति है–

पुरा नवं भवति।[3]

अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है।

वायु पुराण के अनुसार यह व्युत्पत्ति है– पुरा अनति अर्थात् प्राचीनकाल में जो जीवित था।

यस्मात् पुराह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।

निरुक्तयस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।[4]

ब्रह्माण्ड पुराण अपनी व्युत्पत्ति में बताता है कि प्राचीनकाल में ऐसा हुआ–

यस्मात् पुराह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत्स्मृतम्।[5]

---

1. अष्टाध्यायी, 2/1/49
2. तदेव, 4/3/105
3. निरुक्त, 3/4/2
4. वायुपुराण, 1/203
5. ब्रह्माण्ड पुराण, 1/1/173

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में पद्म पुराण कहता है कि जिन ग्रन्थों में प्राचीनकाल की परम्परा और धर्म मर्यादा निरूपित है वे पुराण हैं–

पुरा परम्परावष्टिपुराणं तेन तत् स्मृतम्।[1]

उपर्युक्त समग्र व्युत्पत्तियों की मीमांसा करने से स्पष्ट है कि पुराण का वर्ण्य–विषय प्राचीनकाल से सम्बद्ध था।

संस्कृत साहित्य में वैदिक एवं लौकिक साहित्य दोनों पुराण माहात्म्य से परिचित हैं। वैदिक साहित्य का पुराण साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रातः स्मरणीय प्रो0 बृजेश कुमार शुक्ल (पद्मश्री) ने अपनी पुस्तक 'पुराणसाहित्यादर्शः' में कहा है–

पुराणेषु वैदिक विचाराधाराया व्यापिका दृष्टिः सर्वत्रवोपलभ्यते वेदेषु येषां विषयाणां चर्चा शूक्ष्मत्वेन कृता पुराणेषु तेषां सर्वथा विस्तारः कृतो महर्षिणा व्यासेन इतिहास पुराणयोः प्राचीनत्वं नानाग्रन्थेभ्यः प्रमाणितमेव। संस्कृत साहित्ये–प्रायस्तेषु तेषु ग्रन्थेषु पुराणस्य सत्ताया विद्यमानत्वात्तस्य सर्वं व्यापित्वं स्वत एव प्रथितम्।[2]

पुराण शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी दिखायी पड़ता है परन्तु इन स्थलों पर पुराण शब्द केवल प्राचीनता का द्योतक है। अथर्ववेद में सर्वप्रथम पुराण शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट विद्या के रूप में उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि ऋक्, साम, छन्द और यजुर्वेद के साथ ही पुराण भी उस उच्छिष्ट से यज्ञ के अवशेष से अथवा जगत् पर शासन करने वाले यज्ञमय परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं तथा द्युलोक में निवास करने वाले देव भी उसी उच्छिष्ट से पैदा हुए हैं–

---

1. पद्म पुराण, 5/2/53
2. पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 9

ऋचः सामानि छन्दासि पुराणं यजुषा सह।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः।।[1]

अथर्ववेद में पुराण वित् शब्द का प्रयोग दिखायी पड़ता है जिससे पता चलता है कि अथर्ववेद काल में पुराणवेत्ताओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था–

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातया इदं विदुः।

यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराण वित्।।[2]

तात्पर्य इस (दीखती हुई भूमि) से पहले जो भूमि थी उस भूमि को सत्यज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। जो निश्चय करके उस प्रथम कल्प वाली भूमि को नामतः यथार्थ रूप से ज्ञात कर ले वह पुराणवित् (पुराणों के वृत्तान्त को जानने वाला) माना जाना चाहिए। इन उल्लेखों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अथर्ववेद के काल में पुराण तथा पुराणवित् का अस्तित्व अवश्यमेव विद्यमान था।

ब्राह्मण वाङ्मय से भी पुराण का अस्तित्व प्रमाणित होता है। शतपथ ब्राह्मण की इस उक्ति से ज्ञात होता है कि उस काल में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के समान ही इतिहास पुराण को भी सम्मान प्राप्त था–

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः इतिहास पुराणं विद्या उपनिषद्ः श्लोकाः सुत्राणि अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट प्रजायते।।[3]

गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि कल्प रहस्य ब्राह्मण उपनिषद् इतिहास अन्वाख्यात् तथा पुराण के साथ सब वेद निर्मित हुए–

एवमिमे सर्ववेदा निर्मिताः सकल्पा सरहस्याः स ब्राह्मणाः।

---

1. अथर्ववेद, 11/7/24
2. तदेव, 11/8/7
3. शतपथ ब्राह्मण, 14/6/10–6

सोपनिषत्काः सेतिहासः सान्वाख्याताः सपुराणाः।।[1]

इस प्रकार ब्राह्मण युग में भी पुराणों का अनुशीलन प्रचलन में था।

आरण्यक और उपनिषद् भी ब्राह्मणों के अन्तिम भाग हैं। आरण्यकों में ब्राह्मण प्रतिपादित यज्ञों की अध्ययनपरक व्याख्या है तथा उपनिषद् ग्रन्थों में भारतीय दर्शन का प्रकाश प्रदीप्त है। इनमें भी पुराण तथा इतिहास की स्थिति पर्याप्तरूपेण सिद्ध होती है–

यद् ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानिकल्पानि गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतयो देवानाम् भवन्।[2]

छान्दोग्योपनिषद स्पष्ट रूप से इतिहास पुराण को पञ्चम वेद` रूप में स्वीकार करता है–

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ।

इतिहास पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः।।[3]

इस प्रकार आरण्यक तथा उपनिषद् युग में पुराण केवल मौखिक तत्त्व का द्योतक न होकर सम्भवतः ग्रन्थ के रूप में सन्निविष्ट था तथा सम्मान की दृष्टि से उसकी गणना वेदों के समान ही थी।

सूत्र ग्रन्थ जैसे गृह्यसूत्र, कल्पसूत्र, धर्मसूत्रों में पुराण से सम्बन्धित विषय उद्धृत हैं।

महाभारत में कहा गया है कि इतिहास और पुराण के द्वारा वेद का उपबृंहण करना चाहिए–

---

1. गोपथ ब्राह्मण, 2/10
2. तैत्तिरीय आरण्यक, 2/9
3. छान्दोग्योपनिषद्, 7/1/4

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।[1]

तात्पर्य इतिहास और पुराण के द्वारा वेद का उपबृंहण करना चाहिए। इसीलिए वेद अल्पश्रुत कम शास्त्र पढ़ने वाले से सदा डरा करता है कि कहीं वह मुझे धोखा देकर ठग न डाले (अथवा मार न डाले)।

महाभारत के मत में पुराणरूपी पूर्ण चन्द्रमा के द्वारा श्रुति रूपी चन्द्रिका छिटकी हुई है अर्थात् पुराण श्रुति के अर्थ को विस्तार से प्रकाशित करता है–

पुराण पूर्ण चन्द्रेण श्रुति ज्योत्सना प्रकाशिता।[2]

वाल्मीकि रामायण में न केवल पुराण तथा पुराणविद का उल्लेख है अपितु भविष्य पुराण के नाम का भी उल्लेख है–

पुराणे हि सुमहत्कार्य भविष्यं हि मयाश्रुतम्।

दृष्टं में तपसा चैव श्रुत्वा च विदितं मम्।।[3]

इस प्रकार महाभारत तथा रामायण पुराणों से न केवल सामान्य परिचय रखता है अपितु पुराणों के विषय एवं महात्म्य से भलीभाँति परिचित है।

स्मृतिग्रन्थ भी पुराणों के महत्त्व से अछूते नहीं हैं। मनुस्मृति में पुराणों को वेद के समान ही बताया गया है–

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रये धर्मशास्त्राणि चैव हि।

आख्यानानीति हासांश्च पुराणानि खिलानि च।।[4]

---

1. महाभारत आदिपर्व, 1/267
2. तदेव, 1/86
3. वाल्मीकि रामायण, 4/62/3
4. मनुस्मृति, 3/232

यहाँ मनु महाराज का कथन है कि पितृ कर्म श्राद्ध के अवसर पर निमंत्रित ब्राह्मणों को यजमान वेद, धर्मशास्त्र, आख्यात्, इतिहास पुराण तथा खिल सुनावे।

याज्ञवल्क्य स्मृति में पुराणों की गणना चौदह विद्याओं के अन्तर्गत की गयी है। इसमें पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, छः वेदाङ्ग, चार वेद सम्मिलित हैं–

पुराणन्याय–मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।

वेदाः स्थानानिविद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।[1]

व्याकरण शास्त्रों में पुराण का वर्णन पाणिनि के अष्टाध्यायी ग्रन्थ में तथा पतञ्जलि महाभाष्य में आया है, इससे यह विदित होता है कि व्याकरण पुराण से अनभिज्ञ नहीं है।

पुराण शब्द दर्शनशास्त्र में भी प्रायः दिखायी पड़ता है। न्यायदर्शन भाष्य में पुराण शब्द का प्रयोग उसकी प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की अभिव्यक्ति की गयी है–

य एव मन्त्र ब्रह्मणस्य दृष्टारः प्रवक्तारश्च ते खलु।

इतिहास पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य च।।[2]

इसी प्रकार नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्र में भी पौराणिक साहित्य का महत्त्व स्थाने–स्थाने दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र भी पुराणों से स्पर्श रहित नहीं है। संस्कृत काव्यशास्त्रों में पुराण शब्द का तथा पुराणों में वर्णित श्लोक उद्धृत किए गये हैं।

---

1. याज्ञवल्क्यस्मृति, उपोदघात्, श्लोक 3
2. पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 20 से उद्धृत

आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में सुहृद सम्मित उपदेश के रूप में पुराणों का वर्णन किया है–

प्रभु सम्मित शब्द प्रधान वेदादि शास्त्रेभ्यः सुहृत्सम्मितार्थ तात्पर्यवत् पुराणादीतिहासेभ्यश्च शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसाङ्गभूत व्यापार प्रवणतया विलक्षणं यत्काव्यं– सर्वथा तत्र यतनीयम्।[1]

मम्मट के परवर्ती कवियों ने भी पुराण से सम्बन्धित विषय का वर्णन किया है।

शान्त रस का आधिक्य पुराणों का वैशिष्ट्य रहा है। महाकवि कालिदास, भारवि, माघ इत्यादि के काव्यों में भी यत्र–तत्र–सर्वत्र पुराणों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पुराण साहित्यादर्शः में प्रोक्त है–

संस्कृत काव्यान्यपि पौराणिक साहित्य संवलितानि दृश्यन्ते। कविकुल गुरोः कालिदासस्य काव्येषु पुराणानां स्पष्टः प्रभावः परिलक्ष्यते। रघुवंशे कालिदासेन यादृशानामिक्ष्वाकुवंशीयानाम् राज्ञां वर्णनं कृतम् ते पौराणिक धर्म– रहितानासन्। कुमार सम्भवस्य शिव पुराणेन सह साम्यं स्पष्टं प्रतिभाति। अभिज्ञानशाकुन्लतस्य पद्म पुराणगत् शकुन्तलोपाख्यानेन सह सादृश्यं स्फुटं प्रतीयते। विक्रमोवर्शीय कथानकं पुराणेभ्यो गृहीतं वर्तते। किरातार्जुनीय महाकाव्ये भारविणा पुराण कथानां सन्निवेशोऽनेक श्लोकेषु विहितः।।[2]

इसी प्रकार से कादम्बरी इत्यादि कथा ग्रन्थों में भी पुराण साहित्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। पुराण साहित्य ने न केवल संस्कृत भाषा अपितु प्राकृत भाषा, हिन्दी भाषा को पूर्णतयः प्रभावित किया है तथा इनमें वर्णित महत्त्वपूर्ण विषयों के कारण पाश्चात्य विद्वान् भी अत्यन्त प्रभावित हुए तथा पुराणों पर आंग्ल भाषा में भी अनेक शोध ग्रन्थ लिखे गये हैं।

---

1. काव्यप्रकाश, 1/2
2. पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 25 से उद्धृत

संस्कृत काव्यशास्त्र पर अग्निपुराण का अत्यन्त उपकार है। अग्निपुराण में काव्य से सम्बन्धित सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन किया गया है। संस्कृत काव्यशास्त्र का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जो पुराणकार की दृष्टि से स्पर्शरहित है। अग्निपुराण का एक कथन काव्य जगत् में अपनी शोभा प्रदीप्त कर रहा है–

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति।[1]

अर्थात् अपार काव्य संसार में कवि ही प्रजापति है। उसको संसार का जैसा स्वरूप रुचिकर लगता है, उसके काव्य में यह जगत् वैसे ही रूप में परिवर्तित होता है।

इस प्रकार कहना अनुचित न होगा कि पुराणों का काव्य जगत् पर उपकार है तथा सम्पूर्ण काव्य जगत् पुराण का ऋणी है।

पुराण के पञ्च लक्षण–

पुराण के साथ पञ्च लक्षण का सम्बन्ध प्राचीन तथा घनिष्ठ है। प्रायः सभी पुराणों में ये पाँच लक्षण बताये गये हैं। कतिपय पुराण दस लक्षण भी बताते हैं। पुराण की सर्वत्र मान्य परम्परा के अनुसार ये ही पाँच विषय वर्णनीय माने गये हैं। पुराणसाहित्यादर्शः में प्रोक्त है–

पुराण संहिताया निर्माणानन्तर लोकेऽस्मिन्ननेकानि पुराणानि प्रणीतानि। तेषां पुराणानां वर्ण्यविषयो यद्यपि पञ्चभिर्दशवा लक्षणैरैव न बद्धुं शक्यते तेष्वनेक विषयाणां प्रतिपादनात्। तथापि पुराणानां पञ्च लक्षणानि विद्वत्सु प्रथितानि सन्ति।।[2]

---

1. अग्निपुराण, 339/10
2. पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 46 से उद्धृत

कूर्म, गरुड़ तथा मार्कण्डेय आदि अनेक पुराणों में पुराणों के सर्वमान्य पाँच लक्षण बताये गये हैं–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरित चैव पुराण पञ्च लक्षणम्।।[1]

इन पाँचों लक्षणों का सामान्य स्वरूप दृष्टव्य है–

(1) सर्ग–

जगत् तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पत्ति या सृष्टि की उत्पत्ति सर्ग कहलाती है–

अव्याकृत गुण क्षोभान्महस्त्रिवृतोऽहमः।

भूत मात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।।[2]

जब मूल प्रकृति में लीन गुण क्षुब्ध होते हैं तब महततत्त्व की उत्पत्ति होती है। महततत्त्व से तामस, राजस और सात्विक तीन प्रकार के अहङ्कार बनते हैं।

त्रिविध अहङ्कार से ही पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय और विषयों की उत्पत्ति होती है इसी उत्पत्ति क्रम का नाम सर्ग है।

(2) प्रतिसर्ग–

प्रतिसर्ग का तात्पर्य सृष्टि प्रलय से है। श्रीमद्भागवतमहापुराण में प्रतिसर्ग शब्द के स्थान पर संख्या तथा विष्णुपुराण में प्रतिसंचर शब्द का प्रयोग किया गया है–

---

1. कूर्मपुराण, 1/12; गरुड़पुराण, 215/14; मार्कण्डेयपुराण, 134/13
2. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 12/7/11

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिकोलयः।

संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः।।[1]

इस विश्व ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है। उसके चार भेद हैं– नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। तत्वज्ञ विद्वानों ने इन्हीं को संस्था कहा है।

(3) वंश–

भविष्य तथा वर्तमान कालिक राजाओं की सन्तान परम्पराओं को वंश नाम से पुकारते हैं–

राज्ञां ब्रह्म प्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।[2]

कतिपय पुराणों में राजाओं के अतिरिक्त ऋषियों के वंश का भी वर्णन इसके अन्तर्गत समाहित है।

(4) मन्वन्तरः–

इस शब्द से सृष्टि के विभिन्न काल मान की सूचना ज्ञात होती है। कुल चौदह मन्वन्तर बताये गये हैं। इसमें एक मनु से दूसरे मनु के मध्य की कालावधि की सूचना मन्वन्तर से प्राप्त होती है।

मन्वन्तरमनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः।

ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते।।[3]

मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार इन छः बातों से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं।

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 12/7/17
2. तदेव, 12/7/16
3. तदेव, 12/7/15

(5) वंशानुचरित–

मनुष्य वंश में प्रसूत महर्षि, राजा तथा विशिष्ट पुरुषों के चरित्र का वर्णन जिसमें किया गया हो वह वंशानुचरित कहलाता है।

वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये।[1]

पुराण के दस लक्षण–

श्रीमद्भागवतपुराण में दो स्थानों पर तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में महापुराण के दस लक्षण निर्दिष्ट हैं और पूर्वोक्त पाँच लक्षणों में इन दोनों स्थानों पर शब्द भेद अवश्य है परन्तु अभिप्राय भेद नहीं है। श्रीमद्भागवतपुराण के द्वादश स्कन्ध के अनुसार ये दस लक्षण हैं–

1. **सर्गः–** त्रिविध अहङ्कार से ही पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय और विषयों की उत्पत्ति होती है, इसी उत्पत्ति का नाम सर्ग हे–

   अत्याकृतगुण क्षोभान्महत्तस्त्रिवृत्तोऽहम्।

   भूत मात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवतः सर्ग उच्यते।।[2]

2. **विसर्ग–** परमेश्वर के अनुग्रह से सृष्टि का सामर्थ्य प्राप्त करके महततत्त्व आदि पूर्व कर्मों के अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओं की प्रधानता से जो यह चराचर शरीरात्मक जीव की उपाधि की सृष्टि करते हैं, एक बीज से दूसरे बीज के समान, इसी को विसर्ग कहते हैं–

   पुरुषानुग्रहीतानामेतेषां वासनामयः।

   विसर्गोऽयम् समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम्।।[3]

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 12/7/16
2. तदेव, 12/7/11
3. तदेव, 12/7/12

3. **वृत्ति–** चर प्राणियों की अचर पदार्थ 'वृत्ति' अर्थात् जीवन निर्वाह की सामग्री है। चर प्राणियों के दुग्ध आदि भी इनमें से मनुष्यों ने कुछ तो स्वभाववश कामना के अनुसार निश्चित कर ली है और कुछ ने शास्त्र की आज्ञानुसार–

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च।

कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा।।[1]

4. **रक्षा–** भगवान् प्रत्येक युग में पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदि के रूप में अवतार ग्रहण करके अनेक लीलाएँ करते हैं। इन्हीं अवतारों में वे वेद धर्म के विरोधियों का संहार भी करते हैं। उनकी यह अवतार लीला विश्व की रक्षा के लिए ही होती है। इसीलिए उसका नाम रक्षा है–

रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे–युगे।

तिर्यङ्नर्त्यषिदेवेषु हन्यन्तेयैस्त्रयी द्विषः।।[2]

5. **मन्वन्तरः–** मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान् के अंशावतार– इन्हीं छः बातों की विशेषता से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं–

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्रा सुरेश्वरः।

ऋषयोऽंशावतारश्च हरेः षड्विध मुच्यते।।[3]

6. **वंश–** ब्रह्मा जी से जितने राजाओं की सृष्टि हुई उनकी भूत, भविष्य और वर्तमान कालीन सन्तान परम्परा को वंश कहते हैं–

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 12/7/13
2. तदेव, 12/7/14
3. तदेव, 12/7/15

राज्ञां ब्रह्म प्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।[1]

7. **वंशानुचरित–** राजाओं तथा उनके वंशधरों के चरित्र का नाम वंशानुचरित है–

वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये।[2]

8. **संस्था (निरोध)–** इस विश्व ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है। उसके चार भेद हैं– नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। तत्त्वज्ञ विद्वानों ने इन्हीं को संस्था कहा है। पुराणों के पञ्च लक्षण में प्रतिसर्ग इसी का पर्याय है–

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।

संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः।।[3]

9. **हेतुः–** वास्तव में हेतु शब्द से जीव को ही ग्रहण किया गया है। क्योंकि वही सर्ग विसर्ग आदि का हेतु है। जो व्यक्ति उसे चैतन्य प्रधान की दृष्टि से देखते हैं वे उसे अनुशयी अर्थात् प्रकृति में शयन करने वाला कहते हैं और जो उपाधि की दृष्टि से देखते हैं, वे उस अव्याकृत अर्थात् प्रकृति रूप कहते हैं–

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः।

यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे।।[4]

10. **अपाश्रयः (आश्रय)–** जीव की वृत्तियों के तीन विभाग हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। जो इन अवस्थाओं में इनके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 12/7/16
2. तदेव, 12/7/16
3. तदेव, 12/7/17
4. तदेव, 12/7/18

के मायामय रूपों में प्रतीत होता है और इन अवस्थाओं से परे तुरीय तत्त्व के रूप में भी लक्षित होता है वही ब्रह्म है, उसी को यहाँ अपाश्रय शब्द से कहा गया है–

व्यतिरेकान्वयो यस्य जागृत स्वप्न सुषुप्तिषु।

माया मायेषु तद् ब्रह्म जीव वृत्तिष्वपाश्रयः।।[1]

संसार की रचना करते समय ब्रह्मा जी ने एक ही पुराण की रचना थी, इसमें 1 अरब श्लोक थे। यह पुराण बहुत ही विशाल और कठिन था। पुराणों का ज्ञान और उपदेश देवताओं के अलावा साधारणजनों को भी सरल विधि से मिले यह सोंचकर महर्षि वेदव्यास ने पुराण को अट्ठारह भागों में विभक्त किया था। इन पुराणों में श्लोकों की संख्या 4 लाख थी जैसा कि मत्स्यपुराण में प्रोक्त हैं–

पुराणमेकमेवा सीत्तदा कल्पान्तेरऽनघ।

त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शत कोटि प्रविस्तरम्।।

कालेना ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।

व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे–युगे।।

चतुर्लक्ष प्रमाणेन द्वापरे–द्वापरे सदा।

तथाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते।।[2]

पुराणों की संख्या अट्ठारह मानी जाती है। यद्यपि कहीं–कहीं पुराणों की नामावली में शिवपुराण एवं वायुपुराण के सन्दर्भ में मतैक्य का अभाव है। जैसे

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 12/7/19
2. मत्स्य पुराण, 53/9–11

नारदीय पुराण में वायु पुराण का उल्लेख है परन्तु श्रीमद्भागवतपुराण में शिवपुराण का उल्लेख मिलता है।

नारदीय पुराण में पुराणों का नामोल्लेखपूर्वक इस प्रकार उल्लेख है–

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च वायवीय तथैव च।

भागवतं नारदीयं मार्कण्डेय च कीर्त्तितम्।।

आग्नेयं च भविष्यं च ब्रह्मवैवर्तलिङ्गके।

वाराहं च तथा स्कान्दं वामनं कूर्म सञ्ज्ञकम्।।

मात्स्यं च गारुड़ं तद्वद ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्।।[1]

अतः नारदीय पुराण के अनुसार पुराणों के नाम इस प्रकार हैं–

1. ब्रह्म पुराण	2. पद्म पुराण	3. विष्णु पुराण	4. वायु पुराण
5. भागवत पुराण	6. नारदीय पुराण	7. मार्कण्डेय पुराण	8. अग्नि पुराण
9. भविष्य पुराण	10. ब्रह्मवैवर्त पुराण	11. लिङ्ग पुराण	12. वराह पुराण
13. स्कन्द पुराण	14. वामन पुराण	15. कूर्म पुराण	16. मत्स्य पुराण
17. गरुड़ पुराण	18. ब्रह्माण्ड पुराण		

श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार अष्टादश पुराणों के नाम इस प्रकार हैं–

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवलैङ्गं सगारुड़म।

नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दं संज्ञितम्।।

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेय सवामनम्।

वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्।।[2]

---

1. नारदीय पुराण, 92/1–3
2. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 12/7/23–24
   नोट– उपर्युक्त श्लोकों में 'त्रिषट्' से तात्पर्य 3 X 6 = 18 है।

1. ब्रह्म पुराण	2. पद्म पुराण	3. विष्णु पुराण	4. शिव पुराण
5. लिङ्ग पुराण	6. गरुड़ पुराण	7. नारद पुराण	8. भागवत पुराण
9. अग्नि पुराण	10. स्कन्द पुराण	11. भविष्य पुराण	12. ब्रह्मवैवर्त पुराण
13. मार्कण्डेय पुराण	14. वामन पुराण	15. वराह पुराण	16. मत्स्य पुराण
17. कूर्म पुराण	18. ब्रह्माण्ड पुराण		

उपर्युक्त श्लोकों में नारद पुराण में क्रम संख्या 4 पर वायु पुराण तथा भागवत पुराण में क्रम संख्या 4 पर वायु पुराण के स्थान पर शिव पुराण का नाम आता है।

देवी भागवत पुराण में आद्य अक्षर से निर्दिष्ट अष्टादश पुराणों का नाम इस श्लोक में निबद्ध किया गया है–

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं व चतुष्टयम्।

अनापलिङ्ग कू स्कानि पुराणानि पृथक्–पृथक्।।[1]

इस श्लोक के अनुसार–

- 'म' वर्ण से प्रारम्भ होने वाले दो पुराण– मत्स्य पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण।
- 'भ' वर्ण से प्रारम्भ होने वाले दो पुराण– भागवत पुराण तथा भविष्य पुराण।
- 'ब्र' वर्ण से प्रारम्भ होने वाले तीन पुराण– ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण।
- 'व' वर्ण से प्रारम्भ होने वाले चार पुराण– विष्णु पुराण, वराह पुराण, वामन पुराण तथा वायु पुराण।

---

1. देवी भागवत पुराण, 1/3/21

- 'अ' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला एक पुराण– अग्नि पुराण।
- 'ना' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला एक पुराण– नारदीय पुराण।
- 'प' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला एक पुराण– पद्म पुराण।
- 'लिङ्ग' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला एक पुराण– लिङ्ग पुराण।
- 'ग' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला एक पुराण– गरुड़ पुराण।
- 'कू' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला एक पुराण– कूर्म पुराण।
- 'स्क' वर्ण से प्रारम्भ होने वाला एक पुराण– स्कन्द पुराण।

पद्म पुराण में महापुराणों का सात्त्विक, राजस और तामस के भेद से तीन प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। इनमें विष्णु पुराण, नारदीय पुराण, भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, पद्म पुराण तथा वराह पुराण सात्त्विक महापुराण बताये गये हैं–

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।

गारुड़ं च तथा पाद्मं वाराहं शुभ दर्शने।।

सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।।[1]

राजस महापुराणों में ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण, वामन पुराण, ब्रह्म पुराण आते हैं–

ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त मार्कण्डेय तथैव च।

भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे।।[2]

---

1. पद्म पुराण, उत्तरखण्ड, 263/82–83
2. तदेव, 263/84

तामस महापुराणों में मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, लिङ्ग पुराण, शिव पुराण, स्कन्द पुराण और अग्नि पुराण की गणना की जाती है–

मात्स्यं कौर्म तथा लैङ्गंशैव स्कान्दं तथैव च।

आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे।।[1]

मत्स्य पुराण इससे कुछ भिन्न बताता है। उसमें विष्णु के वर्णनापरक पुराण सात्विक, ब्रह्म और अग्नि के प्रतिपादक पुराण राजस, शिव के प्रतिपादक तामस, सरस्वती और पितरों के माहात्म्य का वर्णन करने वाले पुराण सङ्कीर्ण माने गये हैं–

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।

राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।।

तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।

सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।[2]

स्कन्द पुराण के अनुसार दस पुराणों में तो केवल शिव की स्तुति है, चार में ब्रह्मा की और दो में देवी की तथा हरि की स्तुति की गयी है–

अष्टादश पुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।

चतुभिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।।[3]

यद्यपि पुराणों का वर्गीकरण समय–समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया है जिसका विषय अत्यन्त विस्तृत है तथापि यहाँ पर कुछ विशिष्ट वर्गीकरणों को शोधछात्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अब आगे पुराणों में

---

1. पद्म पुराण, उत्तरखण्ड, 263/81–82
2. मत्स्य पुराण, 53/68–69
3. स्कन्द पुराण, केदारखण्ड, 1

प्रतिपादित विषयों का तथा श्लोक संख्या का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

(1) ब्रह्म पुराण–

अष्टादश महापुराणों में ब्रह्म पुराण सर्वप्रथम गणना में आता है। यह पुराण दो भागों में विभक्त है– पूर्व भाग तथा उत्तर भाग। इसमें सृष्टि कथन, सूर्य और सोमवंश का आख्यान, उड़ीसा के तीर्थों के विस्तृत वर्णन के साथ–साथ सूर्य और शिव में अभेद प्रदर्शित करते हुए उनकी महत्ता का वर्णन किया गया है। विष्णु, शिव, भागवत, नारद, ब्रह्मवैवर्त तथा स्कन्द पुराण में ब्रह्म पुराण की श्लोक संख्या दस हजार बतायी गयी है किन्तु मत्स्य पुराण में श्लोक संख्या तेरह हजार बतायी गयी है–

ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्व यावन्मात्रं मरीचये।

ब्रह्मं त्रिदश साहस्त्रं पुराणं परिकीर्त्यते।।[1]

(2) पद्म पुराण–

पद्म पुराण पाँच खण्डों में उपलब्ध होता है– (क) सृष्टि खण्ड, (ख) भूमि खण्ड, (ग) स्वर्ग खण्ड, (घ) पाताल खण्ड, (ङ) उत्तर खण्ड।

पद्म से ब्रह्म की उत्पत्ति प्रदर्शित करने के कारण यह पद्म पुराण के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ब्रह्म, विष्णु तथा शिव तीनों के एकत्व की उद्भावना की गयी है। शकुन्तला एवं राम की कथाओं के साथ अनेक कथाएँ इसमें वर्णित हैं।

इसमें वर्णित शकुन्तलोपाख्यान् की साम्यता महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित शकुन्तलोपाख्यान् से की जा सकती है।

---

1. मत्स्य पुराण, 53/12–13

अग्नि पुराण के मत को छोड़कर प्रायः सभी पुराणों के मतानुसार इसकी श्लोक संख्या पचपन हजार (55,000) है।

एतदेव महापद्मेह्यभूद् हैरण्यमयं जगत्।

तद् वृत्तान्ताश्रयं तद्वत पाद्ममित्युच्यते बुधैः।।

पाद्म पञ्च पञ्चाशत् सहस्त्राणीह पठ्यते।।[1]

(3) विष्णु पुराण–

समस्त पौराणिक लक्षणों से परिपूर्ण इस पुराण में अवतारों के माध्यम से विष्णु की स्तुति की गयी है। विष्णु पुराण दो भागों में विभक्त है– (1) पूर्व भाग एवं (2) उत्तर भाग।

साहित्यिक दृष्टि से विष्णु पुराण अतीव सरस और मनोहर है। ध्यातव्य है कि इस पुराण में मौर्यवंशी राजाओं का उल्लेख मिलता है। लगभग सभी पुराणों में इसकी श्लोक संख्या तेइस हजार (23,000) स्वीकार की गयी है।

वाराह कल्पवृतान्तमधि कृत्य पराशरः।

यत् प्राह धर्मानखिलांस्तदुक्तं वैष्णवं विदुः।।

त्रयोविंशति साहस्त्रं तत्प्रमाणंविदुर्बुधाः।।[2]

(4) वायु पुराण/शिव पुराण–

कतिपय विद्वान् वायु पुराण और शिव पुराण को एक ही पुराण के रूप में स्वीकार करते हैं जबकि कतिपय विद्वान् दोनों पुराणों में किञ्चित भेद मानते हैं। सृष्टि आदि के अतिरिक्त यहा पर अन्यान्य विविध विषयों का वर्णन है किन्तु इसका प्रधान उद्देश्य शिव स्तुति ही है। ध्यातव्य है कि इसके दो

---

1. मत्स्य पुराण, 53/14
2. तदेव, 53/16–17

अध्याय विष्णुपरक हैं जिसमें गुप्त साम्राज्य का वर्णन है जिसका सङ्केत महाकवि बाण ने कादम्बरी में किया है–

पुराणेषु वायु प्रलपितं।[1]

वायु पुराण के 104वें अध्याय के अनुसार इसमें कुल तेइस हजार (23,000) श्लोक हैं।

(5) भागवत पुराण–

अष्टादश पुराणों में यह पुराण सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है। इसमें सकाम कर्म, निष्काम कर्म, साधन ज्ञान, सिद्ध ज्ञान, साधन भक्ति, साध्य भक्ति, वैधी भक्ति, मर्यादा मार्ग, अनुग्रह मार्ग, द्वैत–अद्वैत आदि सभी का रहस्य बड़ी ही मधुरता के साथ भरा है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णित है। इसका दशम् स्कन्ध श्रीकृष्ण लीला के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है।

ध्यातव्य है कि भागवत पुराण के समान ही देवी भागवत पुराण भी है। भागवतों का ग्रन्थ भागवत महापुराण तथा शाक्तों का ग्रन्थ देवी भागवत पुराण कहा जाता है। भागवत महापुराण में अट्ठारह हजार (18,000) श्लोक हैं जो कुल 12 स्कन्धों में विभक्त है।

ग्रन्थाष्टादश साहस्त्रं श्रीमद्भागवतं विदुः।[2]

(6) नारदीय पुराण–

इसे वृहन्नारदीय पुराण भी कहते हैं। इसमें विष्णु की महिमा तथा विष्णु भक्ति का वर्णन है। यह दो खण्डों में विभक्त है– (क) पूर्व खण्ड– इसमें 125 अध्याय हैं एवं (ख) उत्तर खण्ड– इसमें 82 अध्याय हैं।

---

1. कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ0 126–127
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, 131/13

नारदीय पुराण में वर्णाश्रम धर्म, श्राद्ध तथा प्रायश्चित विधान आदि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त, छन्द आदि का साङ्गोपाङ्ग वर्णन इसमें पाया जाता है। इसमें श्लोक संख्या पच्चीस हजार (25,000) स्वीकार की गयी है।

यत्राह नारदो धर्मान् ब्रहत्कल्पाश्रयानिह।

पञ्चविंशत् सहस्त्राणि नारदीयतदुच्यते।।[1]

(7) मार्कण्डेय पुराण–

इस पुराण में पक्षियों को उद्देश्य कर मार्कण्डेय मुनि द्वारा धर्माधर्म का विचार किया गया है। बहुसंवत्सर जीवी मार्कण्डेय मुनि द्वारा अनेकशः प्रश्नों का समाधान किए जाने के कारण इसे मार्कण्डेय पुराण कहा जाता है। इसमें पक्षियों का जन्म निरूपण, नल की तीर्थ यात्रा, हरिश्चन्द्र कथा, दत्तात्रेय कथा और हैह्य चरित्र का वर्णन है। दुर्गासप्तशती इसी पुराण का एक अंश है। इसमें कुल श्लोक संख्या नौ हजार (9,000) स्वीकार की गयी है।

यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा।

व्याख्याता वै मुनि प्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः।।

मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्व विस्तरेण तु।

पुराणं नव साहस्त्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते।।[2]

(8) अग्नि पुराण–

अपने विषय वैविध्य के कारण यह पुराण अष्टादश पुराणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें अष्टादश विद्याओं का वर्णन, रामायण, महाभारत, हरिवंश

---

1. मत्स्य पुराण, 53/23
2. तदेव, 53/25–26

आदि ग्रन्थों का सार, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, दर्शन, व्याकरण, कोष, काव्य तथा भारतीय संस्कृति आदि का वर्णन है। इसमें श्लोक संख्या पन्द्रह हजार (15,000) स्वीकार की गयी है।

(9) भविष्य पुराण–

इसमें भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ की गयी हैं। इसमें चारों वर्णों के कर्त्तव्य तथा सूर्य, अग्नि तथा नागों की पूजा का विवरण है। यह पाँच पर्वों में विभक्त है– (क) ब्रह्म पर्व, (ख) वैष्णव पर्व, (ग) शैव पर्व, (घ) सौर पर्व, (ङ) प्रतिसर्ग पर्व।

इसमें उद्भिज विद्या पर ऐसा व्यापक प्रकाश डाला गया है जो आधुनिक वैज्ञानिकों के पथ प्रदर्शन में सर्वथा समर्थ है।

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्भुखः।

अघोर कल्प वृत्तान्त प्रसङ्गेन जगत्स्थितिम्।।

मनवे कथयामास भूत ग्रामस्य लक्षणम्।

चतुर्दश सहस्त्राणि तथा पञ्चशतानि च।

भविष्य चरितं प्रायं भविष्य तदि होच्यते।।[1]

इसमें श्लोक संख्या लगभग चौदह हजार (14,000) मानी गयी है।

(10) ब्रह्मवैवर्त पुराण–

सम्पूर्ण सृष्टि को ब्रह्म का विवर्त बताने के कारण यह पुराण ब्रह्मवैवर्त पुराण कहा जाता है। यह पुराण कुल चार खण्डों में विभक्त है– (क) ब्रह्म खण्ड, (ख) प्रकृति खण्ड, (ग) गणेश खण्ड, (घ) कृष्ण जन्म खण्ड। ब्रह्म खण्ड

---

1. मत्स्य पुराण, 53/30–31

में सृष्टि का वर्णन है। प्रकृति खण्ड में कृष्ण के आदेश से दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, राधा आदि रूपों में प्रकृति ही परिवर्तित होती है। गणेश खण्ड में गणेश को कृष्ण के अवतार के रूप में वर्णित किया गया है। कृष्ण जन्म खण्ड में श्रीकृष्ण के जन्म, युद्ध तथा रासलीला का वर्णन है। इसकी श्लोक संख्या अट्ठारह हजार (18,000) बतायी गयी है।

रथन्तरस्य कल्पस्य वृतान्तमधि कृत्य च।

सावर्णिना नारदाय कृष्ण माहात्म्यमुत्तमम्।।

यत्र ब्रह्म वराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः।

तदष्टादश साहस्त्रं ब्रह्मवैवर्त मुच्यते।।[1]

(11) लिङ्ग पुराण–

इस पुराण में विष्णु और शिव की प्रशंसा की गयी है। शिव तथा शिवलिङ्ग की पूजा पद्धति का सम्यक् विवेचन किया गया है। यह पुराण दो भागों में विभक्त है– (क) पूर्व भाग एवं (ख) उत्तर भाग।

इसमें शिव के 28 अवतारों का वर्णन है। कर्मकाण्ड इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः।

धर्मार्थ काम मोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य चः।।

कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम्।

तदेकादश साहस्त्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति।।[2]

---

1. मत्स्य पुराण, 53/33–34
2. तदेव, 53/36–37

इसमें श्लोक संख्या ग्यारह हजार (11,000) मानी गयी है।

(12) वराह पुराण–

इस महापुराण में वराह भगवान् को उद्देश्य कर मानव कल्प का वृत्तान्त भगवान् विष्णु द्वारा पृथ्वी देवी से कहा गया है। इसमें सृष्टि तथा वंशानुक्रम वर्णन, शिव, दुर्गा तथा गणेश की स्तुतियों के अतिरिक्त श्राद्ध, प्रयश्चित तथा देव मूर्तियों की प्रतिष्ठापना का भी वर्णन है।

महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च।

विष्णुनाऽभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमुच्यते।।

मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमा।

चतुर्विंशत्सहस्त्राणि तत्पुराणमिहोच्यते।।[1]

इस पुराण में श्लोक संख्या चौबीस हजार (24,000) स्वीकार की गयी है।

(13) स्कन्द पुराण–

आकार की दृष्टि से अष्टादश पुराणों में यह बृहत्तम ग्रन्थ है। इस पुराण के दो रूपों में विभाजन प्राप्त होते हैं– (क) खण्डात्मक विभाजन तथा (ख) संहितात्मक विभाजन।

(क) खण्डात्मक विभाजन–

i. माहेश्वर खण्ड

ii. वैष्णव खण्ड

iii. ब्रह्म खण्ड

---

1. मत्स्य पुराण, 53/38–39

iv. काशी खण्ड

v. अवन्ती खण्ड (रेवा खण्ड)

vi. नागर खण्ड (तापी खण्ड)

vii. प्रभास खण्ड।[1]

माहेश्वर खण्ड में दो अन्तर खण्ड हैं– (अ) केदार खण्ड, (आ) कुमारिका खण्ड।

इस प्रकार स्कन्द पुराण कुल सात खण्डों में विभक्त है।

(ख) संहितात्मक विभाजन–

संहिता	श्लोक संख्या
i. सनत्कुमार संहिता	पचपन हजार (55000)
ii. सूत संहिता	छः हजार (6000)
iii. शङ्कर संहिता	तीस हजार (30000)
iv. वैष्णव संहिता	पाँच हजार (5000)
v. ब्रह्म संहिता	तीन हजार (3000)
vi. सौर संहिता	एक हजार (1000)[2]

यत्रमाहेश्वरान् धर्मान् अधिकृत्य च षण्मुखः।

कल्पे तत्पुरुषे वृत्ते चरितैरुपबृंहितम्।।

स्कान्दं नाम पुराणं तदेकाशीति निगद्यते।

सहस्त्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु पठ्यते।।[3]

---

1. पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 113 से उद्धृत
2. संहितात्मक विभाजन, पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 114 से उद्धृत
3. मत्स्य पुराण, 53/41–42

इस पुराण में श्लोक संख्या इक्यासी हजार (81000) स्वीकार की गयी है।

(14) वामन पुराण–

इस पुराण में विष्णु के वामन अवतार की प्रमुखता होने के कारण इसे वामन पुराण की संज्ञा से अभिहित किया गया है। वामन पुराण दो भागों में है– (क) पूर्व भाग, (ख) उत्तर भाग।

इस पुराण में शरद् वर्णन, दक्ष यज्ञमें सती का देहत्याग, शिव विवाह, गणेश उत्पत्ति, कार्तिकेय चरित्र, दान महिमा, भुवनकोष का वर्णन, कात्यायनी प्रादुर्भाव, महिषासुर वध, अन्धकासुर उत्पत्ति आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

त्रिविक्रमस्य माहात्यमधिकृत्य चतुर्मुखः।

त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम्।।

पुराणं दश साहस्त्रं कूर्म कल्पानुगं शिवम्।।[1]

इसमें श्लोक संख्या दस हजार (10000) स्वीकार की गयी है।

(15) कूर्म पुराण–

इस पुराण में विष्णु के विविध अवतारों के साथ–साथ कूर्मावतार का विशिष्ट वर्णन होने के कारण इसे कूर्म पुराण कहा जाता है। कूर्म पुराण में स्वयं बताया गया है कि इसमें चार संहिताएँ थीं– (क) ब्राह्मी संहिता, (ख) भगवती संहिता, (ग) सौरी संहिता, (घ) वैष्णवी संहिता।

---

1. मत्स्य पुराण, 53/44–45

वर्तमान में केवल ब्राह्मी संहिता ही उपलब्ध है। यही ब्राह्मी संहिता वर्तमान कूर्म पुराण नाम से जानी जातीहै, इसके दो भाग हैं– (अ) पूर्व भाग, (आ) उत्तर भाग।

इसके पूर्व भाग में लक्ष्मी–इन्द्रद्युम्न संवाद, वर्णाश्रम आचार, सृष्टि प्रकरण, भृगुवंश वर्णन, दक्ष यज्ञ विध्वंस, युग धर्म निरूपण, काशी प्रयाग महात्म्य विस्तार रूप से वर्णित है तथा उत्तर भाग को ईश्वर व्यास गीत कहा गया है। यहाँ शैव दर्शन के अनुकूल पाशुपत योग का वर्णन किया गया है।

यत्र धर्मार्थ कामानां मोक्षस्य च रसातले।

माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दने।।

इन्द्रद्युम्न प्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्र सन्निधौ।

अष्टादश सहस्त्राणि लक्ष्मी कल्पानुषाङ्गिकम्।।[1]

नारदीय पुराण के अनुसार इसमें सत्रह हजार (17000) श्लोक थे किन्तु सम्प्रति छः हजार (6000) श्लोक ही उपलब्ध हैं।

(16) मत्स्य पुराण–

मौलिकता और प्राचीनता की दृष्टि से मत्स्य पुराण का अन्यतम स्थान है। इसमें मत्स्यावतार से सम्बन्धित जलप्लावन का आख्यान वर्णित है, जिसमें मत्स्य का रूप धारण करके भगवान् विष्णु ने जल प्रलय के समय मनु को बचाया था। इसके अलावा मनु–मत्स्य संवाद, मानसी सृष्टि, मैथुनी सृष्टि, ब्रह्मा और सरस्वती चरित्र, पृथु और ययाति चरित्र, सोम सूर्यवंश वर्णन, वृत्त विधान, प्रयाग माहात्म्य, शाकद्वीप वर्णन, युग विवरण, नरकोपाख्यान, देवासुर संग्राम, नर्मदा माहात्म्य, सावित्री उपाख्यान, राजधर्म वर्णन, गृह निर्माण, सामुद्रिक ज्ञान,

1. मत्स्य पुराण, 53/46–47

प्रतिमा विधान और श्राद्ध कल्प इत्यादि विषय वर्णित हैं। महाकवि कालिदास के नाटक विक्रमोवर्शीय नाटक की साम्यता मत्स्य पुराण के उर्वशी उपाख्यान से की जा सकती है।

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्यर्थ जनार्दनः।

मत्स्य रूपेण मनवे नरसिहोपवर्णनम्।।

अधिकृत्याऽब्रवीत सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः।

तन्मात्स्यमिति जानीध्वंसहस्त्राणि चतुर्दश।।[1]

मत्स्य पुराण में श्लोक संख्या चौदह हजार (14000) स्वीकार की गयी है परन्तु अग्नि पुराण में यह संख्या तेरह हजार (13000) बतायी गयी है।

(17) गरुड़ पुराण–

इस पुराण की कथा को विष्णु ने कश्यप को सुनाया था, इसके दो भाग हैं– (क) पूर्व खण्ड, (ख) उत्तर खण्ड।

पौराणिक विषयों के साथ–साथ इसमें विष्णु भक्ति, वैष्णव धार्मिक कृत्य तथा प्रायश्चित आदि का विवरण है। इसमें गणित और फलित ज्योतिष औषधियाँ रत्न तथा व्याकरणादि विषयों का वर्णन है। गरुड़ पुराण का उत्तर खण्ड ही प्रेत कल्प कहा जाता है जिसमें जीव की गर्भावस्था और नरक का वर्णन है, यमपुरी मार्ग, प्रेतवास स्थान, प्रेत लक्षण, प्रेत स्वरूप, प्रेत–गीत, प्रेत योनि मुक्ति का उपाय, मनुष्यों की आयु, यमलोक विस्तार, सपिण्डीकरण, श्राद्ध वृषोत्सर्ग विधान का विस्तृत रूप से वर्णन है। श्राद्ध के अवसर पर इसका पाठ किया जाता है।

यदा च गारुड़े कल्पे विश्वाण्डाद् गरुड़ोद्भवम्।

---

1. मत्स्य पुराण, 53/49–50

अधिकृत्याब्रवीद्विष्णुः गारुड़ं तदिहोत्यते।।

तदष्टादशकं चैव सहस्त्राणीह पठ्यते।।[1]

गरुड़ पुराण की सम्पूर्ण श्लोक संख्या अट्ठारह हजार (18000) स्वीकार की गयी है।

(18) ब्रह्माण्ड पुराण–

ब्रह्माण्ड पुराण की कथावस्तु चार पादों में विभक्त है– (क) प्रक्रिया पाद, (ख) अनुषङ्ग पाद, (ग) उपोद्घात पाद, (घ) उपसंहार पाद।

ब्रह्माण्ड पुराण में विश्व भूगोल का विशद वर्णन उल्लिखित है। जम्बूद्वीप वर्णन के प्रसङ्ग में वन, पर्वत और नदियों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त श्राद्ध सम्बन्धी विषय, परशुराम की कथा, सगर वंशानुकीर्तन के प्रसङ्ग में गङ्गावतरण की कथा और सोम सूर्यवंश की उत्पत्ति का वर्णन भी इस पुराण में है। इसके सात खण्डों में अध्यात्म रामायण वर्णित है। इसका कथन है कि अद्वैत भावना और राम भक्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ब्रह्माण्ड पुराण की सम्पूर्ण श्लोक संख्या बारह हजार (12000) स्वीकार की गयी है।

इस प्रकार पुराणों का आरम्भ ब्रह्म पुराण से और अन्त ब्रह्माण्ड पुराण से होता है तथा मध्य दसवें ब्रह्मवैवर्त में ब्रह्म की स्मृति करा दी गयी है कि पुराण सृष्टि विद्या का प्रतिपादन करते हैं, जो ब्रह्म से आरम्भ करके ब्रह्माण्ड तक ज्ञान को पहुँचाती हैं। वह आदि, मध्य और अन्त में ब्रह्म का कीर्तन करती हुई ब्रह्म पर हमारे ध्यान को स्थिर कर देती है।

---

1. मत्स्य पुराण, 53/52–53

उप–पुराण

अष्टादश पुराणों के नाम के सन्दर्भ में यदि विचार किया जाये तो वायुपुराण एवं शिवपुराण के विषय में कतिपय ग्रन्थानुसार मतैक्य नहीं है परन्तु अन्य सभी पुराणों के नाम एवं पुराण संख्या सर्वत्र एक ही पायी जातीहै परन्तु उप पुराणों की संख्या एवं नामावली के सन्दर्भ में ग्रन्थ तथा विद्वानों में मतैक्य का अभाव है।

यहाँ कतिपय ग्रन्थानुसार उप पुराणों की नामावली दृष्टव्य है–

स्कन्द पुराण (रेवा खण्ड) के अनुसार उपपुराण

1. सनत्कुमार उपपुराण
2. नरसिंह पुराण
3. शौकेय
4. बृहस्पति
5. दुर्वासस्
6. नारदोक्त
7. कपिल
8. मानव
9. उशनस्
10. ब्रह्माण्ड
11. वारुण
12. कालिका
13. माहेश्वर
14. साम्ब
15. सौर
16. पाराशर
17. भागवत
18. कौर्म

तथैवोपपुराणानि यानि चोक्तानि वेधसा। इदं ब्रह्मपुराणस्य सुलभं सौरमुत्तमम्।। संहिता द्वय संयुक्तं पुण्यं शिव कथाश्रयम्। आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता।। सनत्कुमारनाम्नाहि तद्विब्पातं महामुने। द्वितीयं नारसिंहं च पुराणे पाद्मसज्ज्ञिते।। शौकेयं हि तृतीयं तु पुराणे वैष्णवे मतम्। बार्हस्पत्यं चतुर्थं च वायव्यं सम्मतं सदा। दौर्वाससं पञ्चमं च स्मृतं भागवते सदा। भविष्ये नारदोक्तं च सूरिभिः कथितं पुरा। कापिलं मानवं चैव तथैवोशन सेरितम्। ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वय मेव च। माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थ

सञ्चयम्। पाराशरं भागवतं कौर्मं चाष्टादशकं क्रमात्।। एतान्युपपुराणानि मयोक्तानि यथा क्रमम्।[1]

स्कन्द महापुराण के प्रभास खण्ड में भी उप पुराणों का वर्णन किया गया है, जो निम्न प्रकार है–

1. आदि	2. नरसिंह	3. स्कन्द	4. शिवधर्म
5. दुर्वासस्	6. नारदोक्त	7. कपिल	8. मानव
9. उशनस्	10. ब्रह्माण्ड	11. वरुण	12. कालिका
13. माहेश्वर	14. साम्ब	15. सौर	16. पराशर
17. मारीच	18. भार्गव		

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिहमतः परम्। तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्ट कुमारेणानुभाषितम्।। चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दी भाषितम्। दुर्वाससोक्त माश्चर्य नारदोक्तमतः परम्। कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम् ब्रह्माण्डं वारुणं चान्यत्कालिकाहवयमेव च। माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थ सञ्चयम्। पराशरोक्तं परमं मारीचं भार्गवाहवयम्।।[2]

अन्यत्र पद्म पुराण के पाताल खण्ड में अष्टादश उप पुराणों का नामोल्लेख निम्न प्रकार से आया है–

तथा चोपपुराणानि कथयिष्याम्यतः परम्। आद्यं सनत्कुमाराख्यं नारसिंहमतः परम्।। तृतीयमाण्ड मुद्दिष्टं दौर्वाससमथैव च। नारदीय मथान्यच्च कापिलं मानवं तथा। तद्वदौशनसं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततः परम्। वारुणं कालिकाहवानं माहेशं साम्बमेव च। सौरं पाराशरं चैव मारीचं भार्गवाह्वयम्। कौमारं च पुराणानि कीर्त्तितान्यष्ट वै दश।।

---

1. स्कन्द महापुराण (रेवा खण्ड), 1/46–52
2. तदेव (प्रभास खण्ड), 2/11–15

1. सनत्कुमार	2. नरसिंह	3. अण्ड	4. दुर्वासस्
5. नारदीय	6. कपिल	7. मानव	8. उशनस्
9. ब्रह्माण्ड	10. वरुण	11. कालिका	12. माहेश्वर
13. साम्ब	14. सौर	15. पाराशर	16. मारीच
17. भार्गव	18. कुमार[1]		

यद्यपि पुराण साहित्य अत्यन्त विशाल है। उनमें से कतिपय पुराण ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथा कतिपय वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं है। मातृका स्वरूप प्रकाशित उपलब्ध अन्य उप पुराणों का वर्णन प्रातः स्मरणीय पद्मश्री प्रो0 बृजेश कुमार शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'पुराणसाहित्यदर्शः' में किया है जो निम्नवत् है–

1. आदि उपपुराण	2. नरसिंह उपपुराण	3. शिवमधर्म उपपुराण	4. कपिल उपपुराण
5. वरूण उप पुराण	6. कालिका उपपुराण	7. शाम्ब उपपुराण	8. सौर उपपुराण
9. पाराशर उपपुराण	10. मारीच उपपुराण	11. भार्गव उपपुराण	12. शिव उपपुराण
13. एकाम्र उपपुराण	14. देवी उपपुराण	15. मुद्गल उपपुराण	16. देवी भागवत उपपुराण
17. वाशिष्ठलिङ्ग उपपुराण	18. वशिष्ठ उपपुराण	19. कल्कि उपपुराण	20. वृहन्नारदीय उपपुराण
21. क्रिया योगसार उपपुराण	22. धर्म उपपुराण	23. विष्णु धर्मोत्तर उपपुराण	24. विष्णुधर्म उपपुराण
25. वृहद्धर्म उपपुराण	26. गणेश उपपुराण[2]		

औप पुराण परिचय

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में औप पुराण नाम से पुराणों का कोई भेद उपलब्ध नहीं है परन्तु विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार औप पुराणों का विभाजन भी किया है–

1. आदि औप पुराण	2. सनत्कुमार औप पुराण	3. वृहन्नारदीय औप पुराण
4. आदित्य औप पुराण	5. नन्दिकेश्वर औप पुराण	6. कूर्म औप पुराण
7. भागवत औप पुराण	8. वशिष्ठ औप पुराण	9. भार्गव औप पुराण

1. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, 115/93–97
2. पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 143 से उद्धृत

10. मुद्गल औप पुराण	11. कल्कि औप पुराण	12. देवी औप पुराण
13. महाभागवत औप पुराण	14. वृहद्धर्म औप पुराण	15. परानन्द औप पुराण
16. वहिन औप पुराण	17. पशुपति औप पुराण	18. हरिवंश औप पुराण[1]

इसी प्रकार पुराण साहित्य का चतुर्विध विभाजन भी विद्वानों द्वारा किया गया है जो निम्नवत् है– (क) महापुराण, (ख) उपपुराण, (ग) अतिपुराण, (घ) पुराण अन्यत्र कतिपय विद्वानों द्वारा पुराण साहित्य का पञ्चविध विभाजन भी किया गया है जो इस प्रकार है– (क) महापुराण, (ख) उप पुराण, (ग) औप पुराण, (घ) उपोप पुराण, (ङ) उपौप पुराण।

इस प्रकार से पुराण साहित्य अत्यधिक विशाल है तथा इसका विभाजन करना सरल कार्य नहीं है।

सूर्य के प्रकाश की भाँति पुराण को ज्ञान का स्रोत माना जाता है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार को हटाकर प्रकाश कर देता है उसी प्रकार पुराण अपनी ज्ञानरूपी किरणों से मानव मन का अन्धकार दूर करके सत्य के प्रकाश का ज्ञान देते हैं। सनातन काल से ही जगत् पुराणों की शिक्षाओं और नीति पर आश्रित है। पुराणों में पृथक्–पृथक् देवी–देवताओं को केन्द्र में रखकर पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म और कर्म–अकर्म की कथाएँ हैं। प्रेम, भक्ति, त्याग, सेवा, सहनशीलता आदि ऐसे मानवीय गुण हैं जिनके अभाव में उन्नत समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः पुराणकार ने अत्यन्त सरल भाषा में सुहृत सम्मित उपदेशों से भारतीय समाज में सद्भावना तथा सत्य की प्रतिष्ठा का प्रयास किया।

*****

1. पुराणों का चतुर्विध तथा पञ्चविध विभाजन, पुराणसाहित्यादर्शः, पृ0 62–63 से उद्धृत

द्वितीय अध्याय

पुराणों में तीर्थ प्रशस्ति तथा श्रीराम सङ्कीर्तन

पुराणों में तीर्थ प्रशस्ति–

अखिल ब्रह्माण्ड नायक परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम की सृष्टिमें अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अनन्त भू–भाग हैं। उन समस्त भू–भागों में भारतवर्ष ही एक ऐसा पावन देश है जहाँ के सरिता सरोवर, वन, पर्वत और ग्रामादि भी अपनी गुरु गरिमा एवं पावनता से विश्व के समस्त प्राणियों को परमसिद्धि प्रदान करने में समर्थ हैं। अतएव भारतीय समाज की समस्त आर्थिक, सामाजिक एवं परमार्थिक व्यवस्थाएँ श्रुति–स्मृति प्रतिपादित धर्मशास्त्रों के अटल सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित हैं। उन धर्मशास्त्रों से भारतीय जीवन के आदर्श सभ्यता, संस्कृति तथा विद्या–वैभव के उत्कर्ष का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी कारण भारत का प्रत्येक प्राणी गर्व से कह पाता है कि भारत विश्व गुरू है। देवता भी भारतवर्ष में उत्पन्न हुए, मनुष्यों की महिमा का गान करते हैं– श्रीमद्भागवतपुराण में प्रोक्त है–

अहो अमीषां किमकारि शोभनं

प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।

यैर्जन्म लब्ध नृषु भारताजिरे

मुकुन्दसैवोपयिकं स्पृहा हि नः।।[1]

अर्थात् अहा जिन जीवों ने भारतवर्ष में भगवान् की सेवा के योग्य मनुष्य जन्म प्राप्त किया, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इन पर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं? इस परम सौभाग्य के लिए तो निरन्तर हम भी तरसते हैं।

देवता भी अपने हृदय में यह विचार करते हैं कि हमें भारतवर्ष जैसी पवित्र कर्मभूमि में पुनः पुण्य कर्म करने का अवसर प्राप्त हो।

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 5/19/21

श्रीमद्भागवतमहापुराण में अन्यत्र भी प्रोक्त है–

यद्यत्र न स्वर्गसुखावशेषितं

स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम्।

तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्

वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति।[1]

अर्थात् अब तक स्वर्ग सुख भोग लेने के बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन और शुभ कर्मों से यदि कुछ भी पुण्य बचा है तो उसके प्रभाव से हमें इस भारतवर्ष में भगवान् की स्मृति से युक्त मानव जन्म प्राप्त हो क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करने वाले का सब प्रकार से कल्याण करते हैं।

भारत के सुखद शान्त तत्त्व साधना के प्राङ्गण में ही विश्व प्राण की झांकियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। भारत के ही विश्व–दुर्लभ शिल्प सौन्दर्य में परब्रह्म के दर्शन होते हैं। भारतीय तीर्थ ही आज भी मुक्ति साधना के आधार बने हुए हं जिसको प्राप्त करने के लिए विश्व के अनेक देशों तथा अनेक धर्मों के लोग आज भी भारतीय तीर्थ स्थलों पर अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयासरत देखे जा सकते हैं। तीर्थ से बढ़कर विश्व भाषाओं में वस्तुतः दूसरा सुन्दर शब्द नहीं है। इसका तारक समुद्धारक होना ही इसकी अनुपमता का परिचायक है। भारत स्वयं तीर्थ बहुल देश है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश, नगर और ग्राम तक में तीर्थ विद्यमान हैं।

यद्यपि भारतवर्ष कई राज्यों में विभाजित था तथा भारतीय जन भाँति–भाँति के सम्प्रदायों एवं उप–सम्प्रदायों के अनुयायी थे किन्तु तीर्थ यात्राओं ने भारतीय संस्कृति एवं देश की महत्त्वपूर्ण मौलिक एकता की भावना

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 5/19/20

को संरक्षित एवं संवर्धित किया। वाराणसी, अयोध्या एवं रामेश्वरम् को सभी हिन्दुओं ने चाहे वे उत्तर भारत के हों या दक्षिण भारत के, समान रूप से पवित्र माना है। यद्यपि हिन्दू समाज बहुत सी जातियों में विभक्त था और जातीय सङ्कीर्णता की भावना से बद्ध था किन्तु तीर्थ यात्राओं ने सभी को पवित्र नदियों एवं स्थलों पर एक स्थान पर बैठा दिया।

पवित्र स्थानों से सम्बन्धित परम्पराओं, तीर्थ यात्राओं की संयमशीलता पवित्र एवं दार्शनिक लोगों के समागम एवं तीर्थों के वातावरण ने यात्रियों को एक उच्च आध्यात्मिक स्तर पर अवस्थित कर रखा था और उनके मन में एक ऐसी श्रद्धा भक्ति की भावना भर उठती थी जो तीर्थयात्रा से लौटने के पश्चात् भी दीर्घकाल तक उन्हें जीवन्त और अनुशासित किए रहती थी। तीर्थ यात्रा करना एक ऐसा साधन था जो साधारण लोगों को स्वार्थमय जीवन कर्मों से दूर रखने में सहायक होता था और उन्हें उच्चतर एवं दीर्घकालीन, महान्, नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन मूल्यों के विषय में सोंचने को प्रेरित करता रहता था।

पौराणिक साहित्य में मानव जीवन के सर्वविधि उत्कर्ष की प्राप्ति होती है। प्राचीनकाल में उस विशुद्ध चेतना की प्राप्ति के स्थान तीर्थ माने जाते थे जहाँ मानव समाज किन्हीं विशेष पर्व तिथियों पर जाकर पूर्वजों की अपूर्व देन धैर्य, साहस, सौख्य, यश, ऐश्वर्य और पुण्य प्राप्त करते थे। आज भी वे तीर्थ अपनी पावनता का परिचय दे रहे हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर भारतवर्ष के मानव आज भी लक्षावधि संख्या में नित्य तीर्थ यात्रा के लिए जाते हैं।

तीर्थ अलौकिक है, स्वर्ग के सोपान हैं और भगवान् की विविध लीलाओं के स्मारक होने से भगवन्मय हैं। वे तीर्थ दर्शन, सेवन, मज्जन, स्मरण एवं अभिगमन से चित्त शुद्ध करने वाले हैं। इसका मुख्य कारण है भारतीय महर्षियों की तपस्या। उन्होंने अपनी तपःशक्ति द्वारा भारत वसुन्धरा के रजः कणों में ऐसे

पावन तत्वों को सन्निविष्ट कर दिया है कि उस रज को मस्तक पर धारण करने मात्र से सम्पूर्ण पाप, ताप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे भगवान् भाष्कर के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि तीर्थ यात्रा से मानव को महान् पुण्य की प्राप्ति बतायी गयी है।

पद्म पुराण में प्रोक्त है–

तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः।

यद्दर्शनं नृणां पाप–राशि–दाहाशुशुक्षणिः।।[1]

तीर्थों पर जाने से प्राणी देवाधिदेव हो जाता है क्योंकि प्राणी तीर्थ जाने से पूर्व अपने मन तथा शरीर को सदाचार, सद्विचार और सदुपासना द्वारा विशुद्ध बना लेता है, जिससे तीर्थ यात्रा का महान् पुण्य उसे सहज ही प्राप्त हो जाता है।

वस्तुतः तीर्थों की ऐसी महिमा ही उसका निरन्तर सेवन इस जीवन के एक मात्र उद्देश्य भगवत तत्त्व तथा भगवत प्रेम की प्राप्ति के लिए प्रेरित करने वाली है।

ऐसी प्रेरणा मिलती है भगवत प्रेमी महात्माओं के सङ्ग से और ऐसे महात्मा मिलते हैं तीर्थों की पावन धरती पर। इसीलिए शास्त्र पुराणों ने सेवित पवित्र स्थानों, तीर्थों में जाकर सत्सङ्ग करने की पवित्र जलाशयों में स्नान धार्मिक अनुष्ठान तथा दानादि करने और पवित्र वातावरण में विचरण करने की आज्ञा दी। तीर्थ यात्रा का वास्तविक प्रयोजन है आत्मा का उद्धार करना। इस लोक ओर परलोक के भोगों की प्राप्ति के लिए तीर्थ यात्रा न करके आत्मा के कल्याण के लिए तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। जो मनुष्य आत्म कल्याण के

---

1. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, 19/16

उद्देश्य से श्रद्धा भक्ति पूर्वक नियम पालन करते हुए तीर्थ यात्रा करता है उसे तीर्थ से महान् लाभ होता है। जैसे सूर्य के ताप से रहित प्रातः काल या सायं काल के उत्तम समय में तथा उत्तम पुरुषों के सङ्ग और उनसे वार्तालाप के समय में स्वाभाविक ही मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ शान्त और सात्त्विक रहती हैं, उसी प्रकार अयोध्या, चित्रकूट, ऋषिकेश, वृन्दावन आदि तीर्थ स्थानों में जाकर वहाँ एकान्त में श्रद्धा भक्ति और नियम पालन पूर्वक निवास करने से वहाँ के पवित्र परमाणुओं का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और भजन ध्यान में सहायता मिलती है, क्योंकि तीर्थ में अध्यात्म सम्बन्धी परमाणु स्वाभाविक ही व्याप्त रहते हैं। उनका साधारणतयः तो वहाँ रहने वाले सभी लोगों पर प्रभाव पड़ता है फिर जिनका हृदय शुद्ध होता है, उन श्रद्धालु मनुष्यों पर तो विशेष रूप से उनका प्रभाव पड़ता है। जैसे सूर्य का प्रकाश सब जगह पर समान से होते हुए भी दर्पण पर उसका प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। उसी प्रकार ईश्वर और महात्माओं का प्रभाव सब जगह समान भाव से रहते हुए भी जिनमें श्रद्धा भक्ति और अन्तःकरण की पवित्रता होती है उन पर उनका विशेष प्रभाव पड़ता है।

तीर्थों की अनन्त महिमा है वे अपनी स्वाभाविक शक्ति से ही सबका पाप नाश कर उन्हें मनोवांक्षित फल प्रदान करते हैं। हिन्दू शास्त्रों में तीर्थों के नाम रूप लक्षण और महत्त्व का बड़ा विशद वर्णन किया गया है। महाभारत, रामायण आदि के साथ ही प्रायः सभी पुराणों में तीर्थों की महिमा गायी गयी है। पद्म पुराण और स्कन्द पुराण तो तीर्थ महिमा से परिपूर्ण हैं।

तीर्थों में किनको कब, कैसे, क्या–क्या लाभ हुए तथा किस तीर्थ का कैसे प्रादुर्भाव हुआ, इसका बड़े सुन्दर ढङ्ग से अति विशद वर्णन उनमें पाया गया है।

भारतवर्ष में ऐसे करोड़ों तीर्थ हैं इसी भाँति अन्यान्य देशों में भी बहुत तीर्थ हैं। तीर्थों की इतनी महिमा इसीलिए है कि वहाँ महान् पवित्रात्मा भगवत प्राप्त महापुरुषों और सन्तों ने निवास किया या श्री भगवान् ने किसी भी रूप में कभी प्रकट होकर उन्हें अपना लीला क्षेत्र बनाकर महान् मङ्गलमय कर दिया है।

व्याकरण शास्त्र के अनुसार तीर्थ शब्द की व्याख्या इस प्रकार है– "तृ– प्लवन तरणयोः धातु से पातृ तुदिवचिरिचसिचभ्यस्थक् इस उणादि सूत्र द्वारा 'थक्' प्रत्यय करने पर तीर्थ शब्द की व्युत्पत्ति हुई जिसका शाब्दिक अर्थ है (तीर्यते अनेन) जिसके द्वारा तर जाये।"

श्रीमद् अमर सिंह प्रणीत अमरकोष में प्रोक्त है–

निपानागमयोस्तीर्थमृषि जुष्टे जले गुरौ।[1]

तीर्थम्– पौंसरा, शास्त्र, ऋषि सेवित जल, गुरु, अध्यापक।

श्री वामन शिवराम आप्टे कृत संस्कृत–हिन्दी कोष में तीर्थ शब्द के अनेक अर्थ प्रस्तुत किए गए हैं–[2]

1. तीर्थम् (तृ+थक्) मार्ग, सड़क, रास्ता, घाट।
2. नदी में उतरने का स्थान, घाट (नदी के किनारे बनी हुई सीढ़ियाँ)।
3. जल स्थान।
4. पवित्र स्थान तीर्थ यात्रा का उपयुक्त स्थान मन्दिर आदि जो किसी पुण्य कार्य के लिए अर्पित कर दिया गया हो (विशेषकर जो किसी पावन नदी के किनारे स्थित हो)।

---

1. अमरकोष, 03/86
2. नोट– क्रम संख्या 1–20, संस्कृत हिन्दी शब्दकोष, पृ0 431

5. मार्ग, माध्यम, साधन– तदनेन तीर्थेन घटेत् आदि।

6. उपचार, तरकीब।

7. पुण्यात्मा, योग्य व्यक्ति, श्रद्धा का पात्र, उपयुक्त आदाता।

8. धर्मोपदेष्टा, अध्यापक।

9. मूल श्रोत।

10.यज्ञ।

11.मन्त्री।

12.उपदेश शिक्षा।

13.उपयुक्त स्थान या क्षण।

14.उपयुक्त या यथापूर्व रीति।

15.हाथ के कुछ भाग जो देवताओं और पितरों के लिए पवित्र होते हैं।

16.दर्शन शास्त्र के विशिष्ट सिद्धान्तवादी।

17.स्त्रियोचित लज्जा।

18.स्त्री रज।

19.ब्राह्मण।

20.अग्नि।

इस प्रकार तीर्थ शब्द के अनेकानेक अर्थ प्राप्त होते हैं। यदि तीर्थ शब्द का आधुनिक विधि से निर्वचन किया जाये तो 'ती' शब्द से तीन 'र्थ' शब्द से अर्थ प्रयोजन लेना चाहिए। इस प्रकार जिससे तीन अर्थों की सिद्धि अर्थात् तीन पदार्थों की प्राप्ति हो उसे तीर्थ कहते हैं। पदार्थ का तात्पर्य है प्रयोजन और अर्थ। जगत् में चार पुरुषार्थ हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इन चारों में से अर्थ

तो तीर्थ यात्रा करने में व्यय होता है अतः उसकी सिद्धि प्रायः तीर्थ यात्रा से नहीं होती है वैसे आजकल वर्तमान मान्यता से कतिपय ऐसे तीर्थ स्थान हैं। जैसे तिरूपति बालाजी, शिरडी साईं कतिपय ऐसे स्थान हैं जहाँ लोग अर्थ प्राप्ति की कामना से भी तीर्थ यात्रा करते हैं। शास्त्रों के मतानुसार धर्म, काम और मोक्ष इन तीनों की सिद्धि तीर्थ यात्रा से होती है। सात्त्विक पुरुष तो मोक्ष के लिए ही तीर्थ यात्रा करते हैं। धर्म संग्रह के लिए सात्त्विक और राजसी दोनों प्रकार के मनुष्य तीर्थ यात्रा करते हैं। केवल इहलौकिक और पारलौकिक कामनाओं की सिद्धि के लिए ही राजसी मनुष्य तीर्थ यात्रा करते हैं। इनमें धर्म संग्रह के लिए निष्काम भाव से तीर्थ यात्रा करने वाले मनुष्य सात्त्विक हैं और सकाम भाव से यात्रा करने वाले राजसी हैं क्योंकि निष्काम भाव से की हुई तीर्थ यात्रा का फल मुक्ति है और सकाम भाव की यात्रा इस लोक के स्त्री, पुत्र आदि और परलोक के स्वर्ग आदि भोगों की प्राप्ति है। तीर्थों में धर्म, काम, मो़ा इन तीन पदार्थों की सिद्धि होती है और वे मनुष्यों को पाप से मुक्त करने वाले हैं, इसी से उन्हें तीर्थ कहा जाता है।

तीर्थवास और तीर्थ यात्रा की महिमा तो वर्णनातीत है यही कारण है कि तीर्थों की महिमा से संस्कृत साहित्य भरा पड़ा है। पुराण तो तीर्थ प्रशस्ति के पर्याय ही हैं। तीर्थों के महत्त्व का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है–

1. देशाटन और यात्रा की महिमा का संसार में सर्वत्र सदा गुणगान होता रहा है, ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप आख्यान में स्वयं इन्द्र रोहित से कहते हैं–

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीत रोहित शुश्रुम।

पापोनृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा।।[1]

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण, शुनःशेप आख्यान, 12

अशान्त व्यक्ति जो घूमते–घूमते थक न जाये उसे सम्पति की प्राप्ति नहीं होती है या यूँ कहें, थके हुए व्यक्ति को अनेक प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, सदाचारी व्यक्ति भी मनुष्यों के संसर्ग से समाज में रहते हुए पाप का भागी बन जाता है और भ्रमणशील व्यक्ति के सखा इन्द्र देव भी हैं। अन्यत्र भी यात्रा के लाभ वर्णित हैं–

चरन्वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।

सूर्यस्य पश्य श्रेयाणं यो न तन्द्रयते चरन्।।[1]

अर्थात् भ्रमण करने के क्रम में ही मनुष्य को मधु की प्राप्ति होती है। वह सुस्वादु गूलर अथवा उदुम्बर का फल प्राप्त करता है। अर्थात् अन्य वस्तुओं के तुल्य ही अनेक भोग्य पदार्थों की प्राप्ति उसको सम्भव है और तो और सूर्य की श्रेष्ठता उसकी महिमा पर दृष्टिपात करें जिसमें आलस्य नाम की कोई वस्तु नहीं अतिरिक्त इसके कि वे सर्वदा चलायमान हैं। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रन्थों में भी यात्रा के शुभ फलों का वर्णन पाया जाता है।

वातावरण का शिक्षा–दीक्षा और सांस्कृतिक समुन्नति में अपना विशेष स्थान होता है किन्तु तीर्थों का वातावरण तो इस दिशा में सर्वाधिक उत्तम है। उनमें प्रवास निवास से मानव अन्तःकरण विशेष रूप से प्रभावित होता है और आत्मलाभ की भूमिका में प्रगतिशील होने लगता है।

प्रकृति परम ब्रह्म के स्वरूप का पर्याय है। राग–द्वेष से मुक्त मानव प्रकृति में प्रभु स्वरूप की दिव्य ज्योति का अनुभव करने लगता है।

प्रकृति की सुरम्य गोद में प्रतिष्ठित भारतीय तीर्थ इस सत्य के ज्वलन्त तथा जीवन्त उदाहरण हैं। उनमें रहकर साधारण मानव भी परमात्म तत्त्व का विश्वासी बन जाता है। असाधारण मानव की बात तो पृथक् ही है।

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण, शुनःशेप आख्यान, 16

आधुनिक भौतिक विज्ञान का यह मत है कि भौतिक पदार्थों, वस्तुओं, खान–पान और वस्त्रों से भी मानव मन प्रभावित होता है। यही कारण है कि चित्त पर तीर्थों की भौतिकता और भौतिक विधि–विधानों का भी प्रभाव पड़ता है। इस तरह तीर्थों की न केवल अध्यात्म प्रधानता अपितु भौतिकता भी आत्मलाभ में कारण बनती है।

विश्व असमानता की रङ्गस्थली है। सर्वत्र असमानता अपने क्रूर रूप में दृष्टिगोचर होती है। असमानता और समानता का सात्त्विक समन्वय सामञ्जस्य भी तीर्थों में देखने को मिलता है।

तीर्थ भारतीय व्यापक अखण्डता के दिव्य प्रतीक हैं। तीर्थ स्थलों पर जाति–पाँति सम्प्रदाय आदि में पृथक् होते हुए भी सम्पूर्ण भारतीय एक माला में जुड़े हुए मनके की भाँति प्रतीत होते हैं।

संसार धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा से ही सुख की सांस लेने योग्य बन सकता है। भारतीय तीर्थ आज भी धर्म और अध्यात्म साधना के केन्द्र हैं जहाँ जाकर व्यक्ति धार्मिकता तथा आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत हो जाता है।

तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः।

पुण्योदकेषु सततं साधु श्रोणि विराजिषु।।[1]

अग्नि पुराण में प्रोक्त है–

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।

विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फलमश्नुते।।

प्रतिग्रहदुपावृतो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।

निष्पाप तीर्थ यात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत्।।[2]

---

1. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, 19/17
2. अग्निपुराण, तीर्थ महात्म्य, 109/2–3, महाभारत, आरण्यक पर्व, 80/30

अर्थात् जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयम में रहें तथा जिसमें विद्या, तपस्या और उत्तम कीर्ति है वही तीर्थ के पूर्ण फल का भागी होता है। जो प्रतिग्रह छोड़ चुका है, नियमित भोजन करता है और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखता है वह पाप रहित तीर्थ यात्री सब फलों को प्राप्त करता है।

वराह पुराण में पृथ्वी माता को उपदेश देते हुए तीर्थ की महत्ता के विषय में स्वयं वराह भगवान् कहते हैं–

इन्द्रलोकात् परिभ्रष्टो मम् तीर्थ प्रभावतः।

सर्व सङ्गं परित्यज्य मद्भक्तश्चैव जायते।।[1]

महाकवि माघ प्रणीत शिशुपाल वध में प्रोक्त है–

अशेषतीर्थोपह्यताः कमण्डलेर्निधाय पाणा वृषिणाभ्युदीरिताः।

अघौघ विध्वंस विधौ पटीयसीर्नतेन मूर्ध्ना हरिग्रही दपः।।[2]

अर्थात् नारदीजी द्वारा लाये गये समस्त तीर्थों के जल से भरे कमण्डल को हाथ में लेकर उस जल को भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मस्तक से लगाकर आदरपूर्वक ग्रहण किया जो कि पाप समूहों का नाशक है।

पद्म पुराण में तीर्थों की महिमा के विषय में वर्णन करते हुए बताया गया है– पाप राशि का निवारण करने के लिए तीर्थों की महिमा का श्रवण श्रेष्ठ है तथा तीर्थों का सेवन भी प्रशस्त है।

जो मनुष्य प्रतिदिन यह कहता है कि मैं तीर्थों में निवास करूँ और तीर्थों में स्नान करूँ वह परमपद को प्राप्त होता है। तीर्थों की चर्चा करने मात्र से

---

1. वराह पुराण, 137/229
2. शिशुपाल वध, 1/18

उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं अतः तीर्थ धन्य हैं। तीर्थ सेवी पुरुषों के द्वारा जगत्कर्ता भगवान् नारायण का सेवन होता है।

पद्म पुराण में तीर्थों के स्वरूप एवं लक्षण प्रोक्त हैं–

तीर्थानुश्रवणं धन्यं धन्यं तीर्थ निषेवणम्।

पापराशिनिपातायनान्योपायः कलौ युगे।।

वासंकुर्यामहं तीर्थे तीर्थ स्पर्शमहं तथा।

एवं योनुदिनं ब्रूते सयाति परमं महत।।

पापानि तस्य नश्यन्ति तीर्था लापनं मात्रतः।

तीर्थानि खलु धन्यानि धन्य सेव्यानि सुव्रताः।।

तीर्थानां सेवनादेव सेवितो भवति प्रभुः।

नारायणो जगत्कर्त्ता नास्ति तीर्थात्परं पदम्।।

ब्रह्मणस्तुलसीचैव अश्वत्थस्तीर्थं संचयः।

विष्णुश्च परमेशानः सेव्य एव नृभिः सदा।।[1]

तीर्थों की विशेष महिमा का मण्डन पद्म पुराण में किया गया है। उपर्युक्त श्लोक पद्म पुराण के स्वर्ग खण्ड में वर्णित हैं। पद्म पुराण में ही अन्यत्र भूमि खण्ड में निर्देश किया गया है कि किन–किन स्थानों को तीर्थ संज्ञा से अभिहित किया गया है–

भूमण्डल पर सात सिन्धु परम पवित्र और सर्वदा स्थित है। जहाँ कहीं भी उत्तम तीर्थ प्राप्त हों वहाँ स्नान, दान आदि कर्म करना चाहिए। उत्तम तीर्थों के प्रभाव से अक्षय फल की प्राप्ति होती है।

---

1. पद्म पुराण, स्वर्ग खण्ड, 40/2–6

मानस आदि सरोवर भी पावन तीर्थ बताये गये हैं तथा जो छोटी–छोटी नदियाँ हैं उनमें भी तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। कुएँ को छोड़कर जितने खोदे हुए जलाशय हैं उनमें तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। भूतल पर मेरु आदि पर्वत भी तीर्थ रूप हैं। यज्ञ भूमि, यज्ञ और अग्निहोत्र में भी तीर्थ प्रतिष्ठा है। शुद्ध श्राद्ध भूमि, देव मन्दिर, होमशाला, वैदिक स्वाध्याय मन्दिर, घर का पवित्र स्थान और गोशाला ये सभी उत्तम तीर्थ हैं। जहाँ सोमयाजी ब्राह्मण निवास करता है, वहाँ भी तीर्थ की प्रतिष्ठा है। जहाँ पवित्र बगीचे हैं, जहाँ पीपल वृक्ष, ब्रह्म वृक्ष (पाकर) और बरगद का वृक्ष है तथा जहाँ पर अन्य जङ्गली वृक्षों का समुदाय है उन सब स्थानों पर तीर्थ का निवास है। जहाँ पिता और माता रहते हैं, जहाँ पुराणों का पाठ होता है, जहाँ गुरु का निवास होता है, जहाँ सती स्त्री रहती है वह स्थान निःसन्देह तीर्थ है। जहाँ श्रेष्ठ पिता और सुयोग्य पुत्र निवास करते हैं वहाँ भी तीर्थ है। ये सभी स्थान तीर्थ माने गए हैं–

तीर्थरूपा महापुण्याः सागरा सप्त एव च।

मानसायस्तथाराजन्सरस्यश्च प्रकीर्तिताः।।

निर्झराः पल्लवाः प्रोक्तास्तीर्थरूपा न संशयः।

स्वल्पानद्यो महाराजता सुतीर्थ प्रतिष्ठितम्।।

यज्ञभूमिश्च यज्ञश्च अग्निहोत्रेयथास्थितः।

श्राद्धभूमिस्तथा शुद्धा देवशाला तथा पुनः।।

होमशाला तथा प्रोक्ता वेदाध्ययनवेश्म च।

गृहेषुपुण्य संयुक्तं गो स्थानं वरमुन्तमम्।।

खातेष्वेवं च सर्वेषु वर्जयित्वा च कूपकम्।

पर्वतास्तीर्थं रूपाश्च मैर्वाद्याश्च महीतले।।

सोमपायी भवेद्यत्र तीर्थं तत्र प्रतिष्ठितम्।

आरामो यत्र पुण्यो अश्वत्थो यत्र तिष्ठति।।

ब्रह्मवृक्षो भवेधत्र वट वृक्षस्तथैव च।

अन्ये च वन्य संस्थाने तत्र तीर्थ प्रतिष्ठितम्।।

एते तीर्थाः समाख्याताः पिता माता तथैव च।

पुराणं पठ्यते यत्र गुरुर्यत्र स्वयं स्थितः।।

सुभार्या तिष्ठते यत्र तत्र तीर्थं न संशयः।

सुपुत्र तिष्ठते यत्र तत्र तीर्थ न संशयः।।[1]

उपर्युक्त प्रकार से पुरणों में मनुष्यों को यह समझाया गया है कि किन–किन स्थानों को तीर्थ संज्ञा प्राप्त है। मनुष्यों के आचार–विचार को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिए पुराणकार ने कतिपय मानस तीर्थों के विषय में भी बताया है। स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः।

सर्वभूत दया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च।।

दानं तीर्थं दम स्तीर्थं सन्तोष स्तीर्थ मुच्यते।

ब्रह्मचर्य परं तीर्थं तीर्थञ्च प्रियवादिता।।

ज्ञानतीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदा हृतम्।

तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा।।[2]

---

1. पद्म पुराण, भूमि खण्ड, 39/98–106
2. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, 47/30–32

अर्थात् एक तो मानस तीर्थों में सत्य तीर्थ है दूसरा क्षमा तीर्थ है और समस्त इन्द्रियों को निग्रह कर लेना यह भी एक महान तीर्थ है। सब प्राणियों पर दया भाव रखना तीर्थ है और सर्वदा कुटिलता रहित सीधापन रखना यह भी मानस तीर्थ होता है। दान तीर्थ है, दम तीर्थ है और सदा मन में पूर्णतयः सन्तोष की भावना रखना भी मानस तीर्थ कहा जाता है। पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य को धारण रखना सबसे बड़ा तीर्थ है। सबके साथ सदा प्रिय भाषण करना भी एक मानस तीर्थ है। ज्ञान, धैर्य तपश्चर्या करना भी मानस तीर्थ है। इन समस्त बताये गये मानस तीर्थों में सबसे श्रेष्ठ तथा प्रमुख तीर्थ है मन की शुद्धता।

महाभारत में बताया गया है कि तीर्थ यात्रा से प्राप्त पुण्य फल यज्ञ द्वारा प्राप्त पुण्य फल से भी महान् होता है–

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरत सत्तम्।

तीर्थाभि गमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।।[1]

इस प्रकार से जो लोग भगवान् में मन लगाकर भगवत्सेवा की बुद्धि से श्रद्धा तथा संयमपूर्वक तीर्थ यात्रा करते हैं उन्हें मोक्ष या भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है। जो लोग ऐसी बुद्धि न रखकर किसी लौकिक अथवा पारलौकिक कामना से ही श्रद्धा–संयमपूर्वक तीर्थ यात्रा करते हैं उनको अपने भाव तथा तीर्थ की शक्ति के अनुसार उनकी कामना के अनुरूप उचित फल प्राप्त होता है। किसी भी प्रकार हो तीर्थ सेवन निश्चय ही लाभप्रद है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय धर्म और संस्कृति में अप्रतिम महत्त्व से ओत–प्रोत तीर्थों का बहुधा सङ्कीर्तन संस्कृत वाङ्मय में विस्तारपूर्वक किया गया है जिसमें पौराणिक वाङ्मय का अद्वितीय योगदान है।

---

1. महाभारत, आरण्यक पर्व, 80/38

श्रीराम सङ्कीर्तन–

भगवान् श्रीराम अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परम पिता परमेश्वर के अवतार थे और धर्म मर्यादा रखने के लिए भारत भूमि अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी राजा दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में अवतरित हुए थे। जैसा कि सर्वसम्मत श्रीमद् रामायण से स्पष्ट है–

इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।

नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमानवशी।।[1]

उस समय राक्षसों का नग्न वीभत्स रूप इतना प्रचण्ड हो गया था कि ऋषि, मुनियों, गौ, ब्राह्मणों का जीवन सङ्कट में पड़ गया था। जहाँ भी कोई शास्त्रविहित यज्ञ कर्म आदि किए जाते थे, राक्षसगण उन्हें विध्वंस करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। राक्षसों का राजा रावण समस्त भूमण्डल पर अपना एकच्छत्र राज्य स्थापित करने के लिए चारों ओर जाल फैला रहा था। देवताओं के आग्रह एवं अनुनय–विनय के फलस्वरूप भगवान् स्वयं अपने अंशों सहित राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के रूप में अवतरित हुए–

एवं विष्णुर्दशरथाज्जातस्तत्पत्निषु त्रिषु।

स्वांशैर्लोक हितायैव चतुर्धा जगतीपते।।

रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतः शत्रुघ्न एव च।।[2]

इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में प्रोक्त है–

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[3]

---

1. रामायण, बालकाण्ड, 1/8
2. नरसिंह पुराण, 47/40–41
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/7

अर्थात् हे भरतवंशी! जब भी और जहाँ भी धर्म का पतन होता है और अधर्म की प्रधानता होने लगती है तब–तब मैं अवतार लेता हूँ।

महाभारत के आरण्यक पर्व में प्रोक्त है कि इक्ष्वाकुवंश में अज नाम के महान् राजा थे, उनके पुत्र का नाम दशरथ था। उन्हीं परम पुण्यवान् महाराज दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नाम से चार महान् पुत्र हुए–

अजोनामाभवद्राजा महानिक्ष्वाकु वंशजः।

तस्य पुत्रो दशरथः शश्वत्स्वाध्यायवाञ्शुचिः।।

अभवंस्तस्य चत्वारः पुत्रा धर्मार्थकोविदाः।

रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्च महाबलः।।[1]

ब्रह्माण्ड पुराण में प्रोक्त है–

रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञोलोक बिश्रुतः।

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।।[2]

भगवान् श्रीराम के सङ्कीर्तन के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत महापुराण में शुकदेव जी ने परीक्षित को बताया था–

तस्यापि भगवानेषु साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।

अंशासेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।

रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया।।[3]

अर्थात् देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परमब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ने ही अपने अंशाशेन चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम श्री राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न थे।

---

1. महाभारत, आरण्यक पर्व, 258/6–7
2. ब्रह्माण्ड पुराण, मध्यम भाग, उपोद्घातपाद, 63/185
3. श्रीमद्भागवत पुराण, 9/10/2

कूर्मपुराण में श्रीराम सङ्कीर्तन करते हुए बताया गया है कि राजा रघु के अज उत्पन्न हुए उनसे राजा दशरथ हुए दशरथ के पुत्र रामवीर धर्मज्ञ और लोक प्रसिद्ध हुए। यहाँ पर भी भगवान् राम को विष्णु का अवतार बताया गया है।

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथ स्ततः।

रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोक विश्रुतः।।

जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुंरशेन विश्वकृत।।[1]

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के जन्म के सन्दर्भ में प्रकाश डालते हुए महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में लिखा है कि वे विष्णु स्वरूप हविष्य या खीर के आधे भाग से प्रकट हुए थे। कौशल्या के महाभाग पुत्र श्रीराम इक्ष्वाकु कुल का आनन्द बढ़ाने वाले थे। उनके नेत्रों में कुछ–कुछ लामिमा थी। उनके ओष्ठ लाल, भुजाएँ बड़ी–बड़ी और स्वर दुन्दुभि के समान गम्भीर था–

विष्णोरर्धं महाभागं पुत्र मैक्ष्वाकुनन्दनम्।

लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तौष्ठं दुन्दुभि स्वरम्।।[2]

इसी प्रकार स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

तथैव विष्णुरूत्पन्नः कौशल्यानन्दवर्धनः।

विश्वस्य रमणाच्चैय राम इत्युच्यते बुधैः।।[3]

महाभारत में प्रोक्त है कि राम लाल नेत्र वाले महाबाहु मतवाले हाथी के समान चलने वाले, लम्बी बाहों वाले ऊँचे कन्धे और काले तथा घुँघराले बालों

---

1. कूमपुराण, पूर्व विभाग, 20/17–18
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/11
3. स्कन्द पुराण, माहेश्वर खण्ड, रावणोपाख्यान, श्लोक 72

वाले, महातेजस्वी वीर बल में इन्द्र के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान तथा सब धर्मों के जानने वाले थे–

लोहिताक्षं महाबाहुं मत्तमातङ्गगामिनाम्।

दीर्घबाहुं महोरस्कं नील कुञ्चित मूर्धजम्।।

दीप्यमानं श्रियावीरं शक्रादि नवमं बले।

पारङ्ग सर्वधर्माणां ब्रहस्पति समं मतौ।।[1]

इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण में प्रोक्त है–

श्यामो युवालोहिताक्षो दीप्तास्योमित भाषितः।

आजानबाहुः सुमुखः सिंह स्कन्धो महाभुजः।।[2]

पुराण साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में स्थाने–स्थाने भगवान् श्रीराम की सुन्दरता का वर्णन प्राप्त होता है। कुमारदास विरचित जानकीहरणम् में श्रीराम की सुन्दरता का वर्णन द्रष्टव्य है–

पीनांसोनियत मुस्ततो विशालः क्षामं तद्व्यधयति मध्यमं शरीरं।

धात्रेति स्वयमनुचिन्त्य लम्बवाहुस्तम्भायां द्रढ़मिव यन्त्रितोऽस्यदेहं।।

नेत्रान्ताधर करपल्लवप्रभाभिस्तेनोष्ण द्युतिकर कुंकुमानुलिप्तः।

व्याकोशारुणवनज प्रभाविशेषोनिर्जित्याहित इव पादयो रधस्तात्।।

ज्ञानं विलोचनमिति प्रथिते तदीयेनेत्रे उभे विमलवृत्ति गुण स्वभावे।

एकं तयोः श्रुति पथस्य समीप मात्रं यातं प्रपन्नमखिल श्रुति पारमन्यत्।।[3]

---

1. महाभारत, आरण्यक पर्व, 26/9–10
2. ब्रह्माण्ड पुराण, मध्यम भाग, उपोद्वात पाद, 63/193
3. जानकीहरणम्, 6/56–58

अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के कन्धे मांसल थे और वक्ष विशाल था, उनका कटिप्रदेश पतला था अतः उनके शरीर को अवश्य कष्ट होता होगा ऐसा स्वयं ब्रह्मा ने विचार करके उनके शरीर को लम्बी भुजाओं से स्तम्भों से दृढ़ता से बाँध दिया। अपनी तिरछी आँखों, अधरों और पल्लव के सदृश हाथों की कान्ति से सूर्य की किरणों की अरुणाई से व्याप्त प्रफुल्ल कमलों की प्रभा को उन्होंने पराजित कर जैसे अपने पैर के तलुओं के नीचे रख लिया हो।

निर्मल गुण और स्वभाव से युक्त उनकी दो प्रसिद्ध आँखे थीं, एक दृष्टि चक्षु और दूसरी ज्ञान चक्षु थी। उनमें से पहली तो केवल कान तक पहुँचती थी पर दूसरी समस्त वेदों के पार तक जाती थी।

इस प्रकार से भगवान् श्रीराम के रूप और सुन्दरता का वर्णन अधिकांशतः समस्त पुराणों में किया गया है। भगवान् श्रीरामचन्द्र न केवल रूपवान अपितु अत्यन्त गुणवान भी थे। पुराणों में सर्वत्र यह वर्णन प्राप्त होता है कि चारों भाइयों में भगवान् श्रीराम अत्यन्त गुणवान् थे तथा राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों में राम को सर्वाधिक स्नेह करते थे क्योंकि वे अपने गुणों से तथा कार्यों से पिता को सर्वाधिक आनन्द प्रदान करते थे। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सर्वे ज्ञानोपसम्पन्ना सर्वे समुदिता गुणैः।

तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।।

इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः।

गज स्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथ चर्यासु सम्मतः।।[1]

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/26–27

अर्थात् सभी ज्ञानवान् और समस्त सद्गुणों से सम्पन्न थे। उनमें भी सत्य पराक्रमी श्री रामचन्द्र जी सबसे अधिक तेजस्वी और सब लोगों के विशेष प्रिय थे। वे निष्कलङ्क चन्द्रमा के समान शोभा पाते थे। उन्होंने हाथी के कन्धे पर तथा घोड़े की पीठ पर बैठने तथा रथ हाँकने की कला में भी सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त किया था।

महाभारत में भी आरण्यक पर्व में वर्णन आता है कि चारों भाइयों में बड़े का नाम राम था। उससे प्रजा बहुत प्रसन्न रहती थी। बुद्धिमान् राम बहुत श्रेष्ठ थे और वे पिता का हृदय प्रसन्न करने वाले थे–

ज्येष्ठो रामोऽभवत्तेषां रमयामान हि प्रजां।

मनोहरतया धीमन्पितुर्हृदयतोषणः।।[1]

क्षेमेन्द्रकृत रामायण मञ्जरी में यही कथन प्रोक्त है–

रामः सर्वगुण ग्राम रमणीयोऽधिकं पितुः।

हृदयोद्गीत चरितः प्रजानाम् भवत्प्रियः।।[2]

इस प्रकार एक आदर्श पुत्र के रूप में दशरथ नन्दन श्रीराम अपने माता–पिता की आज्ञा का पालन करते हुए बड़े हुए और उन्होंने अपने आचरण व्यवहार और उपलब्धियों से अपने माता–पिता को प्रसन्न और गौरवान्वित किया।

अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए श्रीराम 16 वर्ष की आयु में राक्षसों के अत्याचार से ऋषियों और मुनियों की रक्षा करने के लिए ऋषि विश्वामित्र के साथ भयानक वन में चले गए। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

---

1. महाभारत, आरण्यक पर्व, 261/6
2. रामायण मञ्जरी, 15/639

ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा।

विश्वामित्र गतं द्रष्ट्वा राजीवलोचनम्।।

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद् देव दुन्दुभिनिःस्वनैः।

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः प्रयाते तु महात्मनि।।[1]

अर्थात् उस समय धूलरहित सुख दायिनी वायु चलने लगी। कमलनयन श्रीराम को विश्वामित्र जी के साथ देख देवताओं ने आकाश से वहाँ फूलों की बड़ी भारी वर्षा की। देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं। महात्मा श्रीराम की यात्रा के समय शङ्खों और नगाड़ों की ध्वनि होने लगी।

श्री नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

मुनिधार्मिक शिद्धांश्च पश्यन्तौ रामलक्ष्मणौ।

ऋषिभ्यश्च वरान् प्राप्य तेननीतौ नृपात्मजौ।।

ताटकाया वनं घोरं मृत्योर्मुखमिवा परम।

गते तत्र नृपश्रेष्ठ विश्वामित्रो महातपाः।।[2]

अर्थात् मार्ग में मुनियों, धर्मात्माओं और शिद्धों का दर्शन करते हुए तथा ऋषियों से वर प्राप्त कर राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्र जी के द्वारा उस ताङका वन में ले जाये गये जो यमराज के दूसरे मुख के समान भयङ्कर था।

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने विश्वामित्र जी से अनेकानेक दिव्य अस्त्र प्राप्त किये तथा यज्ञ की रक्षा करते हुए मारीच, ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसों का वध किया।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 22/4–5
2. श्री नरसिंह पुराण, 47/74–75

श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रोक्त है–

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्यानिशाचरः।

पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः।।[1]

अर्थात् भगवान् श्रीराम ने विश्वामित्र के यज्ञ में लक्ष्मण के सामने ही मारीच आदि राक्षसों को मार डाला। वे सब बड़े–बड़े राक्षसों की गिनती में थे।

ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ रक्षण के निमित्त ही भगवान् ने पृथ्वी के भूभार को कम करने का प्रयास किया। इसके पश्चात् ऋषि विश्वामित्र राम, लक्ष्मण को साथ लेकर जनकपुरी मिथिला को प्रस्थान करते हैं जहाँ पर मार्ग में शापित अहिल्या का उद्धार भगवान् श्रीराम ने किया। वाल्मीकि रामायण के साथ–साथ अनेकानेक पुराणों में यह वृत्तान्त वर्णित है।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सा हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूब ह।

त्रयाणमपि लोकानां यावद् रामस्य दर्शनम्।

शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शन मागता।।[2]

अर्थात् गौतम के शापवश श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन होने से पहले तीनों लोकों के किसी भी प्राणी के लिए उनका दर्शन होना कठिन था।

श्रीराम का दर्शन मिल जाने से जब उनके शाप का अन्त हो गया तब वे उन सबको दिखायी देने लगीं।

इसी प्रकार नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

तेन नीतो विनितात्मा अहल्या यत्रतिष्ठति।

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण, 9/10/5
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 49/16

व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्ता शप्ता हि सा पुरी।।

पाषाणभूता राजेन्द्रस्य तस्य रामस्य दर्शनात्।

अहल्या मुक्तशापा च जगाम गौतमं प्रति।।[1]

अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी मुनि विश्वामित्र द्वारा उस स्थान पर लाये गये जहाँ शिला बनी हुई अहल्या थी। राजेन्द्रः पूर्व काल में इन्द्र के साथ व्यभिचार करने से अपने पति गौतम का शाप प्राप्त कर अहल्या पत्थर की हो गयी थी। उस समय राम का दर्शन पाते ही वह शाप से मुक्त हो पुनः अपने पति गौतम के साथ चली गयी।

भगवान् श्रीराम के दर्शन का ही प्रभाव था जो अहल्या शाप मुक्त हो गयी। श्री नरसिंह पुराण में अन्यत्र भी प्रोक्त है–

ब्रह्ममूर्त स्वयं यत्र भयादेस्तत्र का कथा।

यत्र सङ्कीर्त्यते रामकथामात्रमपि प्रभो।।

नोपसर्गभयं तत्र नाकालमरणं नृणाम्।

इत्युक्ते भार्गवो रामोराममाहाग्रतः स्थितम्।।[2]

अर्थात् जिनके नाम मात्र का स्मरण करने से संसार रूपी भय निवृत्त हो जाता है वे परमेश्वर ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान् हैं वहाँ भय आदि की चर्चा भी कैसे की जा सकती है। जहाँ श्रीरामचन्द्र जी की कथा मात्र का भी कीर्तन होता है वहाँ मनुष्यों के लिए संक्रात्मक बीमारी और अकाल मृत्यु का भय नहीं होता है।

श्रीराम सङ्कीर्तन के विषय में इसी प्रकार पद्म पुराणमें प्रोक्त है–

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 47/97–98
2. तदेव, 47/145–146

रघुनाथ सतीकीर्तिर्मद्बुद्धिर्निर्मलीमसाम्।

करिष्यति स्वसंपर्कात्कनकंत्वनलो यथा।।[1]

अर्थात् जैसे अग्नि के सम्पर्क से सोना शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार रघुनाथ जी की उत्तम कीर्ति मेरी बुद्धि को निर्मल बना देगी।

जनकपुरी मिथिला में श्रीरामचन्द्र जी ने शिव धनुष भङ्ग का महान् कर्म किया तथा जनकनन्दिनी सीता से विवाह किया। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

पश्यतां नृसहस्त्राणां बहूनां रघुनन्दनः।

आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्भनुः।।

आरोपयित्वा मौर्वी च पूरयामास तद्भनुः।

तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः।।[2]

अर्थात् धर्मात्मा श्रीराम ने उस धनुष को बीच से पकड़कर लीलापूर्वक उठा लिया और खेल सा करते हुए उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। उस समय कई हजार मनुष्यों की दृष्टि उन पर लगी थी। प्रत्यञ्चा चढ़ाकर महायशस्वी नरश्रेष्ठ श्रीराम ने ज्यों ही उस धनुष को कान तक खींचा त्यों ही वह बीच से टूट गया।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रोक्त है–

यो लोकवीरो समितौ धनुरैशमुग्रम्

सीता स्वयंवरं गृहे त्रिशतोपनीतम्।

---

1. पद्म पुराण, पातालखण्ड, 1/15
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 67/16–17

आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं

सज्जीकृतं नृपविकृष्य बभञ्ज मध्ये।।[1]

अर्थात् जनकपुर में सीताजी का स्वयंवर हो रहा था। संसार के चुने हुए वीरों की सभा में भगवान् शङ्कर का वह भयङ्कर धनुष रखा हुआ था। वह इतना भारी था कि तीन सौ वीर बड़ी कठिनाई से उसे स्वयंवर सभा में ला सके थे। भगवान् श्रीराम ने उस धनुष को बात की बात में उठाकर उस पर डोरी चढ़ा दी और खींचकर बीचोबीच से उसके दो टुकड़े कर दिए।

इसी प्रकार कूर्म पुराण में प्रोक्त है–

विज्ञाय रामो बलवान् जनकस्य गृहं प्रभुः।

भज्जयामास चादाय गत्वासौ लीलयैवहि।।[2]

इस प्रकार से श्रीराम जी का विवाह जनक नन्दिनी सीता माता के साथ सम्पन्न हुआ तत्पश्चात् माता सीता को विदाकर अयोध्यापुरी में आये तथा पिता के संतोष के लिए अयोध्या में ही रहने लगे। श्री रामचन्द्र जी अप्रतिम गुणों की खान थे जिसका बहुत ही सुन्दर वर्णन महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण के अयोध्या काण्ड में किया गया है। रामायण में वर्णित उनके कतिपय गुण द्रष्टव्य हैं–

बुद्धिमान् मधुरभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।

वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः।।[3]

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण, 9/10/6
2. कूर्म पुराण, पूर्व विभाग, 20/24
3. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 1/13

अर्थात् वे बड़े बुद्धिमान् थे और सदा मधुर वचन बोलते थे। अपने पास आये हुए मनुष्यों से पहले स्वयं ही बात करते थे और ऐसी बातें मुँह से निकालते थे जो उन्हें प्रिय लगे, बल और पराक्रम से सम्पन्न होने पर भी अपने महान् पराक्रम के कारण उन्हें कभी गर्व नहीं होता था।

कुलोचित मतिः क्षात्रं स्वधर्म बहु मन्यते।

मन्यते परया प्रीत्या महत् स्वर्गफलं ततः।।[1]

अर्थात् अपने कुलोचित आचार, दया, उदारता और शरणागत की रक्षा आदि में ही उनका मन लगता था। वे अपने क्षत्रिय धर्म के पालन से महान् स्वर्ग की प्राप्ति मानते थे, अतः बड़ी प्रसन्नता के साथ उसमें संलग्न रहते थे।

दृढभक्तिः स्थिर प्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचः।

निस्तन्द्रीरप्रमत्तश्च स्वदोष परदोष वित्।।[2]

अर्थात् गुरुजनों के प्रति उनकी दृढ़ भक्ति थी। वे स्थितप्रज्ञ थे और असद् वस्तुओं को कभी ग्रहण नहीं करते थे। उनके मुख से कभी दुर्वचन नहीं निकलता था। वे आलस्य रहित प्रमाद शून्य तथा अपने और पराये मनुष्यों के दोषों को भली प्रकार से जानते थे।

इस प्रकार से सर्वगुण सम्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक करने की योजना महाराजा दशरथ ने बनायी परन्तु दैव वशात् उनकी मँझली रानी कैकेयी ने अपनी दासी मन्थरा के बहकावे में आकर राजा दशरथ से 2 वरदानों की याचना की जिसके कारण भगवान् श्रीराम को 14 वर्षों के वनवास पर जाने की आज्ञा महाराज दशरथ द्वारा प्रदान की गयी। श्री

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 1/16
2. तदेव, 1/24

रामचन्द्र जी ने प्रसन्नता पूर्वक पिता की आज्ञा शिरोधार्य की। उनके साथ अनुज लक्ष्मण तथा भार्या सीता ने भी वनवास गमन स्वीकार किया।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

पितुर्निर्देशेन तु धर्मं वत्सलो

वन प्रवेशे कृत बुद्धि निश्चयः।

स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवी–

न्निवेदयस्वा गमनं नृपाय मे।।[1]

अर्थात् पिता के आदेश से वन में प्रवेश करने का बुद्धिपूर्वक निश्चय करके आये हुए धर्म वत्सल श्री रामचन्द्र जी सुमन्त्र की ओर देखकर बोले– आप महाराज को मेरे आगमन की सुचना दे दें।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतपुराण में प्रोक्त है–

यः सत्यपाश परिवीत पितुर्निर्देशं

स्त्रैणस्य चापि शिरसा जग्रहे सभार्यः।

राज्यं श्रियं प्रणायिनः सुह्रदो निवासं

त्यक्त्वा ययौ वनम सूनिव मुक्त सङ्गः।।[2]

अर्थात् पिता के वचनों को सत्य करने के लिए उन्होंने वनवास स्वीकार किया। यद्यपि महाराज दशरथ ने अपनी पत्नी के अधीन होकर ही उसे वैसा वचन दिया था, फिर भी वे सत्य के बंधन में बँध गये थे, इसलिए भगवान् ने अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने प्राणों के समान प्रिय राज्य–लक्ष्मी,

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 33/31
2. श्रीमद्भागवतपुराण, 9/10/8

प्रेमी, हितैषी, मित्र और महलों को वैसे ही छोड़कर अपनी पत्नी के साथ यात्रा की जैसे मुक्त सङ्ग योगी प्राणों को छोड़ देता है।

इसी प्रकार नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं रामः कमल लोचनः।

तथेत्याज्ञां गृहीत्वासौ नमस्कृत्य च तावुभौ।।

निष्क्रम्य तद् गृहाद्रायो धनुरादाय वेश्मतः।

कौशल्यां च नमस्क्रल्य सुमित्रां गन्तुमुद्यतः।।[1]

अर्थात् कैकेयी के मुख से पिता का यह वचन सुनकर कमल लोचन श्रीराम ने तथास्तु कहकर पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और उन दोनों माता–पिता को प्रणाम करके उनके भवन से निकलकर उन्होंने अपना धनुष सम्भाला। तत्पश्चात् कौशल्या और सुमित्रा माता को प्रणाम करके वे घर से जाने को तैयार हो गये।

इसी प्रकार कूर्म पुराण में प्रोक्त है–

स तस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुःखित मानसः।

बाढमित्यब्रवीद् वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित्।।

प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः।

ययौ वनं सपत्नीकः कृत्वा समयमात्मवान्।।[2]

अर्थात् कैकेयी के वचनों को सुनकर महाराज दशरथ ने अत्यन्त दुःखित मन से कहा– अच्छा ऐसा ही हो। तब धर्म को जानने वाले आत्मवान् अच्युत

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 48/59–60
2. कूर्म पुराण, पूर्व विभाग, 20/29–30

राम भी पिता के चरणों में प्रणाम कर वनवास की प्रतिज्ञा कर लक्ष्मण के साथ सपत्नीक वन को चले गये।

भगवान् श्री रामचन्द्र जी मर्यादा पुरुषोत्तम थे, अपने जीवन की प्रतिपल की क्रियाओं, आचार–व्यवहार से समाज को एक शिक्षा प्रदान करते थे। जिस प्रकार से उन्होंने एक आदर्श पुत्र के कर्त्तव्य पालन का अन्यतम् उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रत्येक युग में माता–पिता के प्रति एक पुत्र के कर्त्तव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

वनवास गमन मार्ग में आदिवासी, भील, किरात इत्यादि वनवासियों से वह भ्रातृवत व्यवहार करते थे। वर्तमान समाज में जाति प्रथा अत्यन्त घातक समस्या के रूप में समाज के सम्मुख उपस्थित है। तत्कालीन समाज में भी इसका प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु श्री रामचन्द्र जी ने निषादराज गुह को गले लगाकर अपना मित्र स्वीकार किया तथा निषादराज को अपनेअनुज भरत के समान प्रिय बताया।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

तत्र राजा गुहोनाम रामस्यात्मसमःसखा।

निषाद जात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः।।[1]

अर्थात् शृङ्गवेरपुर में गुहनाम का राजा राज्य करता था। वह श्री राम जी का प्राणों के समान प्रिय मित्र था। उसका जन्म निषाद कुल में हुआ था। वह शारीरिक शक्ति और सैन्य शक्ति की दृष्टि से भी बलवान् था वहाँ के निषादों का सुविख्यात राजा था।

भुजाभ्यां साधु वृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 50/33

दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।

अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च।।[1]

अर्थात् फिर श्रीराम ने अपनी दोनों गोल–गोल भुजाओं से गुह का अच्छी तरह से आलिङ्गन करके कहा– गुह सौभाग्य की बात है कि मैं आज तुम्हें बन्धु–बान्धवों के साथ स्वस्थ एवं सानन्द देख रहा हूँ। बताओ तुम्हारे राज्य में मित्रों के यहाँ तथा वनों में सर्वत्र कुशल तो है।

इसी प्रकार नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

जनान्निवर्त्य रामोऽसौ जगाम च गुहाश्रमम्।

गुहस्तु रामभक्तौऽसौ स्वभाव देव वैष्णवः।।[2]

अर्थात् अयोध्यावासियों को वापस लौटाकर श्रीराम ने गुह के आश्रम पर पदार्पण किया। गुह स्वभाव से ही वैष्णव तथा श्री रामचन्द्र जी का परम भक्त था। भगवान् श्री रामचन्द्र जी वन में अनेकानेक ऋषि–मुनियों के दर्शन करते हुए भरद्वाज ऋषि के आश्रम पर गये वहाँ से चित्रकूट पर निवास किया, वहाँ पर महर्षि वाल्मीकि के भी दर्शन किये। चित्रकूट पर्वत पर जब भरत श्री रामचन्द्र जी को मनाकर वापस अयोध्या ले जाने के लिए आते हैं वहाँ पर श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना उनके लिए महापाप है।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

कुलीनः सत्त्व सम्पन्नस्तेजस्वी चरित व्रतः।

राज्यहेतो कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः।।[3]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 50/41–42
2. नरसिंह पुराण, 48/90
3. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 101/16

अर्थात् उत्तम कुल में सम्पन्न, सत्त्वगुण सम्पन्न, तेजस्वी और श्रेष्ठ व्रतों का पालन करने वाला मेरे जैसा मनुष्य राज्य के लिए पिता की आज्ञा का उल्लंघन रूप पाप कैसे कर सकता है। अन्यत्र कहते हें मनुष्य लोक में सम्मानित और देवराज इन्द्र के तुल्य तेजस्वी मेरे महात्मा पिता ने मुझे जो वनवास की आज्ञा दी उसी को मैंने अपने लिए परम हितकारी मानता हूँ। उनकी आज्ञा के विरुद्ध सर्वलोकेश्वर ब्रह्मा का अविनाशी पद भी मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है–

यद्ब्रवीन्मा नरलोक सत्कृतः
पिता महात्मा विबुधाधियोपमः।
तदेव मन्ये परमात्मनो हितं
न सर्वलोकेश्वरभावमत्ययम्।।[1]

इस प्रकार भगवान् श्री रामचन्द्र जी विविध प्रकार से भरत को समझाते हैं। इसी प्रकरण में भगवान श्रीराम ने भरत को राजनीति विषयक बड़ी उत्तम जानकारी प्रदान की जो वर्तमान समय के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। जब भरत ने श्रीराम को पिता दशरथ के स्वर्गवास की जानकारी दी तो वे अत्यन्त दुःखी हुए तथा पूर्ण विधि–विधान से स्वर्गवासी पिता के निमित्त पिण्डदान आदि क्रियाएँ सम्पन्न की।

श्री रामचन्द्र जी को समझाने के लिए ऋषि जाबालि ने नास्तिक मत का अवलम्बन लेकर अनेकानेक तर्क प्रस्तुत किये परन्तु भगवान् श्रीराम ने जाबालि के नास्तिक मत का खण्डन करके आस्तिक मत की स्थापना की।

भगवान् श्रीराम ने जाबालि को बताया कि–

भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 101/27

सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत् ततः।।[1]

अर्थात् पृथ्वी, कीर्ति, यश और लक्ष्मी ये सबकी सब सत्यवादी पुरुष को पाने की इच्छा रखती है और शिष्ट पुरुष सत्य का ही अनुसरण करते हैं, अतः मनुष्य को सदा सत्य का ही सेवन करना चाहिए।

भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने नास्तिक मत का खण्डन करते हुए बताया–

यथा हि चोरः तथा हि बुद्ध–

स्तथागतं नास्तिक मत्र विद्धि।

तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां

स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्।।[2]

अर्थात् जैसे चोर दण्डनीय होता है, उसी प्रकार (वेद विरोधी) बुद्ध (बौद्धमतावलम्बी) भी दण्डनीय हैं। तथागत (नास्तिक विशेष) और नास्तिक को भी यहाँ इसी कोटि में समझना चाहिए इसीलिए प्रजा पर अनुग्रह करने के लिए राजा द्वारा जिस नास्तिक को दण्ड दिलाया जा सके उसे तो चोर के समान दण्ड दिलाया ही जाये परन्तु जो वश के बाहर हो उस नास्तिक के प्रति विद्वान् ब्राह्मण कभी उन्मुख न हो उससे वार्तालाप तक न करे।

इस प्रकार से भरत तथा समस्त गुरुजनों एवं माताओं को समझा–बुझाकर श्री राम ने अयोध्या वापस भेज दिया। कुछ दिनों चित्रकूट में निवास करने के पश्चात् प्रभु श्रीराम माता सीता एवं लक्ष्मण सहित अन्य स्थान पर जाने के लिए प्रस्थान करते हैं।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 109/22
2. तदेव, 109/34

मार्ग में विराध आदि राक्षसों का वध करके वे पञ्चवटी पहुँचे और वहीं पर्णकुटी का निर्माण करके निवास करने लगे। वहाँ सुपर्णखा को विरूप किया तथा खर, दूषण, त्रिशिरा सहित चौदह हजार राक्षसों का वध किया।

श्रीमद्भागवत में प्रोक्त है–

रक्षः स्वसुर्व्यकृत रूपम शत्रु बुद्धे–

स्तस्याः खरत्रिशिरदूषण मुख्य बन्धून्।

जहने चतुर्दश सहस्त्रमपारणीय–

कोदण्ड पाणिरटनाम उवास कृच्छूम।।[1]

वाल्मीकि रामायण में वर्णन आता है कि श्रीराम ने अपने पैने बाणों से डेढ़ मुहूर्त में ही इच्छानुसार रूप धारण करने वाले खर–दूषण आदि चौदह हजार राक्षसों का इस महासमर में संहार कर डाला–

रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा।

अर्धाधिक मुहुर्तेन रामेण निशितैशरैः।।

चतुर्दश सहस्त्राणि रक्षसां कामरूपिणाम्।

खरदूषण मुख्यानां निहितानि महामृधे।।[2]

इसी प्रकार नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

क्षणेन निहिततेन शरैरग्निशिखोपमैः।

खरश्च निहतस्तेन दूषणश्च महाबलः।

त्रिशिराश्च महारोषाद् रणे रामेण पातितः।

---

1. श्रीमद्भागवत्, 9/10/9
2. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, 30/30–31

हत्वा तान् राक्षसान् दुष्टान् रामश्चाश्रयमाविशत्।।[1]

इस प्रकार जब भगवान् श्रीराम ने खर–दूषण, त्रिशिरा सहित सभी राक्षसों का वध कर दिया तब सूपर्णखा लङ्का के राजा रावण के पास गयी और समस्त घटनाएँ बतायीं। रावण ने मारीच की सहायता से माता सीता का अपहरण कर लिया तब भगवान् श्रीराम अपने भाई, लक्ष्मण के साथ सीता माता की खोज प्रारम्भ करते हैं। जटायु पक्षी जो माता सीता की रक्षा करते हुए घायल हो गया था उसके प्राण त्याग के पश्चात् अन्तिम संस्कार किया। कबन्ध राक्षस का वध किया तथा भीलनी शबरी के दर्शन किए। सुग्रीव से मित्रता की तथा पीड़ित सुग्रीव की सहायता की। इन समस्त मानवीय लीलाओं में भगवान् श्रीराम ने पग–पग पर समाज के सम्मुख एक नवीन आदर्श प्रस्तुत किया।जब वानर राज बाली ने अपने आपको निर्दोष बताकर अपने वध का कारण पूछा तो श्री रामचन्द्र जी ने बाली से कहा–

औरसीं भगिनींवापि भार्यांवाप्यनुजस्य यः।

प्रचरेत् नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः।।[2]

इस प्रकार बालि वध के पश्चात् सुग्रीव को राजा तथा बालि पुत्र अङ्गद को युवराज बनाकर श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें माता सीता की खोज का कार्य सौंपा।

जब हनुमान् जी सीता की खोज करके आये तो श्रीराम जी ने वानरों की सहायता से समुद्र पर पुल बनाकर लङ्का पर चढ़ाई की तथा रावण सहित समस्त राक्षसों का वध किया।

कूर्म पुराण में प्रोक्त है–

---

1. नरसिंह पुराण, 49/57–58
2. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, $18/22^{1/2}$

ततः स रामो बलवान् सार्धं हनुमता स्वयम्।

लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिं चक्रे हि राक्षसाम्।।

कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः।

सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान् प्रभुः।।

सपत्नीकं च ससुतं सभ्रातकमरिंदमः।

आनयामास तां सीतां वायुपुत्र सहायवान्।।[1]

श्री नरसिंह पुराण में प्रोक्त है कि श्री रामचन्द्र जी के द्वारा शत्रु रावण का उसके गणों सहित वध हो जाने पर इन्द्रादि सभी देवता परस्पर कहने लगे– साक्षात् विष्णु ने ही श्री रामावतार लेकर हमारे वैरी रावण का जो दूसरों के लिए अवध्य था युद्ध में वध किया है–

रामेण निहिते तत्र रावणे सगणेरिपौ।

इन्द्राद्या देवताः सर्वाः परस्परमधाब्रुवन्।।

रामो भूत्वा हरिर्यस्मादस्माकं वैरिणं रणे।

अन्यैरवध्यमत्येन जघान युधि रावणम्।।[2]

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत पुराण में प्रोक्त है–

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज

बाणं स वज्रमिवतद्धृदयं बिभेद।

सोऽसृग वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमानाः

दुहिति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः।।[3]

---

1. कूर्म पुराण, पूर्व विभाग, 20/44–46
2. नरसिंह पुराण, 52/107–108
3. श्रीमद्भागवत महापुराण, 9/10/23

अर्थात् इस प्रकार रावण को फटकारते हुए भगवान् श्रीराम ने अपने धनुष पर चढ़ाया हुआ बाण उस पर छोड़ा। उस बाण ने वज्र के समान उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया। वह अपने दसों मुखों से रक्त उगलता हुआ विमान से गिर पड़ा। ठीक वैसे ही जैसे पुण्यात्मा लोग भोग समाप्त होने पर स्वर्ग से गिर पड़ते हैं। उस समय उसके पुरजन परिजन हाय–हाय करके चिल्लाने लगे।

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सिहर्क्षलाङ्गूल ककुद्विषाणः पराभिजिद्गन्धनगन्धवाहः।

रक्षोवृषश्चापल कर्ण चक्षुः क्षितीश्वरव्याघ्रहतोऽव सन्नः।।[1]

अर्थात् राक्षस सैनिक जिनकी पूँछ, ककुद और सीङ्ग थे जो शत्रुओं पर विजय पाने वाला था तथा पराक्रम और उत्साह आदि प्रकट करने में जो वायु के समान था, चपलता रूपी आँख तथा कान से युक्त वह राक्षसराज रावण रूपी सांड महाराज श्रीराम रूपी व्याघ्र द्वारा मारा जाकर नष्ट हो गया।

इस प्रकार रावण वध के पश्चात् भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने उसका विधिवत् अन्तिम संस्कार करवाया तथा समाज को यह शिक्षा दी कि शत्रु का भी सम्मान किस प्रकार से किया जाता है। विभीषण को लङ्का का राजा बनाया तथा माता सीता के दर्शन किए वहाँ पर लोक निन्दा के भय से माता सीता को अग्नि परीक्षा देने के लिए कहा। तत्पश्चात् श्रीराम जी अयोध्या वापस आये तथा अयोध्या का राजभार संभाला।

श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रोक्त है–

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः।

---

1. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 109/12

प्रजा स्वधर्म निरता वर्णाश्रम गुणान्विताः।

जुगोप पितृवद् रामोमेनिरेपितरं च ताम्।।[1]

अर्थात् भरत जी ने उनके चरणों पर गिरकर उन्हें प्रसन्न किया और उनके आग्रह करने पर भगवान् श्रीराम ने राजसिंहासन स्वीकार किया। इसके बाद वे अपने–अपने धर्म में तत्पर तथा वर्णाश्रम के आचार को निभाने वाली प्रजा का पिता के समान पालन करने लगे, उनकी प्रजा भी उन्हें अपना पिता ही मानती थी।

इसी प्रकार कूर्म पुराण में प्रोक्त है–

रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायणः।

अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबलः।।[2]

अर्थात् भरत द्वारा अभिषिक्त होकर महाबली, महातेजस्वी तथा धर्मपरायण श्रीराम ने भी राज्य का पालन किया।

इसी प्रकार नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

ततोऽयोध्यां पुरीं दिव्यां गत्वा तस्यां द्विजोत्तमैः।

अभिषिक्तो वशिष्ठाद्यैर्भरतेन प्रसादितः।

अकरोद्धर्मतो राज्यं चिरं रामः प्रतापवान्।।[3]

अर्थात् अयोध्यापुरी को जाकर भरत जी के मनाने पर श्री रामचन्द्र जी ने वशिष्ठ आदि उत्तम ब्राह्मणों के द्वारा अपना राज्याभिषेक करवाया तत्पश्चात् प्रतापी भगवान् श्रीराम ने चिरकाल तक धर्मपूर्वक राज्य किया।

---

1. श्रीमदभागवत महापुराण, 9/10/51
2. कूर्म पुराण, पूर्व विभाग, 20/54
3. नरसिंह पुराण, 52/124

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः।

तथेति प्रति जग्राह निषसा दासने शुभे।।[1]

अर्थात् भरत जी का निवेदन स्वीकार कर शत्रु नगरी पर विजय पाने वाले भगवान् श्रीराम ने तथास्तु कहकर उसे मान लिया और वे एक सुन्दर आसन पर विराजमान हुए।

श्रीराम राज्याभिषेक के सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

वशिष्ठो वामदेवश्च जाबालि रथ काश्यपः।

कात्यायन सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा।।

अभ्यषिञ्चन्नर व्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना।

सलिलेन सहस्त्राक्षं वसवो वासवं यथा।।[2]

अर्थात् जैसे आठ वसुओं ने देवराज इन्द्र का अभिषेक कराया था। उसी प्रकार वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ गौतम और विजय इन आठ मुनियों ने स्वच्छ एवं सुगन्धित जल के द्वारा सीता सहित पुरुष प्रवर श्री रामचन्द्र जी का अभिषेक किया।

इस प्रकार अयोध्या के राजा के रूप में राजतिलक किए जाने के बाद श्री रामचन्द्र ने भरत को अयोध्या का युवराज घोषित किया। प्रजा के कल्याण को सर्वोत्तम प्राथमिकता देने का कर्त्तव्य पालन करते हुए श्री राम जी ने एक आदर्श राजा का उदाहरण प्रस्तुत किया जो आज तक अद्वितीय बना हुआ है। श्रीराम ने अपने राज्य के सामान्य जनों की देखरेख और कल्याण की ओर

---

1. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 128/12
2. तदेव, 128/60–61

स्वयं को केन्द्रित किया और वे सभी प्रसन्न, स्वस्थ, समृद्ध और संतुष्ट थे। उनके राज्य में कहीं भी चोरी लूटपाट और हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं था। वसुधा हरी–भरी रहती थी तथा पेड़ों पर फल–फूल लदे रहते थे। लोग धार्मिक और दयालु थे। वे सभी तरह के लोभ से मुक्त थे, लोग अपने व्यवसाय में लगे रहते थे तथा व्यवसायिक वर्ग संतुष्ट एवं सम्पन्न था।

इस प्रकार श्रीराम ने लगभग 11 हजार वर्षों तक शासन किया। वाल्मीकि रामायण तथा अधिकाधिक पुराणों में राम राज्य का विस्तृत वर्णन आया है। श्रीराम के स्वधाम गमन का वर्णन वाल्मीकि रामायण में सरयू तट पर बताया गया है–

अध्यर्ध योजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम्।

सरयूं पुण्यं सलिलं ददर्श रघुनन्दनः।।

तां नदीमाकुलावर्तां सर्वत्रानुसरन् नृपः।

आगतः सप्रजो रामस्तं देशं रघुनन्दनः।।[1]

अर्थात् अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर रघुकुल नन्दन भगवान् श्रीराम ने पश्चिमाभिमुख हो निकट प्राप्त हुई पुण्य सलिला सरयू का दर्शन किया। सरयू नदी में सब ओर भँवरें उठ रही थीं। वहाँ सब ओर घूमकर रघुनन्दन राजा श्रीराम प्रजा जनों के साथ एक उत्तम स्थान पर आये–

गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च।

प्राप्य तत्तोयविक्लेदं देवलोकमुपा गमन्।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 110/1–2
2. तदेव, 110/26

अर्थात् स्थावर और जङ्गम सभी तरह के प्राणी सरयू के जल में प्रवेश करके उस जल से शरीर भिगोकर दिव्यलोक में जा पहुँचे।

श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रोक्त है–

तत् उर्ध्व ब्रह्मचर्य धारयन्न जुहोत् प्रभुः।

त्रयोदशाब्दसाहस्त्रमग्निहोत्रम खण्डितम्।।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डक कण्टकैः।

स्वपाद पल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः।।[1]

अर्थात् सीता माता के पृथ्वी लोक में समाहित होने के पश्चात् श्री रामचन्द्र जी ने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्ष तक अखण्ड रूप से अग्निहोत्र किया। तदनन्तर अपना स्मरण करने वाले भक्तों के हृदय में अपने उन चरण कमलों को स्थापित करके जो दण्डक वन में काँटों से बिंध गये थे, अपने परम ज्योतिर्मय धाम में चले गये।

इस प्रकार निःसन्देह पौराणिक वाङ्मय यह उद्घोष करता है कि आज तक पृथ्वी पर जन्मे मनुष्यों में श्रीरामचन्द्र जी सबसे अधिक सुन्दर, सद्गुणी, पराक्रमी, दयालु और सर्वाधिक प्रतिष्ठित तथा श्रेष्ठतम् थे।

वदन्ति मुनयः सर्वे साधूनां सङ्गमं वरम्।

यस्मात्पापक्षयकरी रघुनाथ कथा भवेत्।।[2]

पद्म पुराण उत्तर खण्ड में भगवान् श्रीरामचन्द्र की स्तुति के रूप में एक स्त्रोत का वर्णन है। जब पूर्वकाल में भगवान् श्रीराम जी रावण का वध कर चुके थे उस अवसर पर अमित तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा जी ने श्री रघुनाथ जी की

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण, 9/11/18–19
2. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, 1/10

सुन्दर बाँह अपने हाथ में लेकर जो स्तुति की थी वह 'और्ध्व दैहिक स्त्रोत' के नाम से प्रसिद्ध है। पद्म पुराण में ही वर्णन आता है कि भगवान् शङ्कर माता पार्वती से कहते हैं कि हे सुमुखि मैं तो राम! राम! राम! इस प्रकार जय करते हुए परम मनोहर श्रीराम में ही निरन्तर रमण करता हूँ। राम नाम सम्पूर्ण सहस्त्र नाम के समान है–

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।

सहस्त्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने।।[1]

अतः सम्पूर्ण वेदोपवृंहणवाङ्मय श्रीराम जी के चरित्र सङ्कीर्तन से सम्यक्तया समन्वित है।

*****

1. पद्म पुराण, उत्तर खण्ड, 71/331

तृतीय अध्याय

अयोध्या का पौराणिक तथा ऐतिहासिक वैभव

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जन्मभूमि है परम पवित्र अयोध्या नगरी। भारत में नगरीय सभ्यता की जननी के रूप में भी यदि इसे संज्ञा प्रदान की जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्राचीन वैदिक साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में स्थान–स्थान पर अयोध्या वैभव का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

अथर्ववेद में सर्वप्रथम अयोध्या अष्ट चक्र नव द्वार के रूप में वर्णित है–

अष्टाचक्रा नव द्वारां देवानांपुरयोध्या।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषा वृतः।।[1]

अर्थात् जिसमें 8 चक्र और 9 द्वार हैं, देव शक्तियों की यह पुरी अयोध्या है। उसमें जो तेजस्वी कोष है वही तेजस्विता से युक्त होकर दिव्य आनन्द से परिपूर्ण है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित अयोध्या नगरी कोशल जनपद की वैभवशालिनी राजधानी रही है। जो मानवों में प्रथम स्वयं महाराज मनु द्वारा निर्मित बतायी गयी है–

कोशलो नाम मुदितः स्फीतोजनपदो महान्।

निविष्टः सरयूतीरे प्रभूत धनधान्यवान्।।

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।

मनुनामानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।।[2]

अर्थात् कोशल नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है जो सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धन–धान्य से सम्पन्न सुखी और

---

1. अथर्ववेद संहिता, 10/2/31
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/5–6

समृद्धिशाली है। उसी जनपद में अयोध्या नाम की नगरी है जो समस्त लोकों में विख्यात् है। उस पुरी को स्वयं महाराज मनु ने बनवाया और बसाया था।

अयोध्या नगरी की पवित्रता तथा महत्त्व का पता इस बात से भी चलता है कि हमारे भारतवर्ष की मोक्षदायिनी सप्त पुरियों का वर्णन जो कि पुराणों में किया गया है उसमें अयोध्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है–

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।

पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।[1]

स्कन्द पुराण काशीखण्ड में प्रोक्त है–

काशी काञ्ची च मायाख्यात्वयोध्याद्वारवत्यपि।

मथुरा वन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा।।[2]

स्कन्द पुराण में अयोध्या को भगवान् विष्णु के चक्र पर स्थित बताया गया है–

अयोध्या परमं स्थानं अयोध्या परमं महत्।

अयोध्यायाः समा काञ्चित पुरी नैव दृश्यते।

अयोध्या परमं स्थानं विष्णु चक्रे प्रतिष्ठितम्।।[3]

अर्थात् अयोध्या सर्वोत्तम स्थान है। अयोध्या के समान कहीं कोई पुरी नहीं है। परम स्थान अयोध्या विष्णु चक्र पर स्थित है।

स्कन्द पुराण के वैभवखण्ड में अयोध्या नगरी की भव्यता का अतीव सुन्दर वर्णन किया गया है तथा बताया गया है कि यह नगरी अतीव पावन है

---

1. ब्रह्मपुराण, 4/40/91; अग्निपुराण, 109/24
2. स्कन्द पुराण, काशीखण्ड, तीर्थाध्याय 68
3. तदेव, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/71–22

तथा सत्कर्मी लोगों को ही प्राप्त होती है। क्योंकि स्वयं हरि यहाँ मूर्त होकर विराजमान् हैं तथा देवपुरी इन्द्र की अमरावती की भाँति इसकी शोभा है–

सरयूतीरमासाद्य दिव्या परम शोभना।

अमरावती निभा प्रायः श्रिता बहुतपो धनैः।।[1]

अर्थात् अमरावती पुरी जैसे परम शोभाशालिनी दिव्यपुरी अयोध्या सरयू तट पर विराजित है। इस पुरी में सर्वत्र तपोधन गण विराजित रहते हैं, इसी तथ्य का समर्थन वाल्मीकि रामायण में भी वर्णित है–

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्र विवर्धनः।

पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा।।[2]

अर्थात् जैसे स्वर्ग में देवराज इन्द्र ने अमरावती पुरी बसायी थी उसी प्रकार धर्म और न्याय के बल से अपने महान् राष्ट्र की वृद्धि करने वाले राजा दशरथ ने अयोध्यापुरी को पहले की अपेक्षा विशेष रूप से बसाया था।

स्कन्द पुराण में अयोध्या की नगरीय सभ्यता का सुन्दर वर्णन किया गया है तथा बताया गया है कि हाथी, अश्व, रथ तथा पैदल आदि अन्य समृद्धि द्वारा यह पुरी अतीव उन्नत मस्तक होकर स्थित है। इस पुरी की चहारदीवारी, मुख्य सड़क, तोरण आदि स्वर्ग सदृश हैं, यह सर्वत्र सड़क द्वारा विभक्त तथा चतुः अवयवयुक्त पुरी है।

इसके भूमि भाग पर अनेक प्रासाद विद्यमान हैं। इन प्रासाद श्रेणी की दीवार अत्यन्त गम्भीर है। यहाँ प्रफुल्ल कमलों से भरी निर्मल जल युक्त अनेक वापी नगर की शोभा वृद्धि कर रही है।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 1/31
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/9

यहाँ चारों ओर सर्वत्र देवग्रह विद्यमान है, चतुर्दिक वेद ध्वनि तथा वेणु, वीणा और मृदङ्ग आदि वाद्यों की ध्वनि मुखरित हो रही है। साथ ही देवग्रहों से भूषित होकर यह पुरी अतीव मनोहारी प्रतीत हो रही है। यह शाल, तमाल, नारियल, कटहल, आम, कैथा, अशोक आदि वृक्षों से व्याप्त है। यहाँ विविध आरामगाह तथा उद्यान इस पुरी की शोभा वृद्धि कर रहे हैं। यहाँ के पादप सभी ऋतुओं में पुष्प फलप्रद हैं। यहाँ मालती, जाती, बकुल, पाटली, नाग, चम्पा, कनेर, कर्णिका तथा केतकी पुष्प तथा प्रचुर फल युक्त नीम, जम्बीर, कदली, मातुलुङ्ग वृक्ष श्रेणी के सभी बाग शोभित हो रहे हैं। समृद्ध चन्दन गन्ध युक्त नागरिकगण तथा देवताओं के समान राजकुमार नगर में घूमते रहते हैं। यहाँ अप्सराओं की तरह सुरूपा रमणीगण भी नगरी में विचरती रहती हैं–

हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या संपदुच्चा च संस्थिता।

प्राकाराढ्यप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्चन प्रभैः।।

सानूपवेर्षैः सर्वत्र सुविभक्त चतुष्ट्या।

अनेक भूमिप्रासादा बहुभित्ति सुविक्रिया।।

पद्मोत्फुल्ल शुभोदाभिर्वापीभिरूप शोभिता।

देवतायतनैर्दिव्यै वेदघोषैश्च मण्डिता।।

वीणावेणुमृदङ्गादि शब्दैरुत्कृष्टता गता।

शालैस्तालैर्नालिकेरैः पनसामल कैस्तथा।।

तथैवामृकपित्थाद्यैरशोकैरूप शोभिता।

आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफल पादपैः।।

मालती जाति बकुल पाटली नाग चम्पकैः।

करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलंकृता।।

निम्बजम्बीर कदली मातुलिङ्ग महाफलैः।

लसच्चन्दन गन्धाढ्यैर्नागरैरूप शोभिता।।

देवतुल्य प्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता।

सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देव स्त्रीभिरवावृता।।[1]

श्रीमद्भागवत महापुराण में भी अयोध्या की भव्यता का अतीव सुन्दर वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि श्रीराम राज्य में अयोध्यापुरी के मार्ग सुगन्धित जल और हाथियों के मदकणों से सिञ्चित रहते थे। ऐसा विदित होता था मानो यह नगरी अपने स्वामी भगवान् श्रीराम को देखकर अत्यन्त मतवाली हो रही है। उसके महल, फाटक, सभा भवन, विहार और देवालय आदि में सुवर्ण के कलश रखे हुए थे और स्थान–स्थान पर पताकाएँ फहरा रही थीं। यह नगरी डंठल समेत सुपारी, केले के खम्भे और सुन्दर वस्त्रों से सजायी हुई थी। दर्पण, वस्त्र और पुष्प मालाओं से तथा माङ्गलिक चित्रकारियों और वंदनवारों से सारी नगरी जगमगा रही थी। भगवान् श्रीराम के महल पूर्ववर्ती राजाओं के द्वारा सेवित थे। उनमें इतने बड़े–बड़े सब प्रकार के खजाने थे जो कभी समाप्त नहीं होते थे। वे बड़ी–बड़ी बहुमूल्य बहुत सी सामग्रियों से सुसज्जित थे।

महलों के द्वार तथा देहलियाँ मूँगे की बनी हुई थीं। उनमें जो खम्भे थे वे वैदूर्य मणि के बने हुए थे। मरकत मणि के बड़े–बड़े सुन्दर फर्श थे तथा स्फटिक मणि की दीवारें चमकती थीं। रङ्ग–बिरङ्गी मालाओं, पताकाओं, मणियों की चमक शुद्ध चेतन के समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर–सुन्दर भोग सामग्री,

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 1/32–39

सुगन्धित धूप दीप तथा फूलों के गहने से वे महल सजाये जाते थे। आभूषणों को भी भूषित करने वाले देवताओं के समान स्त्री–पुरुष उसकी सेवा करते थे।

श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रोक्त है–

अथ प्रविष्टः स्वग्रहंजुष्टं स्वैः पूर्व राजभिः।

अनन्ताखिल कोशाढ्य मनहर्योरूप परिच्छदम्।।

विद्दुयोदुम्बरद्वारैवैदूर्य स्तम्भं पंक्तिभिः।

स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भातस्फटिकभित्तिभिः।।

चित्रस्त्राभिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणां शुकैः।

मुक्ता फलैश्चिदुल्लासैः कान्त कामोपपत्तिभिः।।

धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्प मण्डनैः।

स्त्री पुम्भिः सुरसं काशैर्जुष्टं भूषण–भूषणै।।[1]

श्री नरसिंह पुराण में महाराज इक्ष्वाकु के चरित्र वृत्तान्त के अन्तर्गत अयोध्या का सुन्दर वर्णन किया गया है– यहाँ भी अयोध्या की तुलना इन्द्र की राजधानी अमरावती से की गयी है। यहाँ वर्णन किया गया है कि सरयू नदी के किनारे अयोध्या नाम से प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्यपुरी है। वह अमरावती से भी बढ़कर सुन्दर और तीस योजन लम्बी–चौड़ी थी।

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों के समूह तथा कल्पवृक्ष के समान कान्तिमान वृक्ष उस पुरी की शोभा बढ़ाते थे। चहारदीवारी अट्टालिका, प्रतोली (गली या राजमार्ग) और सुवर्ण की सी कान्ति वाले फाटकों से वह बड़ी शोभा पा रही थी। अलग–अलग बने हुए उसके चौराहे बहुत सुन्दर लगते थे। वहाँ के महल कई मंजिल ऊँचे थे। नाना प्रकार के भाँति–भाँति के सामानों का

1. श्रीमद्भागवत महापुराण, 9/11/31–34

सुन्दर ढङ्ग से क्रय–विक्रय होता था। कमलों और उत्पलों से सुशोभित जल से भरी हुई बावलियाँ उस पुरी की शोभा बढ़ा रही थी। दिव्य देवालय तथा वेद मन्त्रों के घोष उस नगरी की श्रीवृद्धि करते थे। वीणा वेणु और मृदङ्ग आदि के उत्कृष्ठ शब्दों से वह पुरी गूँजती रहती थी।

शाल, ताल, नारियल, कटहल, आँवला, जामुन, आम और कपित्थ आदि के वृक्षों तथा अशोक पुष्पों से अयोध्यापुरी की बड़ी शोभा होती थी। वहाँ सब जगह नाना प्रकार के बगीचे और फलवाले वृक्ष पुरी की शोभा बढ़ाते थे। मल्लिका, मालती, चमेली, पाड़र, नाग केसर, चम्पा, कनेर, कनक, चम्पा और केतकी आदि पुष्पों से मानो उस पुरी का शृङ्गार किया गया था। केला, हरफा, रेवड़ी, जायफल और बिजौरा नींबू, चन्दन की सी गन्ध वाले तथा दूसरे प्रकार के सन्तरे आदि बड़े–बड़े फल उसकी शोभा बढ़ाते थे। गीत और वाद्य में कुशल पुरुष उस पुरी में प्रतिदिन आनन्दोत्सव मचाये रहते थे। वहाँ के स्त्री–पुरुष वैभव तथा सुन्दर नेत्रों से सम्पन्न थे। वह पुरी नाना देशों के मनुष्यों से भरी–पूरी ध्वजा पताकाओं से सुशोभित था, अनेकानेक कान्तिमान देवोपम् राजकुमारों से युक्त थी। वहाँ देवाङ्गनाओं के समान श्रेष्ठ एवं रूपवती वनिताएँ निवास करती थीं। बृहस्पति के समान तेजस्वी सत्कवि ब्राह्मण उस नगरी की शोभा बढ़ाते थे। कल्पवृक्ष से भी बढ़कर उदार नागरिकों और वैश्यों, उच्चैश्रवा के समान श्रेष्ठ घोड़ों और दिग्गजों के समान विशालकाय हाथियों से वह पुरी बड़ी शोभा पाती थी। इस प्रकार नाना वस्तुओं से भरी–पूरी अयोध्यापुरी, इन्द्रपुरी, अमरावती की समता करती थी। पूर्वकाल में नारद जी ने उस पुरी को देखकर भरी सभा में यह कहा था– स्वर्ग की सृष्टि करने वाले विधाता का वह समस्त प्रयत्न व्यर्थ हो गया, क्योंकि अयोध्यापुरी उससे भी बढ़कर मनोवाञ्छित भोगों से सम्पन्न हो गयी–

आसीद् भूमौ महाभाग पुरी दिव्या सुशोभना।
सरयूतीरमासाद्य अयोध्या नाम नामतः।।
अमरावत्यतिशया त्रिंशद्यो जन जालिनी।
हस्त्यश्वरथपत्त्योधैर्द्रुमैः कल्प द्रुम प्रभैः।।
प्राकाराट्टप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्चन प्रभैः।
विराजमाना सर्वत्र सुविभक्त चतुष्पथा।।[1]

X X X

अनेक भूमिप्रासादा बहुभाण्डसुविक्रया।
पद्मोत्पलशुभैस्तोयैर्वापीभिरूप शोभिता।।
देवतायतनैर्दित्वैर्वेद घोषैश्च शोभिता।
वीणा वेणु मृदङ्गैश्च शब्दैरुत्कृष्टकैर्युता।।
शालैस्तालैर्नालिकैरेः पनसामल जम्बुकैः।
तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशौके रूप शोभिता।।
आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वत्र फलपादपैः।
मल्लिका मालती जाति पाटला नाग चम्पकैः।।
करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्कृता।
कदली लवली जाति मातुलुङ्ग महाफलैः।
क्वचिच्चन्दन गन्धाद्यैर्नारङ्गैश्च सुशोभिता।।
नित्योत्सव प्रमुदिता गीत वाद्य विचक्षणैः।
नर नारीभिराढयाभी रूपद्रविणप्रेक्षणैः।।
नानाजनपदाकीर्णा पताका ध्वज शोभिता।
देवतुल्यप्रभा युक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता।।
सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देव स्त्रीभिरिवावृता।
विप्रैः सत्कविभिर्युक्ता वृहस्पति समप्रभैः।।

---

1. नरसिंह पुराण, 24/3–5

वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्प वृक्ष वरैर्युता।
अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव।।
इति नानाविधैर्भावैरयोध्येन्द्रपुरी समा।
तां दृष्ट्वा नारदः श्लोकं सभा मध्ये पुरोक्तवान्।।
स्वर्ग वै सृजमानस्य व्यर्थं स्यात् पद्मजन्मनः।
जातायोध्याधिका स्वर्गात् कामभोग समन्विता।।[1]

इसी प्रकार से विभिन्न पुराणों में अयोध्या वैभव का वर्णन किया गया है।

आदि पुराण, जैन धर्म का का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें लिखा है कि विश्व की कर्मभूमि में अयोध्या प्रथम नगर है। इसके सूत्रधार इन्द्रदेव हैं और इसे देवताओं ने बनाया था। पहले मनुष्य की जो भी आवश्यकताएँ होती थीं उन्हें कल्पवृक्ष पूरी करता था परन्तु जब कल्पवृक्ष लुप्त हो गया तो देवपुर के समतुल्य अयोध्यापुरी पृथ्वी पर बसायी गयी। आदिनाथ को लेकर 24 तीर्थङ्कर हुए हैं। जैन मतावलम्बियों का विश्वास है कि सब तीर्थङ्कर कालक्रम से अयोध्या में जन्म लेते हैं और यहीं राज्य करते हैं तथा इन तीर्थङ्करों को इक्ष्वाकुवंशी भी बताया गया है। आदिपुराण के द्वादश तथा चतुर्दश पर्व में अयोध्या का सुन्दर वर्णन है।

आदिपुराण में वर्णित है कि उन अलङ्कृत पवित्र स्थानों में जब कल्पवृक्षों का अभाव हो गया तब वहाँ उनके पुण्यों के द्वारा बुलाये गये इन्द्र ने एक नगरी की रचना की। इन्द्र की आज्ञा से शीघ्र ही अनेक उत्साही देवों ने बड़े आनन्द के साथ स्वर्गपुरी के समान उस नगरी की रचना की। उन देवों ने वह नगरी विशेष सुन्दर बनायी थी जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानों इस मध्यम लोक में स्वर्गलोक का प्रतिबिम्ब रखने की इच्छा से ही उन्होंने उसे

---

1. नरसिंह पुराण, 24/6–16

अत्यन्त सुन्दर बनाया हो। हमारा स्वर्ग बहुत ही छोटा है क्योंकि यह त्रिदशावास है अर्थात् केवल त्रिदश 30 व्यक्तियों के रहने योग्य, स्थान पक्ष से देवों के रहने योग्य स्थान ऐसा मानकर ही मानों उन्होंने सैकड़ों हजारों मनुष्यों के रहने योग्य उस नगरी की रचना की। उस समय जो मनुष्य जहाँ–तहाँ बिखरे हुए रहते थे, देवों ने उन सबको लाकर उस नगरी में बसाया और सबके सुभीते के लिए अनेक प्रकार के उपयोगी स्थानों की रचना की–

ताभ्यामलङ्कृते पुण्ये देशे कल्पाघ्रिपात्यये।

तत्पुण्यैर्मुहुराहूतः पुरुदूतः पुरीं व्यघात्।।

सुराः ससंभ्रमा सद्यः पाक शासनशासनात्।

तां पुरी परमानन्दाद्व्यधुः सुरपुरी निभाम्।।

स्वर्गस्यैव प्रतिच्छन्दं भूलोकेऽस्मिन्निधित्सुभिः।

विशेष रमणीयैव निर्ममे सामरैः पुरी।।

स्वस्वर्गास्त्रिदशावासः स्वल्प इत्यवमत्यतम्।

परश्शतजनावास भूमिकां तानुते व्यधुः।।

इतस्ततश्च विक्षिप्तानानीयानीय मानवान्।

पुरीं निवेश यामा सुर्विन्यासैर्विविधैः सुरा।।[1]

आदिपुराण में ही प्रोक्त है–

याचकाद् गगनोल्लङ्घिशिखरैः पृथुगोपुरैः।

स्वर्गमाह्वयमानेव पवनोच्छ्रित केतनैः।।

यस्यां मणिमयी भूमिस्तारात्मा प्रतिबिम्बितैः।

1. आदिपुराण, 12/69–73

दधे कुमुद्वती लक्ष्मीमक्षूणां क्षणदा मुखे।।

या पताका करैर्दूरमुत्क्षिप्तैः पवना हतैः।

आजुहूषुरिव स्वर्गवासिनोऽभूत कुतूहलात्।।

यस्यां मणिमयैर्हर्म्यैः कृत दम्पति संश्रयैः।

आक्षिप्तेव सुराधीश विमानश्रीरसंभ्रमम्।।

यत्र सौधाग्र संलग्नैरिन्दुकान्त शिलातलैः।

चन्द्र पादाभिसंस्पर्शात् क्षरद्भिर्जल दायितम्।।

या धत्ते स्म महासौधशिखरैर्मणि भासुरैः।

सुरचाप श्रियं दिक्षु विततां रत्नभामयीम्।।

सरोजराज माणिक्यकिरणैः क्वचिदम्बरम्।

यत्र सन्ध्याम्बुदच्छन्नमिवालक्ष्यत् पाटलम्।।

इन्द्र नीलोपलैः सौधकूटलग्नैर्विलङ्गितम।

स्फुरद्भि ज्योतिषां चक्रं यत्र नालक्ष्यताम्बरे।।

गिरिकूटतटानीव सौधकूटानिशारदाः।

धनायत्राश्रयन्ति स्म सून्नतः कस्य नाश्रयः।।

यत्खतिका महाम्भोधेर्लीलां यादोभिरुद्धतैः।

धत्ते स्म क्षुभिता लोलकल्लोलावर्त भीषणा।।

प्राकार वलयो यस्याश्चामी करमयोऽघुतत।

मानुषोत्तर शैलस्यश्रियं रत्नैरिवाहसन्।।

जिन प्रसव भूमित्वाद् या शुद्धाकर भूमिवत्।

सूते स्म पुरुषानर्घ्य महारत्नानि कोटिशः।।

यस्याश्च बहिरुद्यानैरनेकानोकहा कुलैः।

फलच्छायाप्रदैः कल्पतरुच्छायास्मलङ्घ्यते।।

यस्या पर्यन्तमावेष्ट्य स्थिता सा सरयूर्नदी।

लसत्पुलिन संसुप्त सारसाहंसनादिनी।।

यां प्राहुररिर्दुर्लङ्घयामयोध्यां योध सङ्कुलाम्।

विनीताखण्डमध्यस्था या तन्नाभिरिवा बभौ।।[1]

अर्थात् जिनके शिखर आकाश को उल्लंघन करने वाले हैं और जिन पर लगी हुई पताकाएँ वायु के वेग से फहरा रही हैं ऐसे गोपुर दरवाजों से वह अयोध्या नगरी ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो स्वर्गपुरी को ही बुला रही हो। उस अयोध्यापुरी की मणिमयी भूमि रात्रि के प्रारम्भ के समय में तारों का प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसी जान पड़ती थी मानों कुमुदों सहित सरसी की अखण्ड शोभा ही धारण कर रही है। दूर तक आकाश में वायु के द्वारा हिलती हुई पताकाओं से वह अयोध्या ऐसी प्रतीत होती है मानो कुतूहलवश ऊँचे उठाये हुए हाथों से स्वर्गवासी देवों को बुलाना चाहती है। जिनमें अनेक सुन्दर स्त्री–पुरुष निवास करते थे ऐसे वहाँ के मणिमय महलों को देखकर निःसन्देह कहना पड़ता था कि मानों उन महलों ने इन्द्र के विमानों की शोभा छीन ली थी अथवा तिरस्कृत कर दी थी। वहाँ पर चूना–गची के बने हुए बड़े–बड़े महलों के अग्रभाग पर सैकड़ों चन्द्रकान्त मणि लगे हुए थे। रात में चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श पाकर उनसे पानी झर रहा था जिससे वे मणि मेघ के समान प्रतीत हो रहे थे। उस नगरी के बड़े–बड़े राजमहलों के शिखर अनेक मणियों से देदीप्यमान रहते थे। उनसे सब दिशाओं में रत्नों का प्रकाश फैलता था जिससे

1. आदिपुराण, 14/56–70

ऐसा प्रतीत होता था मानों वह नगरी इन्द्रधनुष ही धारण कर रही हो। उस नगरी का आकाश कहीं–कहीं पर पद्म राग मणियों की किरणों से कुछ–कुछ लाल हो रहा था जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानों सन्ध्याकाल के बादलों से आच्छादित ही हो रहा हो।

वहाँ के राजमहलों के शिखरों में लगे हुए देदीप्यमान इन्द्रनील मणियों से छिपा हुआ ज्योतिश्चक्र आकाश में दिखायी ही नहीं पड़ता था। उस नगरी के राजमहलों के शिखर पर्वतों के शिखरों के समान बहुत ही ऊँचे थे और उन पर शरद् ऋतु के मेघ आश्रय लेते थे सो ठीक ही है क्योंकि जो अतिशय उन्नत होता है वह किसका आश्रय नहीं होता है। उस नगरी का सुवर्ण का बना हुआ परकोटा ऐसा अच्छा शोभायमान हो रहा था मानों अपने में लगे हुए रत्नों की किरणों से सुमेरू पर्वत की शोभा की हँसी ही कर रहा हो।

अयोध्यापुरी की परिखा उद्धत होते हुए जलचर जीवों से सदा क्षोभ को प्राप्त होती रहती थी और चञ्चल लहरों तथा आवर्तों से भयङ्कर रहती थी इसलिए किस बड़े भारी समुद्र की लीला धारण करती थी। वह नगरी शुद्ध खानि के भूमि के समान थी और उसने करोड़ों पुरुष रूपी अमूल्य महाराज उत्पन्न भी किए थे।

अनेक प्रकार के फल तथा छाया देने वाले अनेक प्रकार के वृक्षों से भरे हुए वहाँ के बाहरी उपवनों ने कल्पवृक्षों की शोभा तिरस्कृत कर दी थी। उसके समीपवर्ती प्रदेश को घेरकर सरयू नदी स्थित थी जिसके सुन्दर किनारों पर सारस पक्षी सो रहे थे और हंस मनोहर शब्द कर रहे थे। वह नगरी अन्य शत्रुओं के द्वारा दुर्लघ्य थी और स्वयं अनेक योद्धाओं से भरी थी इसीलिए लोग उसे अयोध्या करते थे। उसका दूसरा नाम विनिता भी था और वह आर्यखण्ड के मध्य में स्थित थी इसीलिए उसकी नाभि के समान शोभायमान हो रही थी।

इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण में प्रोक्त है–

संभाब्यमानश्च मुहुरपदभिरनेकशः।

नानाजनपदैस्तूर्णमयोध्या समुपागमत्।।

तदा गमनमाज्ञाय नागरः सकलो जनः।

नगरीं तामलंचकृे महोत्सव समुत्सुकः।।

ततः सा नगरी सर्वाकृतकौतुक मङ्गला।

सिक्त संमृष्टभूभागा पूर्णकुम्भशतावृता।।

समुच्छ्रित ध्वज शतापताकाभिरलङ्कृता।

सर्वत्रागरुधूपाढ्या विचित्र कुसुमोज्ज्वला।।

सद्रत्न तोरणोत्तुङ्गगोपुराट्टल भूषिता।

प्रसूनलाजवर्षैश्च स्वलङ्कृत महापथा।।[1]

वाल्मीकि रामायण में वर्णन आता है कि जब भगवान् श्री रामचन्द्र का राज्याभिषेक होने वाला था उस समय अयोध्या अत्यन्त वैभवशाली प्रतीत हो रही थी–

सिताभ्रशिखराभेषु देवतायतनेषु च।

चतुष्पथेषु रथ्यासु चैत्येष्वट्टालकेषु च।।

नानापण्य समृद्धेषु वणिजामापणेषु च।

कुटुम्बिना समृद्वेषु श्रीमत्सु भवनेषु च।।

सभासु चैव सर्वासु वृक्षष्वालक्षितेषु च।

---

1. ब्रह्माण्ड पुराण, मध्यम भाग, उपोद्घात पाद, 49/10–14

ध्वजाः समुच्छ्रिताः साधुपताकाश्चाभवंस्तथा।।[1]

अर्थात् जिनके शिखरों पर श्वेत बादल विश्राम करते हैं उन पर्वतों के समान गगनचुम्बी देव मन्दिरों, चौराहों, गलियों, देववृक्षों, समस्त सभाओं, अट्टालिकाओं, नाना प्रकार की बेचने योग्य वस्तुओं से भरी हुई व्यापारियो की बड़ी–बड़ी दुकानों तथा कुटुम्बी गृहस्थों के सुन्दर समृद्धिशाली भवनों में और दूर से दिखायी देने वाले वृक्षों पर भी ऊँची ध्वजाएँ लगायी गयी, और उनमें पताकाएँ फहरायी गयीं।

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में अन्यत्र भी वर्णित है–

ते तु दिग्भ्यः पुरीं प्राप्ता द्रष्टुं रामाभिषेचनम्।

रामस्य पूरयामासुः पुरीं जानपदा जनाः।।

जनौघैस्तैर्विसर्पद्भिः शुश्रुवे तत्रः निः स्वनः।

पर्वसूदीर्णवेगस्य सागरस्येव निःस्वनः।।

ततस्तदिन्द्रक्षय संनिभं पुरं दिद्रक्षुभिर्जानपदैरुपाहितैः।

समन्ततः सस्वनमाकुलं बभौ समुद्रयादोभिरिवार्णवोदकम्।।[2]

अर्थात् वे सब के सब श्रीराम का राज्याभिषेक देखने के लिए अनेक दिशाओं से अयोध्यापुरी में आयेथे। उन जनपदवासी मनुष्यों ने श्री रामपुरी को अपनी उपस्थिति से भर दिया था। वहाँ मनुष्यों की भीड़भाड़ बढ़ने से जनरव सुनायी देता था, वह पर्वों के दिन बढ़े हुए वेग वाले महासागर की गर्जना के समान प्रतीत होता था। उस समय श्रीराम के अभिषेक का उत्सव देखने के लिए पधारे हुए जनपदवासी मनुष्यों द्वारा सब ओर से भरा हुआ वह इन्द्रपुरी के

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 6/11–13
2. तदेव, 6/26–28

समान नगर अत्यन्त कोलाहल पूर्ण होने के कारण मकर, नक्र, तिमिङ्गल आदि विशाल जल–जन्तुओं से परिपूर्ण महासागर के समान प्रतीत होता था।

अन्यत्र वर्णन है कि जब श्री रामचन्द्र जी राजपथ की शोभा देखते हुए पिता के भवन की ओर प्रस्थान करते हैं तो नगर की शोभा अत्यन्त प्रशंसनीय है जो द्रष्टव्य है–

स रामोरथ मास्थाय सम्पृह्रष्ट सुह्रज्जनः।

पताका ध्वजसम्पन्नं महार्हागुरुधूपितम्।।

अपश्यन्नगरं श्रीमान् नाना जन समन्वितम्।

स गृहैरभ्रसङ्काशैः पाण्डुरैरूपशोभितम्।

चन्दनानां च मुख्यानाम गुरूणां च सञ्चयैः।।

उत्तमानां च गन्धानां क्षौमकौशम्बरस्य च।

अविद्धाभिश्च मुक्ताभिरुत्तमैः स्फाटिकैरपि।।

शोभमान सम्बाधं तं राजपथमुत्तमम्।

संवृतं विविधैः पुण्पैर्भक्ष्यैरुच्चावचैरपि।।

ददर्श तं राजपथं दिवि देवपतिर्यथा।

दध्यक्षत हविर्लाजैधूपैरगुरुचन्दनैः।।[1]

अर्थात् इस प्रकार श्रीमान् रामचन्द्र जी ने अपने सुह्रदों को आनन्द प्रदान करते हुए रथ पर बैठकर राजमार्ग के बीच से चले जा रहे थे, उन्होंने देखा समस्त नगर ध्वजा और पताकाओं से सुशोभित हो रहा है चारों ओर बहुमूल्य अगरु नामक धूप की सुगन्ध छा रही है और सब ओर असंख्य मनुष्यों की भीड़

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 17/1–6

दिखायी देती है। वह राजमार्ग श्वेत बादलों के समान उज्ज्वल भव्य भवनों से सुशोभित तथा अगरू की सुगन्ध से व्याप्त हो रहा था। अच्छी श्रेणी के चन्दनों, अगरू नामक धूपों, उत्तम गन्ध द्रव्यों, अलसी या सन आदि के रेशों से बने हुए कपड़ों तथा रेशमी वस्त्रों के ढेर, अनबिंधे मोती और उत्तमोत्तम स्फटिक रत्न उस विस्तृत एवं उत्तम राजमार्ग की शोभा बढ़ा रहे थे। वह नाना प्रकार के पुष्पों तथा भाँति–भाँति के भक्ष्य पदार्थों से भरा हुआ था। उसके चौराहों की दही, अक्षत, हविष्य, लावा, धूप, अगर, चन्दन, नाना प्रकार के पुष्पहार और गन्ध द्रव्यों सेसदा पूजा की जाती थी।

कोशल देश अत्यन्त विशाल और रमणीय था जिस समय भगवान् श्री रामचन्द्र जी वनवास की ओर प्रस्थान कर रहे थे तब उन्होंने अयोध्या नगरी से भी वनवास की अनुमति माँगी थी।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

विशालान् कोशलान् रम्यान् यात्त्वा लक्ष्मणपूर्वजः।

अयोध्यामुन्मुखो धीमान् प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।।

आप्रच्छेत्त्वा पुरिश्रेष्ठे काकुत्स्थ परिपालिते।

दैवतानि च यानि त्वां पालयन्त्या वसन्ति च।।

निवृत्त वनवासस्त्वाभनृणो जगतीपतेः।

पुनर्दृक्ष्यामि मात्रा च पित्रा च सह संगतः।।[1]

अर्थात् इस प्रकार विशाल और रमणीय कोशल देश की सीमा को पार करके लक्ष्मण के बड़े भाई बुद्धिमान् श्री रामचन्द्र जी ने अयोध्या की ओर अपना मुख किया और हाथ जोड़कर कहा ककुत्स्थवंशी राजाओं से परिपालित पुरी

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 50/1–3

शिरोमणि अयोध्ये! मैं तुमसे तथा जो–जो देवता तुम्हारी रक्षा करते हैं और तुम्हारे भीतर निवास करते हैं उनसे भी वन जाने की आज्ञा चाहता हूँ। वनवास की अवधि पूरी करके महाराज के ऋण से उऋण हो मैं पुनः लौटकर तुम्हारा दर्शन करूँगा।

अयोध्याकाण्ड में ही महर्षि जाबालि भगवान् श्री रामचन्द्र जी से अयोध्या वापस चलने की अनुनय–विनय करते हुए कहते हैं कि आप समृद्धिशालिनी अयोध्या में राजा के पद पर अपना अभिषेक कराइये। वह नगरी प्रोषितभर्तृका नारी की भाँति एक वेणी धारण करके आपकी प्रतीक्षा करती है–

समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय।

एकवेणीधरा हि त्वा नगरी सम्प्रतीक्षते।।[1]

इसी प्रकार जब श्री रामचन्द्र जीके बिना उनके अनुज भरत वापस अयोध्या लौटते हैं तो अयोध्या के वैभव में किस–किस प्रकार से कमी आई इसका भी वर्णन किया गया है कि जो अयोध्या पहले धूमरहित सुनहरी कान्ति वाली प्रज्वलित अग्निशिखा के समान प्रकाशित होती थी, वही श्रीराम वनवास के बाद हवनीय दुग्ध से सींची गयी अग्नि की ज्वाला के समान बुझकर विलीन सी हो गयी है। उस समय अयोध्या महासमर में सङ्कटग्रस्त हुई उस सेना के समान प्रतीत होतीथी। जिसके कवच काटकर गिर गये हों, हाथी, घोड़े, रथ और ध्वजा छिन्न–भिन्न हो गये हों और मुख्य–मुख्य वीर मार डाले गये हों–

विधुमामिव हेमाभां शिखामग्नेः समुत्थिताम्।

हविरभ्युक्षितां पश्चाच्छिखां विप्रलयं गताम्।।

विध्वस्तकवचां रुग्णगजवाजि रथध्वजाम्।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 108/8

हतप्रवीरामापन्नां चमूमिव महाहवे।।[1]

श्री भरत जी अन्यत्र अयोध्या के उस वैभव के विषय में स्मरण कर रहे हैं जो उन्हें वर्तमानमें नहीं दिखायी पड़ रहा है–

प्रभाकाराद्यैः सुस्निग्धैः प्रष्वलद्भिरिवोत्तमैः।

वियुक्तां मणि भिर्जात्यैर्नवा मुक्तावलीमिव।।

सहसा चरितांस्थानान्मही पुण्यक्षयाद् गताम्।

संह्रतिद्युति विस्तारां तारामिव दिवश्च्युताम्।।

पुष्पनद्धां वसन्तांते मत्तभ्रमरशालिनीम्।

द्रुत दावाग्नि विप्लुष्टां क्लान्ता वनलतामिव।।[2]

अर्थात् श्रीराम आदि से रहित हुई अयोध्या मोतियों की उस नूतन माला के समान श्रीहीन हो गयी थी जिसकी अत्यन्त चिकनी, चमकीली, उत्तम तथा अच्छी जाति की पद्मराग मणियाँ उससे निकालकर अलग कर दी गयी हों। जो पुष्प क्षय होने के कारण सहसा अपने स्थान से भ्रष्ट हो पृथ्वी पर आ पहुँची हों, अतएव जिसकी प्रभा क्षीण हो गयी हो, आकाश से गिरी हुई उस तारिका की भाँति अयोध्या शोभाहीन हो गयी थी। जो ग्रीष्म ऋतु में पहले फूलों से लदी हुई होने के कारण मतवाले भ्रमरों से सुशोभित होती रहती हो फिर सहसा दावानल के लपेट में आकर मुरझा गयी हो, वन की उस लता के समान पहले की उल्लासपूर्ण अयोध्या अब उदास हो गयी है।

इस प्रकार भरत और सुमन्त्र जी के आपसी वार्तालाप का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में लिखा है कि भरत जी सुमन्त्र जी से पूछते हैं कि अब अयोध्या में पहले की भाँति सब ओर फैला हुआ गाने–बजाने का

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 114/5–6
2. तदेव, 114/10–12

गम्भीर नाद नहीं सुनायी पड़ता, यह कितने कष्ट की बात है। अब चारों ओर वारूणी की मादक गन्ध व्याप्त हुई फूलों की सुगन्ध तथा चन्दन और अगरू की पवित्र गन्ध नहीं फैल रही है। अच्छी सवारियों की आवाज, घोड़ों के धींसने का सुस्निग्ध शब्द, मतवाले हाथियों का चिंघाड़ना तथा रथों की घर्घराहट का महान् शब्द ये सब नहीं सुनायी दे रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी के निर्वासित होने के कारण ही इस पुरी में इस समय इन सब प्रकार के शब्दों का श्रवण नहीं हो रहा है। श्रीराम के चले जाने से यहाँ के तरूण बहुत ही संतप्त हैं। वे चन्दन और अगरू की सुगन्ध का सेवन नहीं करते तथा बहुमूल्य वनमालाएँ भी धारण नहीं करते। अब इस पुरी के लोग विचित्र फूलों के हार पहनकर बाहर घूमने के लिए नहीं निकलते हैं।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्च्छितो न निशाम्यते।

यथा पुरमयोध्यायां गीत वादित्र निःस्वनः।।

वारूणी मदगन्धश्च माल्यगन्धश्च मूर्च्छितः।

चन्दनागुरूगन्धश्च न प्रवाति समन्ततः।।

यानप्रवरघोषश्च रिनग्धध्यनिःस्वनः।

प्रमत्त गजनादश्च महांश्च रथ निःस्वनः।।

नेदानी ंश्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासते।

चन्दना गुरुगन्धाश्च महार्हाश्च वनस्त्रजः।।

गते रामे हि तरूणाः संतप्ता नोपभुञ्जते।

बहिर्यात्रा न गच्छन्ति चित्रमाल्यधरा नराः।।[1]

भगवान् श्रीराम के वन गमन से पूर्व अयोध्या इस प्रकार की वैभवशालिनी थी परन्तु सम्प्रति भरत जी का वह समस्त वैभव गतप्राय सा प्रतीत हो रहा है। वे कहते हैं– श्रीराम के शोक से पीड़ित हुए इस नगर में अब नाना प्रकार के उत्सव नहीं हो रहे हैं। निश्चय ही इस पुरी की शोभा मेरे भाई के साथ ही चली गयी है। जैसे वेगयुक्त वर्षा के कारण शुक्लपक्ष की चाँदनी रात भी शोभा नहीं पाती है, उसी प्रकार नेत्रों से आँसू बहाती हुई यह अयोध्या भी शोभित नहीं हो रही है।

अब कब मेरे भाई महोत्सव की भाँति अयोध्या में पधारेंगे और ग्रीष्म ऋतु में प्रकट हुए मेघ की भाँति सबके हृदय में हर्ष का सञ्चार करेंगे। अब अयोध्या की बड़ी–बड़ी सड़कें हर्ष से उछलकर चलते हुए मनोहर वेषधारी तरूणों के शुभागमन से शोभा नहीं पा रही हैं–

नोत्सवाः सम्प्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे।

सा हि नूनं मम भ्राता पुरस्यास्यद्युतिर्गता।।

नहि राजत्ययोध्येयं सासारे वार्जुनीक्षपा।

कदा नु खलु मे भ्रातामहोत्सव इवागतः।।

जनयिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीम इवाम्बुदः।

तरुणैश्चारुवेषैश्च नरैरून्नतगामिभिः।।

सम्पतद्भिरयोध्यायां नाभि भान्ति महापथाः।

इति ब्रुवन सारथिना दुःखितो भरतस्तदा।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 114/19–23
2. तदेव, 114/24–27

इस प्रकार अयोध्या के सम्पूर्ण पौराणिक एवं ऐतिहासिक वैभव को देखने से पता चलता है कि समस्त पौराणिक वाङ्मय अयोध्या के गुणों का वर्णन कर रहा है कि– सरयू नदी के किनारे कौशल देश का विकास हुआ। इसकी सुन्दर राजधानी अयोध्या जिसे साकेत के नाम से भी जाना जाता है का निर्माण विवस्वान् मनु ने करवाया था परन्तु सूर्यवंशी राजवंश के संस्थापक शासक इक्ष्वाकु ने इसे विकसित और समृद्ध बनाया था। सूर्यवंश के राजा परोपकारी शासक थे और कोशल देश की जनता प्रसन्न, संतुष्ट और सदाचारी थी। कोशल राज्य का संरक्षण एक शक्तिशाली सेना द्वारा किया जाता था, जिसके आस–पास भी किसी शत्रु का आना असम्भव था। सूर्यवंशी राजा अत्यन्त शक्तिशाली थे। उन्होंने इस पृथ्वी पर हजारों वर्षों तक शासन किया।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में सम्राट् इक्ष्वाकु के 128 उत्तराधिकारियों के नाम अभिलिखित है जिनमें से सत्यवादी राजा हरश्चिन्द्र तैंतीसवे, राजा सगर चालीसवें तथा राजा भगीरथ चौवालीसवें प्रख्यात् शासक थे। राजा दशरथ इस राजवंश के तिरसठवें सुप्रसिद्ध सम्राट् थे जो कि एक महान शक्तिशाली राजा थे। वे परोपकारी शासक थे, उनके राज्य में कार्य के आधार पर बँटे सभी चारों वर्णों के लोग सुखी एवं समृद्ध थे। ऐसे बुद्धिमान् एवं पराक्रमी राजा दशरथ के पुत्र रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्म हुआ था। सूर्यवंशी राजकुल के राजा दशरथ ने अपनी राजधानी अयोध्या से कोशल देश पर शासन किया था। पराक्रम और बुद्धि के असाधारण गुणों से सम्पन्न राजा दशरथ ने अयोध्या को उसी प्रकार धनवान् एवं समृद्ध बनाया जिस प्रकार देवराज इन्द्र ने अमरावती का विकास किया था। अयोध्या में अत्यन्त सुन्दर घर और ऊँची अटारियों, ध्वजों और स्तम्भों वाले सुसज्जित प्रासाद थे। वहाँ के लोग सुखी तथा सम्पन्न थे। राज्य में चावल, गेहूँ, मटर, मूँग, जौ, बाजरा, मसूर और अंगूर सहित कई समृद्ध फसलें होती थीं। लोगों के पास घरेलू जानवर, हथियार, बर्तन और बड़ी

मात्रा में सङ्गीत यन्त्र होते थे। विभिन्न राज्यों के राजकुमार सूर्यवंशी राजाओं का आभार व्यक्त करने के लिए प्रतिवर्ष अयोध्या आते थे और अयोध्या की गली–बाजारों में अत्यन्त चहल–पहल रहती थी।

पौराणिक वाङ्मय के साथ–साथ अर्वाचीन साहित्य तथा संस्कृत साहित्य में यत्र–तत्र–सर्वत्र अयोध्या का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् महाकाव्य में अयोध्यापुरी का सुन्दर वर्णन किया है।

रघुवंशम् महाकाव्य में प्रोक्त है–

निववृते स महार्णव रोधसः सचिवकारित बालसुताञ्जलीन्।

समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलका नवमां पुरीम्।।[1]

वे राजा दशरथ कृपा करके इस समुद्र के किनारे से अपनी उस अयोध्यापुरी को लौट आये जो कुबेर की राजधानी अलकापुरी से किसी प्रकार कम न थी। क्योंकि मृत पतिका, संस्कार शून्य केशों वाली, शत्रु राजाओं की रानियों ने अपने मन्त्रियों के साथ हाथ जोड़े हुए अपने बच्चों को भेजकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करवायी थी।

रघुवंशम् के षोडसवें सर्ग में अयोध्या देवी तथा कुश संवाद के द्वारा कालिदास ने अयोध्या वैभव का सुन्दर वर्णन किया है। महाराज कुश द्वारा अयोध्या का पुनरूद्धार किया गया था।

सा मन्दुरा संश्रायिभिस्तुरङ्गै शालाविधिस्तम्भ गतैश्च नागैः।

पूरा बभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धा भरणैव नारी।।[2]

---

1. रघुवंशम्, 9/14
2. तदेव, 16/41

अर्थात् अयोध्या के बाजारों में सुन्दर–सुन्दर वस्तुएँ बिकने के लिए सजी हुई थीं, घुड़शालाओं में घोड़े बधे हुए थे, हथिसारों के खम्भों से हाथी बँधे हुए थे। इस प्रकार वह नगरी ऐसे सुन्दर प्रतीत होने लगी जैसे समस्त शरीर में आभूषण पहने हुए कोई स्त्री।

सपुरंपुरुहूतश्रीः कल्पद्रुमनिभध्वजाम्।

क्रम माणश्चकार द्यां नागेनैरावतौ जसा।।[1]

अर्थात् इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली राजा अतिथि जब ऐरावत के समान बलवान् हाथी पर सवार होकर अयोध्या में घूमने निकले तब कल्पवृक्ष के समान ध्वजाओं वाली वह अयोध्या नगरी स्वर्ग के समान लगने लगी।

संस्कृत साहित्य से इतर इतिहास ग्रन्थ भी अयोध्या के महत्त्व से अछूते नहीं रहे हैं।

श्री अयोध्या का इतिहास एवं अयोध्या गाइड पृष्ठ 27 पर आचार्य गुदन शर्मा ने लिखा है कि– जनश्रुति है विक्रमादित्य ने तीर्थराज प्रयाग के निर्देश द्वारा 160 दिव्य स्थलों की पहचान की तथा मन्दिर निर्माण कराया और अयोध्या माहात्म्य नामक पुस्तक की संस्कृत रचना की। इसके पहले युधिष्ठिर सम्वत् प्रचलित था। महाराजा विक्रमादित्य ने अयोध्या का जीर्णोद्धार कार्य युधिष्ठिर सम्वत् 2426 में प्रारम्भ किया तथा 2432 में समाप्त किया।

इस प्रकार अयोध्या में हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मों के अनेकानेक महापुरुषों का जन्म और शासन आदि का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ मुस्लिम पदार्पण विक्रमी सम्वत् 11वीं शताब्दी में हुआ।

रामबहादुर सीताराम द्वारा रचित 'अयोध्या का इतिहास' के पृष्ठ 146 में वर्णित है कि 1034 ई0 में अलप्तगीन गजनी का राजा बना उसके बाद

---

1. रघुवंशम्, 17/32

सुबुक्तगीन ने गजनी पर कब्जा कर लिया। सुबुक्तगीन ने कन्नौज वंश के राजा राज्यपाल को हरा दिया तथा कर लेने लगा। सुबुक्तगीन के बाद उसका पुत्र महमूद गजनी का शासक हुआ। उसने भारत पर कई बार आक्रमण किया तथा लूटपाट की। उसका भांजा सैय्यद सालार बाराबंकी जनपद के सतरिख में रूका था। सन् 1207 ई0 में अलाउद्दीन हुसैन ने गजनी पर अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन के बाद उसका पुत्र भी साल भर बाद मारा गया तथा मुहम्मद बिन साम शासक बना। मुहम्मद बिन साम से पृथ्वीराज का युद्ध हुआ। कन्नौज के गहरवारों की हार से अयोध्या मुसलमानी शासन में आ गयी।

कन्नौज के परास्त होने से शहाबुद्दीन गोरी ने 1194 में अवध पर आक्रमण किया। बख्तियार खिलजी ने अयोध्या पर शासन किया। खिलजी के पीछे तुगलक वंश दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसकी कृपा दृष्टि अयोध्या पर रही। फिरोज तुगलक पहली बार 1324 ई0 में तथा दूसरी बार 1348 ई0 में अयोध्या आया।

अयोध्या के इतिहास पृष्ठ 150 में आया है कि– बादशाह बाबर सन् 1528 ई0 में दलबल सहित अयोध्या की ओर बढ़ा और घाघरा के किनारे अयोध्या से 3 कोस पूर्व डेरा डाला।

वहाँ उसकी मुलाकात मुस्लिम फकीर फज़ल अब्बास कलन्दर से हुई। कलन्दर ने बाबर को राम मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनाने का आदेश किया, बाबर ने अपने सेनापति मीर बाँकी से अमल करने के लिए कहा तथा मीर बाँकी ने राम मन्दिर तोड़कर वहाँ पर मस्जिद की स्थापना करायी। मुगल साम्राज्य में अयोध्या की महिमा घट गयी थी।

बी0बी0सी0 न्यूज हिन्दी, 14 नवम्बर, 2018 के एक लेख में प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी द्वारा 'अयोध्या का असल इतिहास' में वर्णन आता है कि अयोध्या का

महत्त्व इस बात में भी निहित है कि अयोध्या की गणना सप्त पुरियों के अन्तर्गत आती है जबकि तीर्थराज प्रयाग की गणना इसमें नहीं है। अयोध्या के माहात्म्य के विषय में यह और स्पष्ट करना समीचीन होगा कि जैन परम्परा के अनुसार चौबीस तीर्थङ्करों में से 22 तीर्थङ्कर इक्ष्वाकुवंश के थे तथा प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ का जन्म स्थान भी अयोध्या ही है। बौद्ध मान्यताओं के अनुसार बुद्धदेव ने अयोध्या अथवा साकेत में 16 वर्षों तक निवास किया।

ये हिन्दू धर्म तथा उसके प्रतिरोधी सम्प्रदायों जैन और बौद्धों का भी पवित्र धार्मिक स्थान था। मध्यकालीन भारत के प्रसिद्ध सन्त रामानन्द जी का जन्म भले ही प्रयाग क्षेत्र में हुआ हो, रामानन्द सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र अयोध्या ही हुआ। उत्तर भारत के अनेकों हिस्सों में जैसे कोशल, कपिलवस्तु, वैशाली आदि में अयोध्या के ही इक्ष्वाकु शासकों ने राज्य स्थापित किया।

सृष्टि के आरम्भ से त्रेता युगीन भगवान् रामचन्द्र से लेकर द्वापर कालीन महाभारत और उसके बाद तक हमें अयोध्या के सूर्यवंशी इक्ष्वाकुओं के उल्लेख मिलते हैं, इस वंश का ब्रहद्रथ अभिमन्यु के हाथों महाभारत के युद्ध में मारा गया।

फिर श्री रामचन्द्र जी के पुत्र लव ने श्रावस्ती नगरी बसायी तथा इसका स्वतंत्र उल्लेख अगले 800 वर्षों तक मिलता है। यह नगर मगध के मौर्यों से लेकर गुप्तों और कन्नौज के शासकों के अधीन रहा। अन्त में यहाँ महमूद गजनवी के भांजे सैय्यद सालार ने तुर्क शासन की स्थापना की, वो बहराइच में 1033 ई0 में मारा गया था। इसके बाद तैमूर के पश्चात् जब जौनपुर में शकों का राज्य स्थापित हुआ तो अयोध्या शकों के अधीन हो गया विशेष रूप से शक शासक महमूद शाह के शासनकाल (1440 ई0) में ।

सन् 1526 ई0 में बाबर ने मुगल राज्य की स्थापना की तथा उसके सेनापति ने 1528 में यहाँ आक्रमण करके मस्जिद का निर्माण कराया जो 1992 ई0 में मन्दिर–मस्जिद विवाद के चलते रामजन्म–भूमि आंदोलन के समय ढहा दी गयी।

अकबर के शासनकाल में प्रशासनिक पुनर्गठन के फलस्वरूप आए राजनीतिक स्थायित्व के कारण अवध क्षेत्र का महत्त्व बहुत बढ़ गया। इसके भू–राजनीतिक तथा व्यवसायिक कारण भी थे।

अकबर का अवध सूबा गङ्गा के उत्तरी भाग को पूर्वी क्षेत्रों और दिल्ली, आगरा को सुदूर बङ्गाल से जोड़ने वाला मार्ग यहीं से गुजरता है। अतः अकबर ने जब 1580 ई0 में अपने साम्राज्य को 12 सूबों में विभक्त किया तब उसने अवध को सूबा बना दिया।

1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्योपरान्त जब मुगल साम्राज्य विघटित होने लगा तब अनेक क्षेत्रीय स्वतंत्र राज्य उभरने लगे। उसी दौरान अवध के स्वतंत्र राज्य की स्थापना भी हुई। 1731 ई0 में मुगल बादशाह मुहम्मद शाह ने इस क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए अवध का सूबा अपने शिया दीवान वजीर सआदत खाँ को प्रदान किया। इसका नाम मो0 अमीन बुर्हानुल मुल्क था। उसने अपने सूबे के दीवान दयाशङ्कर के माध्यम से यहाँ का प्रबन्धन सम्भाला। इसके बाद उसका दामाद मंसूर अली सफरदजंग की उपाधि के साथ अवध का शासक बना। उसक प्रधानमंत्री या प्रांतीय दीवान इटावा का कायस्थ नवल राय था। इसी सफदरजंग के समय में अयोध्या के निवासियों को धार्मिक स्वतंत्रता मिली, इसके बाद उसका पुत्र शुजाउद्दौला अवध का नवाब वजीर हुआ (1754–1775) और उसने अयोध्या से 3 मील पश्चिम में फैजाबाद नगर बसाया। यह नगर अयोध्या से अलग और लखनऊ की पूर्व छाया बना। वस्तुतः

इसी शुजाउद्दौला के मरणोपरान्त फैजाबाद इनकी विधवा बहू बेगम की जागीर के रूप में रही और उनके पुत्र आसफ उद्दौल्लाह ने नया नगर लखनऊ बसाकर अपनी राजधानी वहाँ स्थानांतरित कर ली।

अयोध्या, फैजाबाद और लखनऊ तीन पृथक् नगर हैं जो अवध के नवाब, वजीरों की राजधानी रही। इस राज्य का संस्थापक चूंकि मुगलों का दीवान वजीर था अतः अपने शासन की वैधता के लिए वे अपने आपको नवाब वजीर कहते रहे।

वाजिद अली शाह अवध का अंतिम नवाब वजीर था, उसके बाद उनकी बेगम हजरत महल और उनका पुत्र बिलकिश बद्र केवल आंग्ला सत्ताधीशों से साल 1857–58 के दौरान लड़ते रहे परन्तु 1856 के आंग्ल प्रभुत्त्व से अवध को मुक्त कराने में असफल रहे।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अयोध्या नगरी प्राचीनकाल में प्रत्येक युग में वैभवशाली रही है विशेषकर त्रेतायुग में इसका वैभव अपने चरमोत्कर्ष पर था क्योंकि स्वयं भगवान् विष्णु ने यहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के रूप में अवतार लिया था। मध्यकाल में समय–समय पर इसके वैभव में उतार–चढ़ाव आते रहे परन्तु सनातन धर्मियों की आस्था का केन्द्रबिन्दु अयोध्या सदैव रही है तथा रहेगी।

*****

चतुर्थ अध्याय

पुराणोल्लिखित श्रीराम मन्दिर तथा अयोध्या का देव–प्रासाद वैभव

त्रेतायुग के चतुर्थ चरण में मार्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी अयोध्या की इस पावन भूमि पर अवतरित हुए थे। श्री रामचन्द्र जी के जन्म के समय यह स्थान बहुत ही विराट, सुवर्ण एवं सभी प्रकार की सुख–सुविधाओं से सम्पन्न एक राजमहल के रूप में था। महर्षि वाल्मीकि जी ने रामायण में जन्मभूमि की शोभा तथा महत्ता की तुलना दूसरे इन्द्रलोक से की है। धन–धान्य रत्नों से भरी अयोध्या नगरी की अतुलनीय छटा तथा गगनचुम्बी इमारतों के अयोध्या नगरी में होने का वर्णन भी वाल्मीकि रामायण में मिलता है।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिवशोभिताम्।

कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम्।।[1]

अर्थात् वहाँ के महलों का निर्माण नाना प्रकार के रत्नों से हुआ था। वे गगनचुम्बी प्रासाद पर्वतों के समान जान पड़ते थे। उनसे उस अयोध्यापुरी की बड़ी शोभा हो रही थी। बहुसंख्यक कूटागारों (गुप्त गृहों अथवा स्त्रियों के क्रीड़ा भवन) से परिपूर्ण वह नगरी इन्द्र की अमरावती के समान जान पड़ती थी।

अयोध्या नगरी की शोभा विचित्र थी। उसके महलों पर सोने का पानी चढ़ाया गया था। वह पुरी द्यूत फलक की भाँति अष्टापदाकारा थी। अर्थात् पुरी के बीच में राजमहल था। उसके चारों ओर राजबीथियाँ थीं और बीच में खाली जगहें थीं। श्रेष्ठ एवं सुन्दरी नारियों के समूह उस पुरी की शोभा बढ़ाते थे। वह सब प्रकार के रत्नों से भरी पूरी तथा सतमहले प्रासादों से सुशोभित थी।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/15

चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणा युताम्।

सर्वरत्न समाकीर्णां विमानगृह शोभिताम्।।[1]

देवलोक में तपस्या से प्राप्त हुए सिद्धों के विमान की भाँति उस पुरी का भूमण्डल में सर्वोत्तम स्थान था। वहाँ के सुन्दर महल बहुत अच्छे ढङ्ग से बनाये और बसाये गये थे। बहुत से श्रेष्ठ पुरुष उस पुरी में निवास करते थे–

विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि।

सुनिवेशित वेश्मान्तां नरोत्तमसमावृताम्।।[2]

पद्म पुराण के पातालखण्ड में वर्णन आता है कि जब भगवान् श्री रामचन्द्र जी 14 वर्षों के वनवास के पश्चात् वापस अयोध्या नगरी आये थे तो अपनी राजधानी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। इधर भरत ने अपने मित्र एवं सचिव सुमुख को नागरिक उत्सव का प्रबन्ध करने के लिए नगर के भीतर भेजा तथा आदेश दिया कि नगर के सब लोग शीघ्र ही रघुनाथ जी के आगमन का उत्सव प्रारम्भ करें। घर–घर में सजावट की जाये, सड़कें झाड़–बुहार कर साफ की जायें और उन पर चन्दन मिश्रित जल का छिड़काव करके उन पर फूल बिछा दिए जायें। हर एक घर के आँगन में नाना प्रकार की ध्वजाएँ फहराई जायें, प्रकाश का प्रबन्ध हो, सर्वत्रोभद्र आदि चित्र अङ्कित किए जायें। श्रीराम का आगमन सुनकर हर्ष में भरे हुए लोग मेरे कथनानुसार नगर की शोभा बढ़ाने वाली भाँति–भाँति की रचना करें–

द्रष्ट्वा रामो राजधानीं निज लोक निवासिनीम्।

जहर्षमतिमान्वीरश्चिरदर्शनलालसः।।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/16
2. तदेव, 5/19

भरतोपिष्वंकंमित्रं सुमुखं नगरं प्रति।

प्रेषया मास सचिवं नगरोत्सवसिद्धये।।

कुर्वन्तु लोकास्त्वरितं रघुनाथागमोत्सवं।

मंदिरे मंदिरे रम्यं कृतं कौतुक चित्रव्यम्।।

वियांसुका राजमार्गाश्चंदनद्रवसिञ्चिताः।

प्रसूनभर संक्लृप्ता ह्रष्टपुष्ट जनावृताः।।[1]

x x x

विचित्रवर्णध्वजभा चित्रिताखिल स्वांगणा।

मेघागमे धनुरिव पश्यन्त्वेवलीमुखाः।।

प्रति गेहतु लोकानां कारयंत्वगरूक्षणम्।

यद् धूमवीक्ष्यशिखिनो नृत्यंकुर्वन्तुलीलया।।[2]

इसी प्रकार अनेक पुराणों में श्रीराम मन्दिर एवं देव प्रासाद वैभव का उल्लेख मिलता है।

श्री नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

पुरीमयोध्यां सम्प्राप्य रामेण सह पार्थिवः।

दिव्यशोभांपुरीं कृत्वा सर्वतो भद्रशालिनीम्।।

प्रत्युत्थाय ततः पौराः शङ्खतूर्यादिभिःस्वनैः।

विशन्तं राममागत्य कृतदारं रणेऽजितम्।।

तं वीक्ष्य हर्षिताः सन्तो विविशुस्तेन वै पुरीम्।

---

1. पद्म पुराण, पातालखण्ड, 3/1–4
2. तदेव, 3/5–6

तौ द्रष्ट्वा स मुनिः प्राप्तौ रामं लक्ष्मणमन्तिके।।[1]

अर्थात् महाराज दशरथ श्री रामचन्द्र जी के साथ अयोध्यापुरी के निकट पहुँचे। उधर सम्पूर्ण पुरवासी मङ्गलमयी अयोध्या नगरी को सब ओर दिव्य सजावट से सुसज्जित करके शंख और दुन्दुभि आदि गाजे–बाजे के साथ उनकी अगवानी के लिए निकले। नगर के बाहर आकर वे रण में अजेय श्री रामचन्द्र जी को पत्नी सहित नगर में प्रवेश करते हुए देखकर आनन्द मग्न हो गये और उन्हीं के साथ अयोध्या में प्रविष्ट हुए।

नरसिंह पुराणकार ने अयोध्या को समस्त वसुधा की सारभूता के रूप में उल्लिखित किया है–

सर्वतः सारभूता च पुरी चेयं समन्ततः।

अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं यागमण्डलम्।।[2]

नरसिंह पुराण में कैकेयी के भवन का भी वर्णन आता है कि राम का राज्याभिषेक सुनकर कैकेयी मन्थरा दासी के बहकावे में आकर कोप भवन का आश्रय लेती हैं उस समय राजा दशरथ कैकेयी के भवन में प्रवेश करके प्रश्न पूँछते हैं–

अन्धकारमिदं कस्मादद्य ते मन्दिरेप्रिये।

रामाभिषेकं हर्षायअन्त्यजा अपि मेनिरे।।

गृहालङ्करणं कुर्वन्त्यद्य लोका मनोहरम्।

त्वयाद्य न कृतं कस्मादित्युक्त्वा च महीपतिः।।[3]

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 47/155–157
2. तदेव, 48/13
3. तदेव, 48/32–33

अर्थात् प्रिये आज तुम्हारे मन्दिर में अंधकार क्यों है? आज तो इस नगर के चाण्डालों ने भी श्री रामचन्द्र के अभिषेक को आनन्दजनक माना है। सभी लोग अपने घर को सुन्दर ढङ्ग से सजा रहे हैं। तुमने अपने भवन को क्यों नहीं सुसज्जित किया।

वाल्मीकि रामायण में भी कैकेयी के भवन का इस प्रकार से उल्लेख मिलता है–

स कैकेय्या गृहं श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः।

पाण्डुराभ्रमिवाकाशं राहुयुक्त निशाकरः।

शुक बर्हिसमायुक्तं क्रौञ्चहंसरुता युतम्।।

वदित्रव संघुष्टं कुब्जा वामनिका युतम्।

लतागृहैंश्चित्रगृहैश्चम्पकाशोक शोभितैः।।

दान्तराजत सौवर्ण वेदिकाभिः समायुतम्।

नित्यपुष्पफलैर्वृक्षैर्वापीभिरुप शोभितम्।।

दान्त राजत सौवर्णैः संवृतं परमासनैः।

विविधैरन्नपानैश्च भक्षयैश्च विविधैरपि।।

उपपन्नं महार्हैश्च भूषणोस्त्रिदिवोपम्।

स प्रविश्य महाराजः स्वमन्तः पुरमृद्धिमत्।।[1]

अर्थात् उन महायशस्वी नरेश ने पहले कैकेयी के भवन में प्रवेश किया, मानो श्वेत बादलों से युक्त राहुयुक्त आकाश में चन्द्रमा ने पदार्पण किया हो। उस भवन में तोते, मोर, क्रौञ्च और हंस आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। वहाँ

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 10/12–16

वाद्यों का मधुर घोष गूँज रहा था। बहुत सी कुब्जा और बौनी दासियाँ भरी हुई थीं। चम्पा और अशोक से सुशोभित बहुत से लताभवन और चित्र मन्दिर उस महल की शोभा बढ़ा रहे थे। हाँथी दाँत, चाँदी और सोने की बनी हुई वेदियों से संयुक्त उस भवन को नित्य फूलने–फलने वाले वृक्ष और बहुत सी बावड़ियाँ सुशोभित कर रही थीं। उसमें हाँथी दाँत, चाँदी और सोने के बने हुए उत्तम सिंहासन रखे गये थे। नाना प्रकार के अन्नपान और भाँति–भाँति के भक्ष्य–भोज्य पदार्थों से वह भवन भरा पूरा था। बहुमूल्य आभूषणों से सम्पन्न कैकेयी का वह भवन स्वर्ग के समान शोभा पा रहा था।

वाल्मीकि रामायण में अयोध्याकाण्ड में वर्णन आता है कि जब राजा की आज्ञा पाकर मन्त्री सुमन्त्र श्रीराम जी को बुलाने उनके भवन में जाते हैं उस समय श्रीराम जी के भवन का वैभवशाली वर्णन आता है कि मन्त्री सुमन्त्र श्रीराम जी के भवन की ओर जाते समय हर्षोल्लास में भरकर सब ओर दृष्टि डालते हुए शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ रहे हैं तथा राम राज्याभिषेक की आनन्दायिनी बातें सुनते जा रहे थे।

ततो ददर्श रुचिरं कैलास सदृश प्रभम्।

रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्रवेश्मसम प्रभम

महाकपाटपिहितं वितर्दिशत शोभितम्।।

काञ्चन प्रतिमैकाग्रं मणिविद्रुमतोरणम्।

शारदाभ्रघनप्रख्यं दीप्तं मेरुगुहा समम्।।

मणिभिर्वरमाल्यानां सुमहद्भिरलंकृतम्।

मुक्तामणिभिराकीर्ण चन्दनागुरुभूषितम्।।

गन्धान् मनोज्ञान् विसृजद् दार्दुरंशिखरं यथा।

सारसैश्च मयूरैश्च विनदद्भिर्विराजितम्।।

सुकृतेहामृगाकीर्णमुत्कीर्णं भक्तिभिस्तथा।

मनुश्चक्षुश्च भूतानामाददत् तिग्मतेजसा।।

चन्द्र भास्करसंकाशं कुबेर भवनोपमम्।

महेन्द्रधामप्रतिमं नानापक्षि समाकुलम्।।

मेरुशृङ्गसमं सूतो रामवेश्म ददर्श ह।

उपस्थितैः समाकीर्ण जनैरञ्जलिकारिभिः।।

उपादाय समाक्रान्तैस्तदा जानपदैर्जनः।

रामाभिषेक सुमुखैरुन्नमुखैः समलंकृतम्।।

महामेघ समप्रख्यमुदग्रं सुविराजितम्।

नानारत्न समाकीर्णं कुब्जकैरपि चावृतम्।।

स वाजियुक्तेन रथेन सारथिः,

समाकुलं राजकुलं विराजयन्।

वरूथिना राजगृहाभिपातिना,

पुरस्य सर्वस्य मनांसिहर्षयन्।।

ततः समासाद्य महाधनं महत्,

प्रहृष्टरोमा स बभूव सारथिः।।

मृगैर्मयूरैश्च समाकुलोल्बणं,

गृहं वरार्हस्य शचीपतेरिव।।[1]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 15/30–41

अर्थात् तदनन्तर सुमन्त्र को श्रीराम का सुन्दर भवन दिखायी दिया, जो कैलाश पर्वत के समान श्वेत प्रभा से प्रकाशित हो रहा था। वह इन्द्र भवन के समान दीप्तिमान था। उसका फाटक विशाल किवाड़ों से बन्द था। सैकड़ों वेदिकाएँ उस भवन की शोभा बढ़ा रही थीं। उसका मुख्य अग्र भाग सोने की देव प्रतिमाओं से अलंकृत था। उसके बाहर फाटक में मणि और मूँगे जड़े हुए थे। वह सारा भवन शरद् ऋतु के बादलों की भाँति श्वेत कान्ति से युक्त, दीप्तिमान और मेरु पर्वत की कन्दरा के समान शोभायमान था। सुवर्ण निर्मित पुष्पों की मालाओं के बीच–बीच में पिरोयी हुई बहुमूल्य मणियों से वह भवन सजा हुआ था। दीवारों में जड़ी हुई मुक्ता मणियों से व्याप्त होकर जगमगा रहा था। चन्दन और अगर की सुगन्ध उसकी शोभा बढ़ा रही थी। वह भवन मलयाचल के समीपवर्ती दर्दुर नामक चन्दनगिरि के शिखर की भाँति सब ओर मनोहर सुगन्ध बिखेर रहा था। कलरव करते हुए सारस और मयूर आदि पक्षी उसकी शोभा वृद्धि कर रहे थे। सोने आदि की सुन्दर ढङ्ग से बनी हुई भेड़ियों की मूर्तियों से वह व्याप्त था। शिल्पियों ने उसकी दीवारों में बड़ी सुन्दर नक्कासी की थी। वह अपनी उत्कृष्ट शोभा से समस्त प्राणियों के मन और नेत्रों को आकृष्ट कर लेता था। चन्द्रमा और सूर्य के समान तेजस्वी, कुबेर भवन के समान अक्षय सम्पत्ति से पूर्ण तथा इन्द्रधाम के समान भव्य एवं मनोरम उस श्रीराम भवन में नाना प्रकार के पक्षी चहक रहे थे।

सुमन्त्र ने देखा– श्रीराम का महल मेरु पर्वत के शिखर की भाँति शोभा पा रहा है। हाथ जोड़कर श्रीराम की वन्दना करने के लिए उपस्थित हुए असंख्य मनुष्यों से वह भरा हुआ है। भाँति–भाँति के उपहार लेकर जनपद निवासी मनुष्य उस समय वहाँ पहुँचे हुए थे। श्रीराम के अभिषेक का समाचार सुनकर उनके मुख प्रसन्नता से खिल उठे थे। उन सबकी उपस्थिति से भवन की बड़ी शोभा हो रही थी।

वह विशाल राजभवन महान् मेघखण्ड के समान ऊँचा और सुन्दर शोभा से सम्पन्न था। उसकी दीवारों में नाना प्रकार के रत्न जड़े गये थे और कुबड़े सेवकों से वह भरा हुआ था। सारथि सुमन्त्र राजभवन की ओर जाने वाले वरूथ (लोहे की चादर या सींकचों के बने हुए आवरण) से युक्त तथा अच्छे घोड़ों से जुते हुए रथ के द्वारा मनुष्यों की भीड़ से भरे राजमार्ग की शोभा बढ़ाते तथा समस्त नगर निवासियों के मन को आनन्द प्रदान करते हुए श्रीराम के भवन के पास जा पहुँचे। उत्तम वस्तु को प्राप्त करने के अधिकारी श्रीराम का वह महान् समृद्धिशाली विशाल भवन शचीपति इन्द्र के भवन की भाँति सुशोभित होता था। इधर–उधर फैले हुए मृगों और मयूरों से उसकी शोभा और बढ़ गयी थी। वहाँ पहुँचकर सारथि सुमन्त्र के शरीर में अधिक हर्ष के कारण रोमाञ्च हो आया।

श्रीराम के भवन के वैभव का वर्णन करते हुए वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

स तत्र कैलासनिभाः स्वलंकृताः प्रविश्य कक्ष्यास्त्रिदशालयोपमाः।

प्रियान् वरान् राममते स्थितानिबहून्, व्यापोह्यशुद्रान्तमुपस्थितौ रथी।।

स तत्र शुश्राव च हर्ष युक्ता, रामाभिषेकार्थकृतां जनानाम्।

नरेन्द्र सूनोरभिमङ्गलार्थाः सर्वस्य लोकस्य गिरः प्रहृष्टाः।।

महेन्द्रसद्मप्रतिमं च वेश्म रामस्य रम्यं मृगपक्षि जुष्टम्।

ददर्श मेरोरिवशृङ्गमुच्चं, विभ्राजमानं प्रभया सुमन्त्रः।।[1]

अर्थात् वहाँ कैलास और स्वर्ग के समान दिव्य शोभा से युक्त, सुन्दर सजी हुई अनेक ड्यौढ़ियों को लाँघकर श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा में चलने

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 15/42–44

वाले बहुतेरे श्रेष्ठ मनुष्यों को बीच में छोड़ते हुए रथ सहित सुमन्त्र अन्तःपुर के द्वार पर उपस्थित हुए। उस स्थान पर उन्होंने श्रीराम के अभिषेक सम्बन्धी कर्म करने वाले लोगों की हर्ष भरी बातें सुनी, जो राजकुमार श्रीराम के लिए सब ओर से मङ्गलकामना सूचित करती थीं। इसी प्रकार उन्होंने अन्य सब लोगों की भी हर्षोल्लास से परिपूर्ण वार्ताओं को श्रवण किया। श्रीराम का वह भवन इन्द्र सदन की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। मृगों और पक्षियों से सेवित होने के कारण उसकी रमणीयता और भी बढ़ गयी थी। सुमन्त्र ने उस भवन को देखा वह अपनी प्रभा से प्रकाशित होने वाले मेरुगिरि के ऊँचे शिखर की भाँति सुशोभित हो रहा था।

इसके अलावा महर्षि वाल्मीकि ने श्री रामचन्द्र जी के भवन की तुलना प्रचुर रत्नों से भरे समुद्र तथा पर्वत शिखर पर आरुढ़ हुए अविचल मेघ से की है–

ततोऽद्रिकूटाचल मेघ संनिभं, महाविमानोपमवेश्म संयुतम्।

अवार्यमाणः प्रविवेश सारथिः प्रभूतरत्नं मकरो यथार्णवम्।।[1]

अर्थात् अयोध्या के महलों के साथ–साथ वहाँ के राजमार्ग भी अत्यन्त विशाल थे। उसके प्रत्येक चौराहों पर मनुष्यों की भारी भीड़ इकट्ठी रहती थी। उसके दोनों पार्श्व भागों में प्रचुर रत्नों से भरी हुई दुकानें थी तथा विक्रय के योग्य और भी बहुत से द्रव्यों के ढेर वहाँ दिखायी देते थे। वह राजमार्ग बहुत साफ–सुथरा था।

करेणु मातङ्ग रथाश्व सञ्कुलम्, महाजनौघैः परिपूर्ण चत्वरम्।

प्रभूत रत्नं बहुपण्य सञ्चयं, ददर्श रामो विमलं महापथम्।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 15/48
2. तदेव, 16/47

अयोध्याकाण्ड में ही महाराज दशरथ के राजप्रासाद का वैभवशाली वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया है।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

स राजकुल मासाद्य मेघ सङ्घोपमैः शुभैः।

प्रासाद शृङ्गैर्विविधैः कैलासशिखरोपमैः।।

आवारयद्भिर्गगनं विमानैरिव पाण्डुरैः।

वर्धमानगृहैश्चापि रत्नजालपरिष्कृतैः।।

तत् पृथिब्यां गृहवरं महेन्द्रसदनोपमम्।

राजपुत्रः पितुर्वेश्म प्रविवेश श्रियाज्वलन्।।[1]

अर्थात् राजा दशरथ का भवन मेघ समूहों के समान शोभा पाने वाले, सुन्दर अनेक रूप रङ्ग वाले कैलास शिखर के समान उज्ज्वल प्रासादशिखरों (अट्टालिकाओं) से सुशोभित था। उसमें रत्नों की जाली से विभूषित तथा विमानाकार क्रीड़ागृह भी बने हुए थे, जो अपने श्वेत आभा से प्रकाशित होते थे। वे अपनी ऊँचाई से आकाश को भी लाँघते हुए से प्रतीत होते थे, ऐसे गृहों से युक्त वह श्रेष्ठ भवन इस भूतल पर इन्द्रसदन के समान शोभा पाता था। उस राजभवन के पास पहुँचकर अपनी शोभा से प्रकाशित होने वाले राजकुमार श्रीराम ने पिता के महल में प्रवेश किया। अन्यत्र भी अयोध्याकाण्ड तृतीय सर्ग में वर्णन आता है–

स तं कैलाश शृङ्गाभं प्रासादं रघुनन्दनः।

आरुरोह नृपं द्रष्टुं सहसा तेन राघवः।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 17/17–19
2. तदेव, 3/31

अर्थात् महाराज दशरथ का वह राजमहल कैलाश शिखर के समान उज्ज्वल और ऊँचा था। रघुकुल को आनन्दित करने वाले श्रीराम महाराज का दर्शन करने के लिए सुमन्त्र के साथ सहसा उस पर चढ़ गये।

अयोध्याकाण्ड में ही वर्णन आता है कि वहाँ पर तीन मंजिल के महलों को प्रासाद तथा सात मंजिल के महलों को विमान की संज्ञा दी जाती थी। जब भगवान् श्री रामचन्द्र जी अनुज लक्ष्मण तथा सीता जी के साथ वनगमन के पूर्व पिता दशरथ जी के दर्शन के लिए जाते हैं तो अयोध्यावासी उनके दर्शन कर रहे थे–

ततः प्रासादहर्म्याणि विमानशिखराणि च।

अभिरुह्य जनः श्रीमानुदासीनो व्यलोकयत्।।

न हि रथ्याः सुशक्यन्ते गन्तुं बहुजनाकुलाः।

आरुह्य तस्मात् प्रसादाद् दीनाः पश्यन्ति राघवम्।।[1]

अर्थात् उस अवसर पर धनी लोग प्रासादों (तीन मंजिल महलों) हर्म्यगृहों (राजभवनों) तथा विमानों (सात मंजिल महलों) की ऊपरी छतों पर चढ़कर उदासीन भाव से उन तीनों की ओर देखने लगे। उस समय सड़कें मनुष्यों की भीड़ से भरी थीं। इसलिए उन पर सुगमतापूर्वक चलना कठिन हो गया था। अतः अधिकांश मनुष्य प्रासादों (तिमंजिले महल) पर चढ़कर वहीं से दुःखी होकर श्री रामचन्द्र जी की ओर देख रहे थे।

वनवास के पश्चात् जब श्री रामचन्द्र जी वापस अयोध्या आते हैं उस सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौरां पताकाश्च गृहे–गृहे।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 33/3–4

ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम्।।

अथा ब्रवीद् राजपुत्रों भरतं धर्मिणा वरम्।

अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः।।

पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः।

कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च।।

तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।

मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय।।[1]

अर्थात् उस समय पुरवासियों ने अपने–अपने घर पर लगी हुई पताकाएँ ऊँची कर दीं। फिर श्री रामचन्द्र जी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के उपयोग में आये हुए पिता के रमणीय भवन में गये। उस समय रघुकुल नन्दन राजकुमार श्रीराम ने महात्मा पिताजी के भवन में प्रवेश करके माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी के चरणों में मस्तक झुकाकर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भरत से अर्थयुक्त मधुर वाणी में कहा– भरत! मेरा जो अशोक वाटिका से घिरा हुआ मुक्ता तथा वैदूर्य मणियों से जटित विशाल भवन है वह सुग्रीव को दे दो।

पौराणिक साहित्य के साथ–साथ वर्तमान संस्कृत साहित्यकारों ने पूर्ण मनोयोग के साथ अयोध्या नगरी के वैभव का वर्णन किया है। रघुवंशकार महकवि कालिदास ने वर्णन किया है–

तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितम् पार्श्वचरानुयातः।

आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रिंलिहमारुरोहः।।

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्विमाहयमानां सरयूं च नौभिः।

विलासिभिश्चाध्युषितानि पौरैः पुरापकण्ठोपवनानि रेमे।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 128/42–45
2. रघुवंशम्, 14/29–30

अर्थात् राम ने सीता से कहा कि तुम्हारी यह इच्छा मैं अवश्य पूरी करूँगा। इतना कहकर वे सेवक के साथ अति मनोहर अयोध्या की सुन्दरता को देखने के लिए अपने गगनचुम्बी राजभवन की छत पर जा चढ़े। वहाँ से भगवान् श्रीराम यह देखते हैं कि राजमार्ग की दुकानें धन–धान्य से सुशोभित हैं, सरयू में नावों का आवागमन हो रहा है और पुरवासी प्रसन्नतापूर्वक उद्यानों में रमण कर रहे हैं।

महाकवि कुमारदास ने 'जानकीहरणम्' में अयोध्या वैभव का सुन्दर वर्णन किया है। जानकीहरणम् में प्रोक्त है–

यत्सौधशृङ्गाग्रसरोज रागरत्नप्रभाविच्छुरिवः शशाङ्क।

पौराङ्गना वक्त्रकृतावमानो जगाम रोषादिव लोहितत्त्वम्।।

कृत्वापि सर्वस्यमुदसमृद्ध्या हर्षाय नाभूदभिसारिकाणाम्।

निशासु या काञ्चनतोरणस्थ रत्नाशुभिर्भिन्नतामिस्त्रराशि।।

चीना शुकैरभ्रलिहामुदग्रशृङ्ग गृभागोपहितैर्गृहाणाम्।

विटङ्ककोटिस्खलितेन्द्रसृष्टनिर्मोक पद्मैरिव या बभासे।।

दिद्रक्षुरन्तसरसीमलङ्घय यत्खातहसः समुदीक्ष्यवप्रम्।

सस्मारनूनं द्रढ़क्रौञ्चकुञ्ज भागच्छिदो भार्गव मार्गणस्य।।

स्वबिम्बमालोक्य ततं गृहाणामादर्शभित्तौकृत वन्ध्यघाताः।

रथ्यासु यस्यां रदिनः प्रमाणञ्चक्रुर्मदामोदमरिद्धिपानाम्।।

लग्नैकभागं सितहर्म्यशृङ्गे विकृष्यमन्देन समीरणेन।

दीर्घीकृतं मालमृणालशुभ्रं करोति यत्रध्वजकृत्यम भ्रम।।

प्रवालशीर्षा वदनं सुवर्णमुक्तामयाङ्गावयवा वहन्त्यः।

यस्यां युवत्योविहिता विधात्रा रत्नैरिवापुर्वपुषः प्रकर्षम्।।

आलिऽग्य तुङ्गं वडभीविटङ्कं विश्राणितात्मध्वनि पुष्करेषु।

यत्सौध कान्तेरिव संविभागं वव्रेसितं शारदमभ्रवृन्दम्।।

आसन्न जीमूत घटासु यस्यां विद्युन्निभा काञ्चनपिञ्जरासु।

मुहुः पताकासु तता विवृत्तिस्ततान तोषं शिखिनामुदगम्।।

यत्र क्षतोद्वृहिततामसानि रक्ताश्मनीलोपलतोरणानि।

क्रोध प्रमोदो विदधुर्विभाभिर्नारीजनस्य भ्रमतो विशासु।।[1]

अर्थात् अयोध्या के प्रासादों के शिखर पर रखे हुए सुवर्ण कलशों पर खचित मणियेां की प्रभा ने चन्द्रमा को यूं ही छाप लिया था वह पौर जनों की सुन्दरी स्त्रियों के मुख लावण्य से अपमानित होकर क्रोध के मारे लाल हो गया। यद्यपि अपनी समृद्धि से उस नगरी ने सब लोगों को प्रसन्न कर दिया था परन्तु अभिसारिकाओं को कोई हर्ष नहीं हुआ। क्योंकि रात्रि के समय सुवर्ण के तोरणों पर जड़ी हुई मणियों की प्रभा अन्धकार समूह को भिन्न कर देती थी। बादलों को छूते हुए नगरी के प्रासाद अतीव शोभायमान हो रहे थे। इन प्रासादों के शृङ्गों पर चीन के बने हुए शुभ्र वस्त्र से मढ़ी हुई कबूतरी की काबुक (कबूतरों के रहने का बक्सा) रखी हुई थी, ऐसा लगता था कि जैसे इन काबुकों से टकराने के कारण चन्द्रमा की ऊपरी खाल उधड़कर इन काबुकों में चिपक गयी है। नगरी के बाहर (जल से भरी) खाईं में तैरते हुए हंस ने भीतर के तालाब को देखने की इच्छा की परन्तु उसकी चाहरदीवारी इतनी सुदृढ़ थी

1. जानकीहरणम्, 1/2–11

कि हंस भीतर न घुस सका। तब उसने परशुराम के बाण का स्मरण किया जिसने क्रौञ्च पर्वत की दृढ़ गुफाओं को काट डाला था।

घरों के दर्पण की तरह चिकनी दीवारों पर अपना प्रतिबिम्ब देखकर हाथियों ने उन्हें असली हाथी समझकर उन पर प्रहार किया पर वह निष्फल रहा, उन प्रतिद्वन्द्वी हाथियों मे मद का अभाव देखकर उन्हें निश्चित हो गया कि वे असली नहीं हैं।

एक शुभ्र प्रासाद के शृङ्ग के एक भाग पर लगा हुआ ताजे स्वेत कमल के समान सफेद बादल का टुकड़ा मन्द समीर के कारण लम्बायमान होकर ध्वजा का काम करता था। प्रजापति की बनाई हुई वहाँ की सुन्दर वदना युवतियाँ जिनके सिर सुन्दर केशपाश से सुसज्जित थे और जो पूर्णतया स्वस्थ और निरोग थीं, उनका शरीर लावण्य रत्नों के सदृश था।

शरद् ऋतु के बादलों का समूह वहाँ के प्रासादों को सबसे ऊँचे कमरों को आलिङ्गन कर वहाँ पर रखे हुए नगाड़ों को ध्वनित करते हुए उन प्रासादों के सौन्दर्य के एक सुसज्जित अङ्ग लगते थे। जहाँ पास में फैले हुए बादलों के आटम्बर के सन्निकट, बिजली के समान प्रभावान् निरन्तर फहराते हुए झण्डे मयूरों को अतीव आह्लादित करते हैं।

जहाँ लाल और श्वेत पत्थरों के बने हुए तोरण कभी अँधेरा और कभी उजाला बिखरते रहते हैं तदनुसार रात में घूमने वाली अभिसारिकाओं के हृदय में वे प्रसन्नता और क्रोध उत्पन्न करते रहते हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रोक्त है–

भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम्।

प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्व मातरम्।।

गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत्।

वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत् समुपेयतुः।।[1]

अर्थात् वनवास से वापस अयोध्यापुरी में आने पर भगवान् ने भाइयों का अभिनन्दन स्वीकार करके उनके साथ अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। उस समय वह पुरी आनन्दोत्सव से परिपूर्ण हो रही थी। राजमहल में प्रवेश करके उन्होंने अपनी माताओं, गुरुजनों, बराबर के मित्रों और छोटों का यथायोग्य सम्मान किया तथा उनके द्वारा किया हुआ सम्मान स्वीकार किया। श्री सीता जी और लक्ष्मण जी ने भी भगवान् श्रीराम जी के साथ–साथ सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार किया।

इस प्रकार सप्तपुरियों में प्रथम पुरी अयोध्या है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओं की यह राजधानी रही है। इक्ष्वाकु से श्री रघुनाथ जी तक सभी चक्रवर्ती नरेशों ने अयोध्या के सिंहासन को भूषित किया है। भगवान् श्रीराम की अवतार भूमि होकर तो अयोध्या साकेत हो गयी।

पुराणों तथा अनेक ग्रन्थों के अनुशीलन से यह तथ्य प्रकट होता है कि भगवान् श्रीराम जी के प्रासाद को वर्तमान में रामकोट के नाम से जाना जाता है। दुर्ग के भीतर बहुत अधिक भूमि है। "कहा जाता है इस दुर्ग में 20 फाटक थे और प्रत्येक फाटक पर रामचन्द्र जी के मुख्य–मुख्य सेनापति रक्षक थे। इन गढ़ कोटों के नाम भी वही थे जो इन रक्षकों के नाम थे। इस दुर्ग के भीतर 8 राजप्रासाद थे जहाँ राजा दशरथ उनकी रानियाँ और उनके पुत्र निवास करते थे। पुराणों में वर्णित है कि राजप्रासाद के मुख्य फाटक पर हनुमान् जी का वास था। उनके दक्षिण में सुग्रीव और उसीके निकट अङ्गद रहते थे। दुर्ग के

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण, 10/46–47

दक्षिण द्वार पर नल–नील रहते थे और उनके पास ही सुषेण पूर्व की ओर नवरत्न नामक एक मन्दिर था और उसके उत्तर में गवाक्ष रहते थे। दुर्ग के पश्चिम द्वार पर दधिवक्र थे उनके निकट शतबलि और कुछ दूर पर गन्धमादन, ऋषभ, सरभ और पनस थे। दुर्ग के उत्तर द्वार पर विभीषण रहते थे। उनके पूर्व में उनकी स्त्री सरमा थी। उसके पूर्व में विघ्नेश्वर थे और उनके पूर्व में पिण्डारक रहते थे। उसके पूर्व में वीर मत्त गजेन्द्र का वास था। पूर्वीय भाग में द्विविद रहते थे और उसके उत्तर–पश्चिम में बुद्धिमान् मयन्द रहते थे। दक्षिणी भागमें जाम्बवान् रहते थे और उनके दक्षिण में केसरी। यही दुर्ग की चारों ओर से रक्षा करते थे। इनमें से वर्तमान में 4 ही बचे हैं– हनुमान् गढ़ी, सुग्रीव टीला, अङ्गद टीला और मत्त गजेन्द्र। हनुमान् गढ़ी अब 4 कोट वाला छोटा सा दुर्ग दिखायी देता है। यह गढ़ी आसिफुद्दौला के मन्त्री टिकैत राय के द्वारा पुराने स्थान पर बनी थी और बड़ी मूर्ति स्थापित की गयी थी। प्राचीन छोटी मूर्ति उसी के आगे स्थापित है और एक बड़ी मूर्ति स्थापित की गयी थी। प्राचीन छोटी मूर्ति उसी के आगे स्थापित है।"[1]

इस प्रकार से पौराणिक वाङ्मय से आद्यतन साहित्य तक श्रीराम मन्दिर एवं अयोध्या के देव प्रासाद वैभव का सुन्दर वर्णन किया गया है। त्रेतायुग में महाराज कुश ने अयोध्या के पुनरूथान के क्रम में राम जन्मभूमि का वैभव बढ़ाया। त्रेतायुग से द्वापर तक जितने भी राजाओं ने अयोध्या में शासन किया उन्होंने श्रीराम जन्मभूमि तथा अयोध्या के वैभव को अक्षुण्ण बनाये रखा। धीरे–धीरे समय का कालचक्र चलता रहा तथा अयोध्या का वैभव बनता–बिगड़ता रहा। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में जब महाराजा विक्रमादित्य ने अयोध्या की यात्रा की तब तीर्थराज प्रयाग की प्रेरणा से उन्होंने अयोध्या में स्थित तीर्थों का पुनरूद्धार कराया। उन्होंने राम जन्मभूमि मन्दिर का पुनर्निमाण

1. अयोध्या का इतिहास, पृ0 76

कराया। नियमित पूजा–पाठ की समस्त व्यवस्था करायी। विक्रम सम्वत् 444 में समुद्रगुप्त ने राम जन्मभूमि मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। इसके पश्चात् कुछ मुस्लिम आक्रान्ताओं ने राम जन्मभूमि पर आक्रमण किया जिनमें सन् 1031 में अहमद नियाल्तगीन सन् 1033 में महमूद गजनवी के भाँजे सालार मसूद ने आक्रमण किया।"[1]

11वीं शताब्दी में राजा जयचन्द ने राम जन्मभूमि का दर्शन किया तथा कुछ मन्दिरोंका निर्माण कराया। सन् 1325 से 1351 में मुहम्मद बिन तुगलक ने राम जन्मभूमि पर 2 बार आक्रमण किया।

सन् 1351 से 1388 में शाह फिरोज़ तुगलक ने यहाँ आक्रमण किया। सन् 1393–1413 में तुगलक शासक नासिरउद्दीन महमूद बिन तुगलक ने यहाँ दो बार आक्रमण किया। सन् 1489 से 1517 में सिकन्दर लोदी ने यहाँ आक्रमण किया। सन् 1526 में लोदी सूबेदार फिरोज़ खान ने यहाँ पर 10 बार आक्रमण किया। इतने आक्रमणों के पश्चात् भी राम जन्मभूमि मन्दिर में कोई विशेष क्षति नहीं होने पायी। परन्तु 1526 में मुगल बादशाह बाबर ने अपने मन्त्री मीरबाङ्की ताशकन्दी को राम मन्दिर तोड़कर मस्ज़िद बनाने की आज्ञा दी। रक्तरञ्जित विजय के पश्चात् 1528 में बाबरी मस्ज़िद का निर्माण राम मन्दिर के स्थान पर मीरबाङ्की द्वारा करवाया गया। उसके पश्चात् भी हिन्दू साधु–सन्तों द्वारा राम जन्मभूमि को स्वतंत्र करने का प्रयास चलता रहा। इसी क्रम में मस्ज़िद के अहाते में ही छोटे चबूतरे पर खस की टट्टियों से घेरकर स्मारक स्वरूप श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर बनाया गया। जब भारत स्वतंत्र हुआ उसके पश्चात् 22 दिसम्बर, 1949 ई0 को भगवान् राम को उसी जन्मभूमि

1. श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या, पृ0 35

स्थान पर सिंहासन पर स्थापित किया गया।[1] तभी से यह मुद्दा न्यायालय के अधीन हो गया क्योंकि हिन्दुओं का कहना था कि भगवान् राम प्रकट हुए हैं तथा मुसलमानों ने आरोप लगाया कि किसी ने चुपचाप रात में मूर्तियाँ वहाँ रख दी हैं। इसके पश्चात् सम्पूर्ण देश में श्रद्धा की एक ज्योति जल उठी। अनेकानेक रथ यात्राएँ निकाली गयीं तथा भव्य राम मन्दिर निर्माण के लिए सनातन–धर्मी त्याग और आत्माहुति देने में भी किञ्चित मात्र भयभीत नहीं हुए जिसके परिणामस्वरूप 30 अक्टूबर, 1990 को तथा 2 नवम्बर, 1990 को अनेकानेक कारसेवकों को बलिदान देना पड़ा। 30 सितम्बर, 2010 में 60 साल के पश्चात् उच्च न्यायालय के निर्णय दिया कि वर्तमान में जिस स्थान पर रामलला की मूर्ति स्थापित है उस स्थान के 3 न्यायाधीशों की पीठ ने सर्वसम्मति से राम जन्मभूमि माना।[2] परन्तु इसके पश्चात् भी विवाद पूर्णतयः सुलझ नहीं पाया तथा प्रकरण सर्वोच्च न्यायालय पहुँच गया। अन्तोगत्त्वा 9 नवम्बर, 2019 को सर्वोच्च न्यायालय के 5 न्यायाधीशों की पीठ ने राम मन्दिर के पक्ष में निर्णय दिया। 25 मार्च, 2020 को प्रभू श्रीराम को फाइबर के मन्दिर में स्थापित किया गया तथा 5 अगस्त, 2020 को भव्य राम मन्दिर निर्माण के लिए भूमि पूजन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।[3]

*****

1. श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या, पृ0 36
2. तदेव, पृ0 42
3. Case File No. Suprem Court Civil Appeal No. 10866-1867/2010 M. Siddiqui Versus Mahant Suresh Das & Others.

पञ्चम अध्याय

अयोध्या के प्रसिद्ध तीर्थ, दर्शनीय स्थल तथा परिक्रमा–प्रशस्ति

अयोध्या भारत की सप्त पुरियों में से एक महत्त्वपूर्ण पुरी है। पुराण आदि ग्रन्थों के बाद इतिहास की पुस्तकें भी इस नगरी की कहानियाँ सुनाती हैं। अयोध्या एक ऐसा धार्मिक नगर है जहाँ के प्रत्येक रजकण में एक–एक तीर्थ विद्यमान है। महर्षि वाल्मीकि ने अयोध्या का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है, जिसे पढ़ने से प्रतीत होता है कि अयोध्या किसी आधुनिक राजधानी से किसी प्रकार कम न थी। इससे यह भी पता चलता है कि प्राचीनकाल में भारत के नगर कितनी उच्चकोटि के होते थे। स्कन्द पुराण के वैभवखण्ड में अयोध्या माहात्म्य के वर्णन में इसे आद्या नगरी के नाम से अभिहित किया गया है। अयोध्या के वर्तमान दर्शनीय स्थलों के विवरण से पूर्व हमें पुराणोल्लिखित अयोध्या के तीर्थ स्थलों की भी जानकारी होना अतिआवश्यक है। अयोध्या के विभिन्न तीर्थ स्थलों का अति गहन ज्ञान स्कन्द पुराण में वर्णित है। स्कन्द पुराण के अयोध्या माहात्म्य में बताया गया है कि एक बार भारद्वाज आदि ऋषियों ने व्यास शिष्य मुनिसत्तम रोम हर्षण सूत से पूछा कि हे महाभाग सूत! हम सब आपसे महापुरी अयोध्या की उत्तम गुणमयी रहस्य युक्त सनातन महिमा सुनना चाहते हैं तब सूत जी ने उत्तम ऋषियों को अयोध्या माहात्म्य सुनाया था।

स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामः सरहस्य सनातनम्।
अयोध्या या महापुर्या महिमानं गुणोज्ज्वलम्।।
कीदृशी सा सदा मेध्याऽयोध्या विष्णुप्रियापुरी।
आद्या सा गीयते वेदै पुरीणां मुक्तिदायिका।।
संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां कं च महीभुजः।
कानि तीर्थानि पुण्यानि महात्म्य तेषु कीदृशम्।।[1]

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 1/16–18

इसके पश्चात् सूत जी ने अयोध्या के विभिन्न तीर्थ स्थलों का वर्णन प्रारम्भ किया कतिपय तीर्थ स्थलों का वर्णन यहाँ पर क्रमशः किया गया है।

चक्रतीर्थ–

विष्णु शर्मा नामक ब्राह्मण की तपस्या तथा स्तुति से प्रसन्न होकर कृपा सिन्धु भगवान् विष्णु ने चक्र द्वारा भेदन करके पाताल मण्डल से जाह्नवी जल को प्रकट किया था तभी से यह स्थान चक्रतीर्थ कहा जाने लगा–

इत्युक्त्वा देवदेवेशश्चक्रेणोत्खाय तत्स्थलम्।

जलं प्रकटयामासगाङ्गपातालमण्डलात्।।

जलेन तेन भगवान्पवित्रेण दयाम्बुधिः।

नीरजस्कं भूमितलंक्षणाच्चक्रे कृपावशात्।

चक्रमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद् द्विजः।।[1]

वर्तमान में यह स्थान लुप्त प्राय है तथा इस्लामाबाद नाम से यह स्थान जाना जाता है।

ब्रह्मकुण्ड–

पूर्वकाल में जगत्सृष्टा ब्रह्मा अच्युत हरि को अयोध्या में स्थित जानकर स्वयं उस चक्रतीर्थ में निवास कर रहे थे। वे यथाविधि यात्रा करके अयोध्या स्थित चक्रतीर्थ में आये तथा उन्होंने सविधि यज्ञ किया। उनके यज्ञ में नाना सामग्री लायी गयी। लोक पितामह ब्रह्मा ने अपने नाम के अनुसार नाना देव समन्वित एक बृहद् कुण्ड निर्मित करके यज्ञ किया। यह ब्रह्मकुण्ड कलुष का हरण करने वाला, विस्तीर्ण जल कल्लोल से आकुलित, कुमुद उत्पल, कल्हार

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 1/95–96$^{1/2}$

तथा पुण्डरीक समाकीर्ण था। यह कुण्ड हंस, सारस, चक्रवाक आदि अनेक पक्षीगण के विचार के कारण अत्यन्त विचित्र शोभा धारण कर रहा था।

स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

पुरा ब्रह्मा जगत्स्रष्टाविज्ञाय हरिमुच्युतम्।

अयोध्यावासिनं देवं तत्र चत्रेस्थित स्वयम्।।

आगत्यकृतवांस्तत्र यात्रा ब्रह्मायथाविधि।

यज्ञञ्चविधिच्चक्रे नाना सञ्भार सञ्युतम्।।

ततः स कृतवांस्तत्र ब्रह्मा लोक पितामहः।

कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नाना देव समन्वितम्।।

विस्तीर्ण जलकल्लोलकलितं कलुषापहम्।

कुमुदोत्पल कल्हार पुण्डरीक कुलाकुलम्।।

हंस सारस चक्राह्वविहङ्गममनोहरम्।

तटान्तविटपोल्लासिपतत्रिगण सङ्कुलम्।।[1]

वर्तमान में इस नाम से एक गुरु द्वारा ब्रह्मकुण्ड अयोध्या में प्राप्त होता है तथा श्री अयोध्या का प्राचीन इतिहास एवं अयोध्या गाइड पुस्तक में प्राचीन कुण्ड एवं सरोवर में इसका वर्णन किया गया है।

स्वर्ग द्वार–

सहस्रधार से पूर्व 636 धनुष की दूरी पर यह सरयू जल में स्थित है। ज्येष्ठ मास शुक्ल पूर्णिमा के दिन योगीगण यहाँ चन्द्र सहस्त्र व्रत का उद्यापन

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 2/2–6

करते हैं। इस व्रताचरण द्वारा सर्वपाप क्षय होकर मानव को स्वर्ग प्राप्त हो जाता है।

स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

सर्वस्तेषां शुभःकालः स्वर्गद्वारंश्रयन्तिये।

स्नान मात्रेण पापानि विलयं यान्ति देहिनाम्।।[1]

बड़ी परिक्रमा यहीं से प्रारम्भ होती है तथा वर्तमान समय में स्वर्गद्वार घाट पर ही यात्री पिण्डदान करते हैं। यह स्थान सैदबाड़ा के नाम से भी जाना जाता है।

चन्द्रहरि तीर्थ–

सुधा निधि शीतांशु उत्सुकता के कारण अयोध्या आये वे तीर्थ माहात्म्य दर्शनार्थ आये थे। उन्होंने अयोध्यापति विष्णु को प्रणाम किया। उन चन्द्रमा ने यहाँ आकर सविधि तीर्थाटन किया और यहाँ का माहात्म्य देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने यहाँ पर दुष्कर तपश्चरण से श्रीहरि की आराधना भी की। तदनन्तर अयोध्यापति विष्णु की कृपा से उन्होंने अपना नाम आगे लगाकर चन्द्रहरि मूर्ति की प्रतिष्ठा की। इसी कारण इस स्थान को चन्द्रहरि कहते हैं।

अयोध्या निलयं विष्णुंनत्त्वा शीतांशुरुत्सकः।

आगच्छ तीर्थंमाहात्म्यं साक्षात्कर्तुं सुधानिधि।

अत्रागत्य च चन्द्रोऽथ तीर्थयात्रां चकार सः।।

क्रमेणविधिपूर्वञ्च नावाश्चर्यसमन्वितः।

समाराध्यततोविष्णुंतपसादुश्चरेण वै।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 3/39

तत्प्रसादं समासाद्य स्वाभिधानपुरस्सरम्।

हरिंसंस्थापयामास तेन चन्द्रहरि स्मृतः।।[1]

वर्तमान में यह लुप्तप्राय है, इसकी स्थिति सरयू में बताई जाती है। चन्द्रहरि महादेव मन्दिर नाम से एक मन्दिर प्राप्त होता है जो नागेश्वर नाथ मन्दिर के पास ही स्थित है।

धर्महरि तीर्थ–

चन्द्रहरि तीर्थ के अग्नि कोण दिशा में कलि कलुष नाशक देव धर्महरि की स्थिति है। पूर्वकाल में वेद–वेदाङ्ग तत्त्वार्थज्ञ स्वकर्म तत्त्पर धर्मदेव तीर्थ यात्रार्थ यहाँ आये थे तथा उन्होंने विधिवत् श्रीहरि की पूजा–अर्चना की थी। अपने नाम को आगे लगाकर धर्महरि मूर्ति को स्थापित किया था।

तस्माच्चन्द्रहरि स्थानादाग्नेय्यां दिशिसंस्थितः।

देवोधर्महरिर्न्नाम कलिकल्मषनाशकः।

वेदवेदाङ्ग तत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठतः।

पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया।

आगत्य च चकारोच्चैर्यात्रांतत्रादरेणसः।

द्रष्ट्वा माहात्म्यंमतुलमयोध्यायाः सविस्मयः।।[2]

यदि तुष्टोऽसि भगवन्देवः जगत्पते।

त्वामंहंस्यापयाम्यत्र निजनाम्ना जगद्गुरो।

एवमस्त्विति सम्प्रोच्याऽभवद्धर्महरिर्विभुः।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 3/45–47
2. तदेव, 4/1–3

स्मरणादेव मुच्यते नरो धर्म हरेर्विभोः।।[1]

वर्तमान स्थान रही सिंह धर्मशाला के पीछे श्री धर्महरि जी का मन्दिर है।

स्वर्ण खनि–

स्वर्ग द्वार के दक्षिण की ओर स्वर्ण खान है। यह अतिउत्तम तीर्थ है। महाराजा रघु के भय से यहाँ पर कुबेर द्वारा स्वर्ण वृष्टि की गयी थी–

तस्माद्दक्षिदिग्भागे स्वर्णस्यखनिरुत्तमा।

यत्र चक्रे स्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद्भयात्।।[2]

सोनखर नाम से प्रसिद्ध यह स्थान वर्तमान में बड़ी छावनी के पास ही स्थित है। इस कुण्ड का परिवर्तित सुलेमान बाग नाम से भी जाना जाता है।

तिलोदकी नदी–

इस नदी के विषय में बताया गया है कि पूर्वकाल में श्रीराम ने सिन्धु देशोत्पन्न घोड़ों के जल पीने के लिए द्वितीय सिन्धु नदी के समान एक नदी का निर्माण किया। इस नदी का जल तिल के समान श्याम वर्ण होने के कारण इस पुण्यतोया नदी को तिलोदकी कहा गया है–

नभस्य कृष्णामवस्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।

रामेणनिर्मिता पूर्वनदी सिन्धुरिवापरा।।

सिन्धुजानां तुरङ्गाणा जलपानाय सुव्रतः!

तिलवच्छयाममुदकं यतस्तस्यां सदावभौ।

तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदानदी।।[3]

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 4/20–21
2. तदेव, 4/30
3. तदेव, 5/25–26

वर्तमान तिलई नाम से विख्यात् यह नदी लुप्तप्राय अवस्था में है।

सीता कुण्ड–

तिलोदकी सङ्गम के पश्चिम में सरयू तीर पर सर्वकाम फलप्रद विख्यात् सीता कुण्ड है। इस सीता कुण्ड में स्नानोपरान्त मानव समस्त कलुष रहित हो जाता है। स्वयं सीता ने इस कुण्ड का निर्माण किया था। राम का वरदान पाकर यह सीता कुण्ड महाफल निधि रूप हो गया।

तस्मात्सङ्गमतो विप्रपश्चिमेदिक्तटेवस्थितम्।
सीताकुण्डमितिख्यातं सर्वकामफलप्रदम्।।
यत्र स्नात्वा विप्र सर्वपापेः प्रमुच्यते।
सीतया किल तत्कुण्डं स्वयमेव विनिर्मितम्।
रामेण वरदानच्चं महाफल निधि कृतम्।।[1]

एक अन्य स्थान पर भी दुग्धेश्वर के सन्निधान में तमसा के तट पर एक अन्य शुभप्रद परम तीर्थ है। इसका नाम सीता कुण्ड नाम से विख्यात् है।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसा परमं शुभम्।
सीता कुण्डमितिख्यातं श्री दुग्धेश्वर सन्निधौ।।[2]

वर्तमान में सीता कूप अथवा ज्ञान कूप नाम से प्रसिद्ध एक कुआँ जन्मभूमि से कुछ दूर पर स्थित है।

चक्रहरि तीर्थ–

सीता कुण्ड के पश्चिम की ओर सरयू तट पर विभु विष्णु हरि का सर्व अभीष्ट फलदायक चक्रहरि तीर्थ अवस्थित है। ज्ञानी तथा धीर मनुष्य भी इस चक्रहरि की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 6/1–2
2. तदेव, 9/39

विभोर्विष्णुहरेविप्र रम्येपश्चिमदिक्तटे।

देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्ट फलप्रदः।।

तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः।

शक्यो वर्णयितुं धीरैरपि बुद्धिमताम्बरैः।।[1]

वर्तमान समय में यह तीर्थ लुप्तप्राय अवस्था में है। सम्भवतः इसकी स्थिति सरयू में हो सकती है।

हरि स्मृति तीर्थ–

चक्रहरि तीर्थ के पश्चिम में हरि स्मृति तीर्थ है। यहाँ विष्णु का एक प्रसिद्ध आयतन (पवित्र स्थल) है।

ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यं हरिस्मृति।

विष्णोरायतनंख्यातं परमार्थ फलप्रदम्।

यस्य दर्शन मात्रेण सर्व पापैः प्रमुच्यते।।[2]

वर्तमान में यह तीर्थ भी लुप्तप्राय अवस्था में है।

सरयू–घाघरा सङ्गम तथा गुप्तहरि तीर्थ–

यह गोप्रतार घाट के पूर्व की ओर स्थित है। भगवान् विष्णु ने एक बार देवताओं से बताया था कि तुम लोगमेरे गुप्तहरि तीर्थ के मनोरम स्थान पर निवास करो। इस गुप्तहरि के पश्चिम की ओर गोप्रतार तीर्थ से योजन परिमिति स्थान में घर्घरा नामक जल नदी का सरयू नदी के साथ सङ्गम होता है। इस गुप्तहरि का दर्शन करने से सर्व कामना सिद्धि होती है–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 6/10–11
2. तदेव, 6/12

भवन्तोऽपिविधानेन यात्रां कुर्वन्तु सत्तमाः।

अस्माद्गुप्तहरेः स्थानान्निकटे सङ्गमेशुभे।

प्रत्यग्भागे गोप्रताराद्योजनत्रयसंमिते।

घर्घराम्बु तरङ्गिण्या सरयू सङ्गता यतः।

अत्र स्वात्त्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्रप्रयत्नतः।

देवो गुप्तहरिर्नाम सर्व कामार्थसिद्धिःदः।।[1]

अयोध्या से 24 मील पश्चिम सरयू और घाघरा नदियों का सङ्गम है।

गोप्रतार तीर्थ–

गोप्रतार नामक अन्य एक तीर्थ इस सङ्गम के पास विद्यमान है। यह गोप्रतार भी उसी सङ्गम तीर्थ जैसा महापातक नाशक है। मानव यहाँ स्नान–दान द्वारा कभी शोकग्रस्त नहीं होता। गोप्रतार के समान पुण्यतीर्थ अन्यत्र कहीं नहीं है, होगा भी नहीं। हे विद्वान् जैसे वाराणसी में मणिकर्णिका का तीर्थ है, उज्जयिनी में जिस प्रकार महाकाल मन्दिर है, उसी प्रकार से जैसे नैमिषारण्य में चक्रवापी है, उसी प्रकार से अयोध्या में महातीर्थ गोप्रतार तीर्थ है। राम की आज्ञा से साकेतवासी (अयोध्यावासी) मनुष्यों ने गोप्रतार में स्नान करके अतुल स्वर्ग लाभ किया था।

गोप्रतारभिधंतीर्थमपरं वर्ततेऽनध।

सन्निधै सङ्गमस्यैव महापातक नाशनम्।।

यत्र स्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित्।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 6/67–69

गोप्रतारंसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति।।

वाराणस्यां यथा विद्वन्वर्तते मणिकर्णिका।

उज्जयिन्यां यथाविप्र! महाकाल निकेतनं।।

नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमा स्मृता।

अयोध्यायां तथा विप्रगोप्रताराभिधं महत्।।

यत्र रामाज्ञया विद्वन्साकेतनगरी जनाः।

अवापुः स्वर्गमलुवंनिमज्ज्य परमाम्भसि।।[1]

वर्तमान में यह अयोध्या से 9 मील पश्चिम सरयू किनारे फैजाबाद छावनी के पास स्थित है।

क्षीरोदक तीर्थ–

यह क्षीरोदक तीर्थ सीता कुण्ड के वायव्य कोण पर स्थित है। विविध गुण युक्त होने के कारण यह तीर्थ अतीव मनोरम है। यह क्षीरोदक पुण्य समूह का प्रधान स्थान है तथा अखिल दुःख नाशक भी है। पूर्वकाल में राजा दशरथ ने आदरपूर्वक पुत्र कामनार्थ यहाँ पुत्रेष्ठि यज्ञ किया था। आनन्दित मन वाले राजा दशरथ ने प्रचुर दक्षिणा वाला पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पन्न किया था, उस समय यज्ञावसान काल में हुताशन ने मूर्तिमान् होकर उनको दर्शन दिया था। अग्नि ने उनको हाथ में स्वर्णपात्र के साथ दर्शन दिया था। यह पात्र उत्तम हविष्य से भरा हुआ था। इसमें उत्तम वैष्णव तेज निहित था। राजा ने उस हवि को 4 भागों में विभक्त किया तथा अपनी तीनों पत्नियों को विभाजित करके दे दिया। यहाँ परम दुर्लभ उस क्षीर की प्राप्ति होने के कारण यह तीर्थ क्षीरोदक कहलाया–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 6/112–116

तीर्थ मन्र्यप्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम्।

सीताकुण्डच्च वायव्ये वर्तते गुण सुन्दरम्,

पुण्यैक निचय स्थानं सर्वदुःख विनाशनम्।।

पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्ठिं नाम नामतः।

चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थ यत्र चाऽऽदरात्।।

क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरि दक्षिणम्।

यज्ञान्ते कृतुभुक्तत्रमूर्तिमान्समं द्रश्यत्।।

हस्तेकृत्वा हेमपात्रं हविः पूर्णमनुत्तम्।

तास्मिन्हविषिसङ्कीर्णं वैष्णवंतेज उत्तमम्।।

चतुर्विध विभज्यैव पत्नीभ्योदत्तवानृपः।

यत्र तत्क्षीर सम्प्राप्तिर्जाता परम दुर्लभा।

क्षीरोदकमितिख्यातिं तत्स्थानं पापनाशनम्।।

उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमञ्च फलप्रदम्।[1]

वर्तमान जिला मुख्यालय फैजाबाद से 11 किलोमीटर उत्तर दिशा में क्षीरेश्वर महादेव नाम से एक स्थान स्थित है।

बृहस्पति कुण्ड–

क्षीरोदक तीर्थ के नैर्ऋत्य कोण की ओर विख्यात बृहस्पति कुण्ड विद्यमान है। यह कुण्ड उदण्ड चण्ड द्वारा युक्त है। यह कुण्ड सर्वपाप नाशक तथा पवित्र अमृत से तरङ्गायित है। साक्षात् गुरु बृहस्पति यहाँ रहते हैं। उदारमति बृहस्पति ने यहाँ यथाविधि यज्ञ किया था।

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/1–5

तस्मात्क्षीरोदक स्थानान्नैर्ऋते दिग्दलेश्रितम्।

ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम्।।

सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृत तरङ्गितम्।

यत्र साक्षात् गुरुर्निवासं किल निर्ममे।।

यज्ञञ्चविधिवच्चक्रे बृहस्पतिरुदारधीः।

नाना मुनिगणैयुक्तं रम्यं बहुफलप्रदम्।

सुपर्णच्छाय सम्पन्नं कुण्डं तत्पापि दुर्लभम्।।[1]

वर्तमान में यह तीर्थ लुप्तप्राय अवसथा में है।

रुक्मिणी कुण्ड–

बृहस्पति कुण्ड के दक्षिण में रुक्मिणी कुण्ड स्थित है। यह उत्तम कुण्ड कृष्ण वल्लभा देवी रुक्मिणी द्वारा निर्मित है। इस कुण्ड के जल में स्वयं विष्णु का ही निवास है। उन विष्णु ने प्रेम के कारण रुक्मिणी को वर देकर इस स्थान का गौरव बढ़ाया।

तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठ रुक्मिणीकुण्डमुत्तमम्।

चकार यत्स्वयं देवी रुक्मिणी कृष्णवल्लभा।।

तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासं सलिले तदा।

वर प्रदानात्स्नेहेनभार्यायाः प्रगुणी कृतम्।।[2]

वर्तमान में इस तीर्थ की स्थिति स्पष्ट नहीं है।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/9–11
2. तदेव, 7/20–21

धन–यक्ष तीर्थ–

रुक्मिणी कुण्ड के वायव्य कोण में धन–यक्ष तीर्थ स्थित है। राजर्षि हरिश्चन्द्र की विपुल धन–सम्पदा यहीं रक्षित थी। रक्षार्थ एक यक्ष सदा के लिए नियुक्त था। जब पूर्वकाल में ऋषि विश्वामित्र ने राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र को पराजित करके राजा की चतुरङ्गिणी सेना के साथ उनका समस्त राज्य ग्रहण कर लिया, तब मुनि ने इस अतुल उत्तम धन–सम्पदा के रक्षार्थ इस यक्ष को नियुक्त किया था। तब से यह यक्ष उस धन–सम्पदा की रक्षा करता आ रहा है। यहाँ पर प्रमन्थुर नामक विख्यात् मन्दिर है। यह मन्दिर निरन्तर प्रमोद तथा आनन्द से भरा रहता है।

रुक्मिणीकुण्ड वायव्य दिग्दले संस्मृतं शुभम्।

हरिश्चन्द्रस्यराजर्षेरासीतत्र धनं महत्।।

तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्ष उच्चकैः।

विश्वामित्रो मुनिः पूर्व यदा चैव पराजयत्।।

हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरम्परम्।

राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम्।।

तट्टशेऽदाच्च स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम्।

तद्वक्षायैप्रयत्नेनयक्षं स्थापितवानसै।।

प्रमुन्थुर इति ख्यातं प्रमोदानन्द मन्दिरम्।

रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः।।[1]

वर्तमान में यह तीर्थ लुप्तप्राय है। यद्यपि इसका वर्णन श्री अयोध्या का प्राचीन इतिहास एवं अयोध्या गाइड के पृष्ठ 56 पर आता है।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/33–37

वसिष्ठ कुण्ड–

धन–यक्ष तीर्थ के उत्तर दिक् भाग में वसिष्ठ कुण्ड विराजमान है। यह कुण्ड विख्यात् है तथा सर्वपाप हारी है। उत्तम तपोनिधि ऋषि वसिष्ठ सतत् इस कुण्ड में निवास करते हैं। निर्मल व्रत वाली अरुन्धती भी यहाँ स्वामी के सन्निधान में रहती है–

धनयक्षादुत्तरस्मिन्दिग्भागे संस्थितंद्विज।

वसिष्ठकुण्डंविख्यातं सर्वपापापहं सदा।।

वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासः सुतपोनिधेः।

अरुन्धती सदा यस्य वर्तते निर्मलव्रता।।[1]

इस तीर्थ को परिवर्तित कजियाना नाम से भी जाना जाता है। वसिष्ठ कुण्ड पर गुरु पर्व के अवसर पर सुन्दर मेला लगता है।

सागर कुण्ड–

वसिष्ठ कुण्ड के पश्चिम में विख्यात् सागर कुण्ड है। यह सर्वकामार्थ सिद्धिप्रद है।

वसिष्ठ कुण्डाद् विप्रेन्द्रः प्रत्यदिग्दलमाश्रितम्।

विख्यातं सागरं कुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम्।।[2]

यह तीर्थ भी वर्तमान में लुप्तप्राय अवस्था में है। इसको परिवर्तित इटउबा नामक स्थान के नाम से जाना जाता है।

योगिनी कुण्ड–

सागर कुण्ड के नैर्ऋत्य कोण में उत्तम योगिनी कुण्ड है। इस योगिनी कुण्ड के जल में चौंसठ योगिनी विद्यमान हैं। योगिनी गण मनुष्यों को विशेषतः स्त्रियों को सर्वार्थ सिद्धि प्रदान करती है–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/69–70
2. तदेव, 7/77

सागरान्नैऋते भागे योगिनीकुण्डमुत्तमम्।

यत्राऽऽसते चतुःषष्टियोगिन्यो जलं संस्थिताः।।

सर्वार्थसिद्धिदाः पुंसां स्त्रीणञ्चैव विशेषतः।

परसिद्धिप्रदाः सर्वाः सर्वकामफलप्रदाः।।[1]

यह तीर्थ भी वर्तमान में लुप्तप्राय अवस्था में है।

उर्वशी कुण्ड–

रैभ्य मुनि की तपस्या में बाधा डालने के कारण उर्वशी को शाप दिया तथा पुनः उसके विनती करने पर अयोध्या में स्नान करने से मुक्ति का उपाय बताया वह स्थान उर्वशी कुण्ड नाम से विख्यात् है–

अयोध्याया सास्ति तीर्थं पावनं परमं महत्।

तत्र स्नानं कुरुष्वाऽद्य सौन्दर्यम्परमाप्नुहि।

त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तोयं यास्यति तद्ध्रुवम्।।[2]

वर्तमान में इस तीर्थ की भी स्थिति लुप्तप्राय अवस्था में है।

घोषार्क कुण्ड–

उर्वर्शी कुण्ड के दक्षिण में परम घोषार्क कुण्ड विद्यमान् है। इस कुण्ड में स्नान करने से सर्वपाप समूह नष्ट हो जाता है। यहाँ स्नान–दान करने से मानव सूर्यलोक में पूजित होता है। इस घोषार्क कुण्ड के समान अन्य तीर्थ कहीं नहीं है। व्रणी, कुष्ठी, दरिद्र तथा दुःखाक्रान्त मानव इस तीर्थ में यथा–विधि स्नान करके सर्वकामना लाभ करते हैं–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/81
2. तदेव, 7/102–103

घोषार्क कुण्डं परममुर्वशीकुण्ड दक्षिणे।

वर्तते मुनिशार्दूलः सर्वपापापहं सदा।।

यत्र स्नानेन दानेन सूर्यल्लोके महीयते।

एतत्तीर्थस्य सद्रशं नापरं विद्यते क्वचित्।।

व्रणीकुष्ठीदरिद्री वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः।

करोति विधिवत्स्नानं सर्वान्कामान्वात्नुयात्।।[1]

वर्तमान में सूर्यकुण्ड नाम से विख्यात् यह तीर्थ अयोध्या से 3 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है।

रति कुण्ड तथा कुसुमायुध कुण्ड–

घोषर्क तीर्थ के पश्चिमोत्तर दिक् भाग में सतत् विख्यात् सर्वपापहारी रति कुण्ड विद्यमान है। इसमें स्नान करके मनुष्य परम कान्तिमान हो जाता है। रति कुण्ड के पश्चिम में कुसुमायुध नामक प्रख्यात् कुण्ड है। यह कुसुमायुध कुण्ड सर्वसिद्धिप्रद है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। हे मुनिवर मनुष्य इस कुण्ड में स्नान–दान करके सर्वत्र सुख लाभ करता है। इसमें सन्देह नहीं है। हे विप्र जो मानव रति तथा कुसुमायुध इन दोनों कुण्ड में स्नान करता है वह परम सुख प्राप्त करता है।

घोषर्कतीर्थाद्विप्रर्षे पश्चिमेदिक्तटे स्थितम्।

रतिकुण्डमितिख्यातं सर्वपाप हरं सदा।।

यत्र स्नानेनदानेनपरांकान्तिमवाप्नुयात्।

तत्पश्चिमदिग्भागे कुसुमायुध नामकम्।।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/108–110

कुण्ड प्रशिद्धमतुलं सर्वकामार्थशिद्धये।

यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्प सदृशाकृतिम्।।

लभते न विधानेन मुनेः नास्त्यत्र संशयः।

रति कुण्डे तथा विप्रः कुसुमायुध कुण्डके।

श्रद्धया कुरुते स्नानं ससौख्यपरमो भवेत्।।[1]

वर्तमन में यह तीर्थ भी लुप्तप्राय अवस्था में है।

मन्त्रेश्वर कुण्ड–

कुसुमायुध कुण्ड के पश्चिम की ओर विख्यात् मन्त्रेश्वर कुण्ड स्थित है। यह मन्त्रेश्वर कुण्ड भूमण्डल में दुर्लभ है। जो मानव इस तीर्थ में स्नान करता है तथा विभु महेश्वर का दर्शन करता है, शतकोटि कल्पों में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता। पूर्व काल में अमल कर्म वाले नरेश्वर रामचन्द्र देव कार्य सम्पन्न करके काल के साथ यहीं मन्त्रणा कर रहे थे। जितेन्द्रिय राम ने स्वर्ग जाने की कामना से इस मन्त्रेश्वर तीर्थ में स्नान किया, यहाँ मन्त्रेश्वर नामक विश्रुतलिङ्ग विराजित है–

कुसुमायुधकुण्डस्तु प्रतीच्यां दिशि संस्थितम्।

मन्त्रेश्वर इति ख्यातं तत्स्थानं भुवि दुर्लभम्।।

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वर विभुम्।

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।।

पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत।

कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः।।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 8/1–4

स्वर्गं प्रति प्रमाणाय यत्र स्नातोजितेन्द्रियः।

तत्रैव स्थापितं लिङ्गं मन्त्रेश्वर इति श्रुतम्।।[1]

वर्तमन में यह तीर्थ भी लुप्तप्राय अवस्था में है।

शीतला देवी–

मन्त्रेश्वर के उत्तर दिक् भाग में शीतला देवी विद्यमान हैं। विद्वान् मानव शीतला माता की सम्यक् पूजा द्वारा समस्त कलुष से दूर हो जाता है। सभी काल में शीतला की पूजा की जा सकती है परन्तु सोमवार को विशेषतः सर्वार्थ सिद्धि प्रदायक है–

एवं कृते न सन्देहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।

तत्रैवोत्तर भागे तु शीतला वर्ततेऽनघ।।

तां सम्पूज्य नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते।

सर्वदा पूजनं तस्यां सोमवारे विशेषतः।।

कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये।[2]

इस तीर्थ की वर्तमान स्थिति सन्देहास्पद है। सम्भवतः शीतला देवी ही बड़ी देवकाली के रूप में स्थित हैं।

बन्दी देवी–

शीतला के उत्तर में शीतला के पास में ही विश्रुता बन्द देवी विद्यमान है। बन्दी देवी के स्मरण से ही निगडादि बन्ध भय दूर हो जाता है। जो राजकोष के कारण निगड़शृङ्खलादि से बद्ध हो जाते हैं, बन्दी देवी के स्मरण से वे मुक्त हो जाते हैं–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 8/13–16
2. तदेव, 8/21–22

तदुत्तरे तत्रैव देवी बन्दीति विश्रुता।

यस्याः स्मरण मात्रेण निगडादिभयं नहि।।

राज्ञा क्रुद्धेन वे बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः।

बन्दीं संस्मृत्यदेवीं तु मुक्ताः स्युस्तत्क्षणाद्धिते।।[1]

चौरासी कोस परिक्रमा मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है।

चुडकी देवी–

बन्दी देवी के उत्तर में उनके समीप चुडकी देवी स्थित हैं। ये परमा सिद्धि रूपा हैं, मनुष्य को इनके स्मरण से ही प्रसिद्ध विषयों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। किसी प्रकार का भय उपस्थित होने पर तथा संदिग्ध कार्यों में इनके स्मरण से सर्वसिद्धि लाभ होता है–

तदुत्तरास्मिंस्तत्रैव चुडकी भुवि कीर्तिता।

वर्तते परमासिद्धिरूपिणी स्मरणान्नृणाम्।

सु संदिग्धेषु कार्येषु भये च समुपस्थिते।

यस्याः स्मरणतो नृणां सर्वसिद्धिः प्रजायते।।[2]

वर्तमान में इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है।

महारत्न तीर्थ–

चुडकी देवी के पूर्व दिक् भाग में सर्वतीर्थोत्तम उत्तम तीर्थ विख्यात् महारत्न विद्यमान है। इस महारत्न तीर्थ में स्नान–दान द्विजगण की पूजा करने से सर्व कार्य सिद्ध हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 8/24–25
2. तदेव, 8/29–30

के दिन महारत्न तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा सुसमाहित होती है। इस मुख्य यात्रा का नाम है विश्रुता महारत्ना है–

ततः पूर्व दिशा भागे वर्तते तीर्थमुत्तमम।

महारत्न इतिख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।।

यत्र स्नाने दानेन पूजयाचद्विजन्मनाम्।

सर्व कामार्थसिद्धिःस्यान्नात्रकार्य विचारणा।।

भाद्रे कृष्ण चतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।

यात्राऽऽस्तेकिलमुख्याऽस्य महारत्ना इतिश्रुता।।[1]

वर्तमन में यह तीर्थ लुप्तप्राय अवस्था में है।

दुर्भर तथा सुकृतोदर सरोवर–

महारत्न तीर्थ के नैर्ऋत दिक् भाग में दुर्भर नामक शुभ सरोवर विद्यमान है। यहाँ सुकृतोदर महाभर नामक एक अन्य सरोवर भी है। यहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्ग पद प्राप्त करते हैं–

ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे दुर्भराख्यं सरः शुभम्।

वर्तते सुकृतोदारं महाभरसरस्तथा।।

तत्र स्नानाद्वाप्नोति सदा स्वर्गपदं नरः।

धनं बहुविधदेयंवासासि विविधानि च।।[2]

वर्तमन में यह तीर्थ लुप्तप्राय अवस्था में है।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 8/33–35
2. तदेव, 8/38–39

महाविद्या तीर्थ–

दुर्भर से ईशान कोण में महाविद्या नामक तीर्थ विद्यमान है। इस महाविद्या तीर्थ के दर्शन मात्र से मनुष्यों को सिद्धियाँ करतलगत हो जाती हैं। महाविद्या तीर्थ के पुरोभाग में एक सरोवर विद्यमान है जो मनुष्य पहले इस सरोवर में स्नान करके श्रद्धा–भक्ति युक्त होकर इस महाविद्या तीर्थ का दर्शन करता है उसे परम गति प्राप्त होती है–

ईशाने दुर्भर स्थानान्महाविद्याभिधं महत्।

तस्य दर्शनतो नृणां सिद्धयःस्युकरे स्थिताः।।

तदग्रे सरसिस्नात्त्वा महाविद्यां तु यो नरः।

पश्यति श्रद्धया भक्त्या स याति परमांगतिम्।।[1]

वर्तमन में इस तीर्थ की स्थिति स्पष्ट नहीं है।

दुग्धेश्वर–

जब श्री रामचन्द्र जी रावण वध के पश्चात् अयोध्या वापस आये तो भरत आदि राम दर्शनाभिलाषा से यहाँ आये उसी समय कामधेनु भी प्रभु की दर्शन अभिलाषा से यहाँ आयी थी।

स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

श्रुणु राम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा।

समागता तव स्नेहात्प्रस्रवन्ती स्तनात्पयः।।

दुग्ध मध्ये समुद्भूतो रुद्रस्त्वां द्रष्टुमागतः।

निष्पन्नकार्य देवानां निर्जितारतिमुत्तमम्।।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 8/49–50

इमं सम्पूज्य क्षिप्रमेतत्कुण्डस्य सन्निधौ।

शीघ्रं तवमपि यत्नेनपूजयेमंशिवं शुभम्।

दुग्धेश्वरमिति ख्यातं क्षीर कुण्डे पवित्रकम्।।[1]

अर्थात् वशिष्ठ कहते हैं– हे महाबाहु राम! सुनिये ये ही कल्याणप्रद कामधेनु हैं, तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण कामधेनु अपने स्तनों से दुग्ध क्षरण करते–करते देवलोक से यहाँ तक आयी है। आपके दर्शनों की कामना के कारण इनके दुग्ध क्षरित स्तनों से रुद्रदेव उद्भूत हो गये हैं। आपने शत्रुकुल का ध्वंस करके देवगण का उत्तम कार्य किया है। अब इस कुण्ड में शीघ्रतापूर्वक इन शुभ प्रदायक शिव की पूजा करिए। इस परम पवित्र क्षीर कुण्ड से समुद्भूत रुद्र अब दुग्धेश्वर नाम द्वारा विख्यात् होंगे।

वर्तमान दुग्धेश्वर महादेव के नाम से विख्यात् एक स्थान फैजाबाद मुख्यालय से 40 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है।

सुग्रीव चरित तीर्थ–

सीता कुण्ड के पूर्व में तपोनिधि सुग्रीव का सुग्रीव चरित नामक महातीर्थ है। तपोनिधि सुग्रीव इस शुभावह तीर्थ में निवास करते हैं। जो यहाँ स्नान तथा दान करके यत्नतः श्रीराम की पूजा करता है, उसी दिन उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं–

तत्र पूर्वदिशाभागे सुग्रीवचरितं महत्।

तीर्थ तपोनिधेस्त्र वर्तते सन्निधौ शुभम्।।

यत्र स्नात्वा च दत्वा च रामं सम्पूज्य यत्नतः।

तस्मिन्नेवदिने तत्र सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।[2]

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 8/66–68
2. तदेव, 8/75–76

वर्तमान में यह तीर्थ लुप्तप्राय अवस्था में है। सुग्रीव टीला नाम से एक स्थान हनुमानगढ़ी से दक्षिण दिशा में स्थित है।

हनुमत् कुण्ड तथा विभीषण कुण्ड–

सुग्रीव तीर्थ के पश्चिम की ओर हनुमत् कुण्ड स्थित है तथा हनुमत् कुण्ड के पश्चिम कीओर शुभप्रद विभीषण कुण्ड है। इन दोनों कुण्डों पर यथाविधि स्नान–दान रामपूजन करने वाला मानव उसी दिन समस्त कामना लाभ कर लेता है। यह अयोध्या समस्त धर्म की निधि स्वरूप है–

तत्प्रयग्दिशिवैस्थानं हनुमत्कुण्डमित्यपि।

तस्यपश्चिमतोविप्रः विभीषणसरः शुभम्।।

तयोः स्नानेन दानेन राम सम्पूजनेन च।

सर्वान्कामानवाप्नोति तस्मिन्नेव विधानतः।

इयं सा परमा मेध्याऽयोध्या धर्मनिधिः स्मृता।।[1]

वर्तमान में यह तीर्थ लुप्तप्राय अवस्था में है।

जटा कुण्ड–

भरत कुण्ड के पश्चिम भाग में अत्युत्तम जटा कुण्ड है। यहाँ राम आदि ने अपनी–अपनी जटाओं का त्याग किया था इसीलिए यह सर्व तीर्थोत्तम तीर्थ जटा कुण्ड कहा जाता है। यहाँ जटा कुण्ड में स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओं का लाभ होता है–

तत्पश्चिमदिशाभागे जटा कुण्डमनुत्तमम्।

यत्र रामादिभिः सर्वैर्जटाः परिहृताः निजाः।।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 8/77–78

जटा कुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।

यत्र स्नाने दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।[1]

चौरासी कोसी परिक्रमा मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है।

गया कुण्ड–

जटा कुण्ड की आग्नेय दिशा में गया कुण्ड है। यह महातीर्थ प्रसिद्ध है तथा सभी अभीष्ट फल देने वाला है। जितेन्द्रिय द्विजगण इस गया कुण्ड में स्नान, यथाशक्ति दान तथा पितरों के श्राद्ध द्वारा कारण वस्तु की प्राप्ति करते हैं–

जटाकुण्डत आग्नेयदिग्दले संश्रितं महत्।

गयाकूपमितिख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम्।।

यत्र स्नात्त्वा च दत्त्वा च यथाशक्त्या जितेन्द्रियः।

सर्वकाममवाप्नोति श्राद्धं कृत्वाद्विजोत्तमः।।[2]

वर्तमान में इस तीर्थ की स्थिति स्पष्ट नहीं है।

पिशाच मोचन तीर्थ–

गया कुण्ड के पूर्व दिक् भाग में अनेक फलप्रद सर्वोत्तम पिशाच मोचन तीर्थ है, यहाँ स्नान–दान द्वारा मानव कदापि पिशाच नहीं होता–

तत्र पूर्व दिशाभागेतीर्थ सर्वोत्तमोत्तमम्।

पिशाच मोचनं नाम विद्यते च फलप्रदम्।।

तत्र स्नात्वा च दत्वा च पिशाचोनैव जायते।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 9/54–55
2. तदेव, 9/1–2

तत्र स्नानं तथा दानं श्राद्धञ्चैव विशेषतः।

कर्त्तव्यञ्च प्रत्यनेन नरैः श्रद्धा समन्वितैः।।[1]

चौरासी कोसी परिक्रमा मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है।

मानस तीर्थ–

पिशाच मोचन के सन्निधान में पूर्व दिक् में मानस नामक तीर्थ है। यह मानस तीर्थ पुण्य स्थलों में श्रेष्ठ है, यहाँ विशेषतः स्नान करना चाहिए–

तत्सन्निधौ पूर्व भागे मानसं नाम नामतः।

तीर्थं पुण्य निवासाग्रं स्नातत्यञ्च विशेषतः।।[2]

चौरासी कोसी परिक्रमा मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है।

तमसा नदी–

मानस के दक्षिण ओर सुकृती लोगों की एक मात्र क्रीड़ा भूमि है। तमसा नामक महापाप नाशक नदी भी है। यहाँ स्नान तथा दान सर्वपाप हरण करने वाला है। इसका तट रम्य एवं सर्वफलप्रद है। इस नदी का वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी आया है–

तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वर्तते सुकृतैकभूः।

तमसा नाम तटिनी महापातक नाशिनी।।

यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापहरं सदा।

यस्यास्तटे तथा रम्ये सर्वदाफलदायिके।।[3]

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 9/12–13
2. तदेव, 9/15
3. तदेव, 9/19–20

वर्तमान अयोध्या के मवई कस्बा के निकट लेखनीपुर गाँव में इसकी स्थिति है। 84 कोसी परिक्रमा का यह मुख्य पड़ाव स्थान है।

माण्डव्य आश्रम–

तमसा नदी के तट पर अनेक मुनियों का निवास स्थान है। माण्डव्य मुनि का आश्रम इसी नदी के तट पर है–

नानाविधानिस्थानानिमुनीनां भावितात्मनाम्।

माण्डव्यस्य मुने स्थानं वर्तते पापनाशनम्।।[1]

वर्तमान में चौरासी कोसी परिक्रमा मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है।

महर्षि गौतम तथा च्यवनमुनि आश्रम–

माण्डव्य आश्रम के पूर्व की ओर महर्षि गौतम का महापवित्र आश्रम तथा उसके पूर्व में ऋषि च्यवन का आश्रम विद्यमान है–

तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत्।

तत्पूर्वं च्यवनस्यर्षेः पराशर मुनेरिदम्।।

प्रथमं ते मुनिश्रेष्ठ! पितुः किल तपो निधेः।।[2]

वर्तमान में चौरासी कोसी परिक्रमा मार्ग पर यह तीर्थ स्थित है।

भैरव तीर्थ–

सीता कुण्ड के दक्षिण की ओर भैरव नामक स्वनाम धन्य तीर्थ है। इसके दर्शन से व्यक्ति सर्वकलुष रहित हो जाता है–

तस्माद्दक्षिणदिग्भागे भैरवो नाम नामतः।

यं द्रष्ट्वा सर्वपापेभ्योमुच्यते नात्र संशयः।।[3]

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 9/21
2. तदेव, 9/33
3. तदेव, 9/41

वर्तमान में इस स्थान की स्थिति स्पष्ट नहीं है।

भरत कुण्ड–

भैरव तीर्थ के उत्तर में भरत कुण्ड है। मनुष्य निःसंदिग्धरूपेण यहाँ स्नान द्वारा पाप रहित होता है। यहाँ किया स्नान–दानादि अक्षय हो जाता है। यहाँ अनेक अन्न तथा विविध वस्त्र दान तथा वस्त्रालङ्कार द्वारा देवगण की अर्चना करनी चाहिए। पूर्वकाल में निर्मलात्मा जितेन्द्रिय रघुवंशोत्पन्न भरत ने राम का हृदय में ध्यान करते हुए नन्दी ग्राम में निवास किया था। वे यहाँ रहकर समस्त प्रजा की रक्षा करके पृथ्वी मण्डल में प्रिय हो गये थे। उस समय उन जितेन्द्रिय राजा भरत ने इस महाकुण्ड का निर्माण करके वहाँ राम मूर्ति स्थापित किया था–

एतस्मिन्नुत्तरेभागे रम्यं भरत कुण्डकम्।

यत्र स्नात्त्वा नरः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।।

तत्र स्नानं तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत्।

अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधान्यपि।।

यत्नतो देवताः पूज्या वस्त्रादिभिरलङ्कृतैः।

नन्दिग्रामेवसन्पूर्वं भरतो रघुवंशजः।।

रामचन्द्रं हृदिध्यायन्निर्मलात्मा जितेन्द्रियः।

ततः स्थित्त्वा प्रजाः सर्वाररक्षक्षिति वल्लभः।।

ततः चत्रे महत्कुण्डं भरतो नाम भूपतिः।

राममूर्तिं च संस्थाप्यचचारविजितेन्द्रियः।।[1]

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 9/46–50

वर्तमान अयोध्या से 16 मील दक्षिण में यह स्थान स्थित है।

मत्त गजेन्द्र–

भरत कुण्ड के उत्तर में मत्त गजेन्द्र वीर का शुभ सूचक स्थान विद्यमान है। इस स्थान के समक्ष एक सरोवर है। इस सरोवर में स्थिर चित्त से स्नान करने वाले तथा वहाँ निवास करके मानव को पूर्णसिद्धि का लाभ हो जाता है–

एतस्मादुत्तरेविद्वन्वीरस्य शुभ सूचकम्।

स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतव्रता।।

तदग्रे सरसिस्नात्त्वावसेत्तत्र सुनिश्चितम्।

पूर्णां सिद्धिमवाप्नोतियामवाप्यनशोचति।।[1]

वर्तमान मातगेडके नाम से यह स्थान प्रसिद्ध है।

सुरसा राक्षसी–

मत्त गजेन्द्र के दक्षिण भाग में सिद्धिप्रदा विष्णु भक्ता सुरसा नाम्नी राक्षसी सतत् विराजिता है। मानव इस सुरसा राक्षसी की भक्ति युक्त पूजा करके समस्त कामना प्राप्त करते हैं। अक्लिष्ट कर्मा राम ने लङ्का से सुरसा को लाकर अयोध्या रक्षार्थ स्थापित किया था–

एतस्माद्दक्षिणभागे सुरसा नाम राक्षसी।

विष्णु भक्ता सदाविप्रवर्तते सिद्धिदायिका।।

तां सम्पूज्य नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्।

लङ्का स्थानादिहानीता रामेणोत्कृष्ट कर्मणा।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/2–3 (नोट– मत्त गजेन्द्र का वर्णन रामकोट के दुर्ग रक्षक के रूप में अयोध्या का इतिहास पृष्ठ 76 पर वर्णित है।)

अयोध्यायां स्थापिता साररक्षार्थं नियतव्रतैः।।[1]

वर्तमान में इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है।

पिण्डारक–

सुरसा के पश्चिम दिक् भाग में उत्तम पौरुष युक्त परमवीर पिण्डारक स्थित है। गन्ध–पुष्प–अक्षतादि से प्रयत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिए–

एतत्पश्चिमदिग्भागे वर्तते परमो मुने।

पिण्डारक इति ख्यातो वीरः परमपौरुषः।।[2]

वर्तमान में इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है।

विघ्नेश–

पिण्डारक के पश्चिम भाग में विघ्नेश की पूजा करनी चाहिए। उनके दर्शन से मनुष्य को विघ्न का लेश भी नहीं रह जाता। इसीलिए सर्वकाम फलप्रद विघ्नेश की पूजा करें–

तत्पश्चिम दिशा भागे विघ्नेश किल पूजयेत्।

यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशोनविद्यते।

तस्माद्विघ्नेश्वर पूज्यः सर्वकामफलप्रदः।।[3]

वर्तमान में यह स्थान स्पष्ट नहीं है।

रामजन्म भूमि–

विघ्नेश के ईशान कोण में रामजन्म हुआ था। इसे जन्म स्थान कहते हैं जो मोक्ष आदि फल देता है। विघ्नेश के पूर्व भाग में तथा वसिष्ठ के उत्तर में तथा लोमश के पश्चिम में जन्म स्थान है–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/7–9
2. तदेव, 10/13
3. तदेव, 10/17

तस्मात्स्थानात् ऐशाने रामजन्म प्रवर्तते।

जन्मस्थानमिदम्प्रोक्तं मोक्षादिफल साधनम्।।

विघ्नेश्वरात्पूर्वभागे वसिष्ठादुत्तरेत्तथा।

लोमशात्पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम्।।

जैसा कि स्कन्द पुराण में भी वर्णित है कि यह भगवान् श्रीराम की जन्म स्थली है। यह स्थान प्राचीनकाल से लेकर सदैव प्रसिद्ध रहा है। त्रेतायुग में महाराज कुश ने इस स्थान का जीर्णोद्धार कराया था पश्चात् अनेक राजागणों का वर्णन इतिहास में प्राप्त होता है। परन्तु विक्रमादित्य का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने रामजन्म भूमि मन्दिर का पुनर्निमाण करते हुए यहाँ के वैभव में श्रीवृद्धि की थी। सन् 1031 के बाद से मुस्लिम आक्रान्ताओं ने अयोध्या पर अपनी कुदृष्टि डालनी प्रारम्भ की तथा मुगल सम्राट् बाबर के आदेश पर मीरबांकी ने मन्दिर नष्ट करके बाबरी मस्जिद का निर्माण करा दिया। तथापि रामजन्म भूमि के प्रति सनातन धर्मियों में अगाथ श्रद्धा बनी रही। अनेक त्याग बलिदान देने पड़े भगवान् श्रीराम को तम्बू से बने स्थान पर रहना पड़ा तथापि भक्तगणों के लिए यह स्थान सदैव दर्शनीय पूजनीय रहा है।

पौराणिक वाङ्मय में वर्णित अयोध्या के प्राचीन तीर्थ स्थलों में कतिपय लुप्त प्राय हो गए तथापि कतिपय प्रमुख तीर्थ स्थल जो वर्तमान अवस्थित है तथा दर्शनीय है उनका वर्णन आगे किया जा रहा है–

हनुमान गढ़ी–

यह अति प्राचीन मन्दिर है, जिसका जीर्णोद्धार महाराज विक्रमादित्य द्वारा किया गया था। प्राचीन मन्दिर नष्ट होने पर महाराजा टिकैत राय की अध्यक्षता में यह मन्दिर नवाब मंसूर अली खां के शासनकाल में बनाया गया। एक बार मंसूर अली खां अत्यन्त अस्वस्थ थे तब बाबा अभय रामदास जी त्यागी नामक

एक महात्मा द्वारा हनुमान् जी की कृपा से स्वस्थ हो गए थे। तब उन्होंने हनुमान् गढ़ी बनाने की अनुमति तथा सहायता प्रदान की थी। इसमें भूतल से लेकर ऊपर गर्भगृह तक 82 सीढ़ियाँ हैं।

कनक भवन–

यह महल महारानी कैकेयी का था तथा सम्पूर्ण महल स्वर्ण निर्मित था जिसे कैकेयी जी ने अपनी पुत्रवधू सीता जी को मुँह दिखायी में उपहार स्वरूप प्रदान किया था। इसका जीर्णोद्धार महाराज विक्रमादित्य ने कराया तथा वर्तमान् में जो मन्दिर है उसका निर्माण टीकमगढ़ की महारानी वृषभानु कुँवर ने करवाया था, जिसकी देखरेख श्री वृषभान धर्मसेतु प्राइवेट ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है जिसमें वंशवृक्ष ओरक्षा राज्य टीकमगढ़ का वर्णन तथा द्वितीय शिलालेख में कनक भवन का इतिहास वर्णित है। इसमें वर्णित है कि द्वापर के आरम्भ में महाराज कुश, मध्य द्वापर में महाराज ऋषभ ने इसका जीर्णोद्धार कराया, भगवान् श्रीकृष्ण ने यहाँ की यात्रा की थी। महाराज विक्रमादित्य ने युधिष्ठिर सम्वत् 2431 में इसका जीर्णोद्धार कराया, महाराज समुद्रगुप्त ने विक्रम सम्वत् 444 में इसका जीर्णोद्धार किया तथा सैय्यद सालार गाजी मसऊद के विनष्ट किए उसके भग्नावशिष्ट रूप का भारत धर्म रत्नाकर योगिराज श्री सवाई महेन्द्र महाराज प्रताप सिंह जू देव ओड़छाधीश की प्रथमा महिषी श्री महारानी वृषभानु कुँवरि जू देवी (श्री रामप्रिया सहचरी) ने सम्वत् 1948 में नवनिर्माण कराया।

नागेश्वर नाथ मन्दिर–

यह अति प्राचीन मन्दिर वर्तमान् में नया घाट के निकट स्थित है। मन्दिर के मुख्य द्वार के पास एक शिलालेख है जिसमें इसका इतिहास वर्णित है कि सरयू के किनारे स्वर्ग द्वार क्षेत्र में स्थित इस भव्य मन्दिर की स्थापना त्रेतायुग में भगवान् श्रीराम के कनिष्ठ चिरंजीव कुश जी ने की थी। महाराजा

श्रीकुश की एक बार श्री अयोध्यापुरी के दर्शन एवं सरयू स्नान की इच्छा जाग्रत हुई, इसी विचार से वे श्री अवध आये एवं स्वर्ग द्वार में सरयू स्नान करने लगे। स्नान करते समय उनका कङ्कण श्री सरयू धारा में गिर गया जिसे कुमुद नाग की कन्या कुमुदिनी ने ले लिया, कङ्कण अप्राप्त होने पर एवं नाग कन्या ने ही लिया है, यह ज्ञात होने पर क्रोधावेश में श्रीकुश जी ने नाग कन्या हेतु शर–सन्धान किया, इधर उसके पिता श्रीकुमुद ने प्रार्थना कर शिवशङ्कर से अभयदान माँगा। श्री भोलेनाथ प्रसन्न होकर आये एवं कुश जी से कहा इसे अभय कर दो। भोलेनाथ को देखते ही श्रीकुश जी महाराज सामान्य हो गये, नागराज को अभयदान देकर शिवार्चन किया और कहा कि आप नाग पर प्रसन्न होकर आये इसलिए आपकी प्रसिद्धि श्री नागेश्वर नाम से हो। 108 ज्योतिर्लिङ्गों में मान्यता प्राप्त श्रीविग्रह वही है, गर्भगृह में नागों से वेष्टित गोलाकार अर्घे पर विराजमान् श्री शङ्कर भगवान् अपने भक्तों को सुलभ दर्शन दे रहे हैं एवं भक्तों का कल्याण कर रहे हैं।

कालेराम मन्दिर–

यह मन्दिर भी नया घाट पर नागेश्वर नाथ जी से सटा हुआ है। इस मन्दिर में विक्रमादित्य कालीन मूर्तियाँ स्थापित हैं जो पहले रामजन्म भूमि में थी। श्री कालेराम मन्दिर में चार भाइयों सहित श्री सीता जी विराजमान् हैं।

गोरेराम मन्दिर–

यह मन्दिर भी नया घाट क्षेत्र में नागेश्वर नाथ के पास ही अवस्थित है।

नया घाट क्षेत्र के अन्य मन्दिर–

चौदह कोसी परिक्रमा मार्ग पर कुछ अन्य प्राचीन मन्दिर भी हैं जिनमें जानकी महल ट्रस्ट, मन्दिर श्री विजय राघव जी, श्री रामहर्षण, श्री नारायण

आश्रम दुर्गा मन्दिर, गोस्वामी तुलसीदास जी की छावनी, सिद्ध बाबा श्री नरसिंह दास जी की छावनी, श्रावण कुञ्ज इत्यादि।

दशरथ महल–

हनुमान् गढ़ी से थोड़ी दूरी पर महाराजा दशरथ जी का महल है। दशरथ महल के मुख्य द्वार से दाहिनी ओर महन्त निवास है। यहीं पर सम्पूर्णानन्द विद्यालय से मान्यता प्राप्त एक गुरुकुल भी है जिसमें छात्रों को संस्कृत का अध्ययन कराया जाता है।

कैकेयी भवन–

रामजन्म भूमि के निकट रामकोटि में यहमन्दिर स्थित है। इसी स्थान पर महारानी कैकेयी के गर्भ से श्री भरत जी का जन्म हुआ था। वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन आता है। सम्प्रति यहाँ पर शङ्कर जी का एक मन्दिर भी है।

कोप भवन–

यह मन्दिर हनुमान् गढ़ी से जन्म भूमि मार्ग पर स्थित है। महारानी कैकेयी ने इसी स्थान पर कोप किया था।

सुमित्रा भवन–

श्री रामजन्म भूमि के दक्षिण की ओर सुमित्रा भवन नामक स्थान है। यहीं पर लक्ष्मण जी का जन्म हुआ था। महाराजा विक्रमादित्य द्वारा बनवाया यहाँ एक महल था जो बाबर के समय नष्ट कर दिया गया था।

श्री आनन्द भवन–

इस स्थान पर भगवान् श्रीराम का बालपन व्यतीत हुआ था। इस मन्दिर में श्री काग भुशुण्डि जी के दर्शन होते हैं।

सीता रसोई–

इस स्थान पर माता जानकी जी ने विवाह के पश्चात् प्रथम बार अयोध्या आने पर रसोई बनायी थी।

वासुदेव घाट–

वासुदेव घाट क्षेत्र के अन्तर्गत 3 किलोमीटर क्षेत्र में अनेक प्राचीन मन्दिर हैं जिनमें मणि रामदास जी छावनी, वाल्मीकि रामायण भवन, बड़े हनुमान् अनेक प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

छोटी देवकाली–

श्री छोटी देवकाली अयोध्या की ग्राम देवी मानी जाती हैं। छोटी देवकाली श्री पार्वती जी हैं जिनका पूजन सीता जी नित्य किया करती थीं। वहाँ भी ये मिथिला जी की ग्राम देवी मानी जाती थीं। ऐसी मान्यता है कि जब माता सीता का विवाह श्रीराम जी के साथ सम्पन्न हो गया और वे अयोध्या आने लगीं तो अन्तिम बार पुनः श्री गिरिजा जी का पूजन करने के लिए बाग तडाग में गईं, तब माता ने पूछा कि तुम्हारे बाद मेरी पूजा कौन करेगा इस पर माता सीता ने कहा कि आप भी हमारे साथ चलो, तब वे देवी की उस प्रतिमा को साथ ले आयीं तथा महाराज दशरथ ने उस प्रतिमा को सप्त सागर के ईशान कोण में एक मन्दिर बनवाकर स्थापित किया। सप्त सागर में स्नान के बाद माता सीता छोटी देवकाली की नित्य पूजा करती थी।

बड़ी देवकाली–

यह मन्दिर माता शीतला देवी का है। जिसका निर्माण वर्तमान समय में महाराज श्री चक्रवर्ती द्वारा किया गया है। इन्हें ही बड़ी देवकाली कहा जाता है। स्कन्द पुराण, अयोध्या माहात्म्य में माता शीतला देवी का वर्णन किया गया है।

मणि पर्वत–

यह अयोध्या का महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थल है। मान्यता यह है कि हनुमान् जी जब मूर्च्छित लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी लेने जा रहे थे तो उस पर्वत का एक टुकड़ा अयोध्या में गिर गया था। उसी समय से इस स्थान का नाम मणि पर्वत पड़ गया। विक्रमादित्य द्वारा निर्मित इस भवन में पर्वतराज मणिदेव के साथ राम–लक्ष्मण–सीता की मूर्तियाँ विद्यमान् है। बौद्धों के लिए भी यह एक पवित्र तीर्थ स्थल है। महात्मा बुद्ध ने इस स्थान पर 6 वर्षों तक तप किया था।

भरत मन्दिर (नन्दि ग्राम)–

इस स्थान का वर्णन स्कन्द पुराण में भी आया है। सम्प्रति महाराजा विक्रमादित्य द्वारा निर्मित यह मन्दिर अवस्थित है। यह नन्दिग्राम नामक स्थान पर है जिसका वर्णन पुराणों में तथा वाल्मीकि रामायण में भी आया है।

श्री नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

तवादेशान्मया कार्यं देहित्वं पादुके मम्।

नन्दिग्रामे वासिष्येऽहंपादुके द्वादशाब्दिकम्।।[1]

अर्थात् भरत बोले अब मैं आपके आदेशानुसार ही कार्य करूँगा, किन्तु आप अपनी दोनों चरण पादुकाएँ मुझे दे दें। मैं इन्हीं पादुकाओं का आश्रय ले नन्दिग्राम में निवास करूँगा और आपकी ही भाँति 12 वर्षों तक व्रत का पालन करूँगा।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

रामागमनमाकांक्षन भरतो भ्रात्रवत्सलः।

भ्रातुर्वचनकारी च प्रतिज्ञापारगस्तदा।।

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 48/162

पादुके त्वभिषिच्याथ नन्दिग्रामेऽवसत् तदा।।[1]

अर्थात् भाई की आज्ञा पालन और प्रतिज्ञा के पार जाने की इच्छा करने वाले भ्रातवत्सल भरत श्री रामचन्द्र जी के आगमन की आङ्क्षाक्षा रखते हुए उनकी चरण पादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त करके उन दिनों नन्दिग्राम में रहने लगे।

गो–प्रातार घाट–

स्कन्द पुराण तथा वाल्मीकि रामायण में इस स्थान का वर्णन है कि भगवान् श्रीराम ने इसी स्थान पर स्वयं जल समाधि ली थी। यहाँ का पुराना घाट टिकैत राय तथा अयोध्या के राजा के द्वारा बनवाया गया था। इसके पास जो मन्दिर है उसका निर्माण 300 वर्ष पूर्व महाराजा ददुआ अयोध्या के द्वारा करवाया गया था।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

तथा ब्रवति देवेश गोप्रतारमुपागताः।

भेजिरे सरयूं सर्वेहर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः।।

अवगाहायात्सु यो यो वै प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत्।

मानषुं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत।।[2]

अर्थात् ब्रह्मा जी ने जब संतानक लोकों की प्राप्ति की घोषणा की तब सरयू के गोप्रतार घाट पर आये हुए उन सब लोगों ने आनन्द के आँसू बहाते हुए सरयू के जल में डुबकी लगायी। जिसने–जिसने जल में गोता लगाया

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 115/24
2. तदेव, उत्तरकाण्ड, 110/22–23

वही–वही बड़े हर्ष के साथ प्राणों और मनुष्य शरीर को त्यागकर विमान पर जा बैठा।

तुलसी चौरा–

यहाँ रामचरितमानस क जन्मभूमि है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने यहीं से मानस कथा का प्रारम्भ किया था। इसके मुख्य द्वार पर लिखा है–

संवत सोरह सै इकतीसा।

करऊ कथा हरिपद धरि सीसा।।

नौमी भौम बार मथुमासा।

अवध पुरी यह चरित प्रकासा।।

रत्न सिंहासन–

इस स्थान पर भगवान् श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक हुआ था। समुद्रगुप्त के समय की 3 मूर्तियाँ यहाँ स्थापित हैं। यह मन्दिर कनक भवन के दक्षिण की ओर स्थापित है।

मन्दिर इच्छा भवन–

कनक भवन के समीप ही इच्छा भवन नामक एक प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर में राजा दशरथ जी के सम्पूर्ण परिवार का दर्शन होता है।

सहस्त्र धारा शेषावतार लक्ष्मण मन्दिर–

स्वर्ग द्वार के पश्चिम घाट की तरफ लक्ष्मण घाट नामक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ पर शेषावतार श्री लक्ष्मण जी का मन्दिर है। मान्यता यह है कि महंत श्री शत्रोहन दास जी के स्वप्न में लक्ष्मण जी ने दर्शन दिए थे और कहा कि मैं सहस्त्र धारा नदी में हूँ, मुझे बाहर निकाल कर स्थापित करो। सहस्त्र धारा से

प्रतिमा निकाली गयी तो श्री भगवान् शेषावतार रूप में निकले। इसलिए इसका नाम सहस्त्र धारा श्री शेषावतार लक्ष्मण मन्दिर के नाम से विख्यात् है।

वेद मन्दिर–

यह मन्दिर रामकोटि बाग में स्थित है। इसमें दक्षिणाभिमुखी भगवान् श्रीराम तथा माता जानकी तथा लक्ष्मण जी का मन्दिर विद्यमान् है। भगवान् के सामने सभामण्डप में हनुमान् जी की प्रतिमा विराजित है।

श्री सिद्धबाग हनुमान् मन्दिर–

श्री हनुमान् बाग के निकट वासदेव घाट पर यह मन्दिर स्थित है। यह अतिप्राचीन हनुमान् मन्दिर है, जिसमें श्री हनुमान् जी महाराज का अति दिव्य प्राचीन विग्रह स्थापित है।

जानकी महल मन्दिर–

चौदह कोसी परिक्रमा मार्ग में वासुदेव घाट पर छोटी छावनी के निकट जानकी महल मन्दिर ट्रस्ट है जिसमें सीता–राम जी की मूर्तियाँ हैं। इसी परिसर में सोमेश्वर महादेव तथा हनुमान् मन्दिर भी है।

लक्ष्मण किला–

सरयू नदी के तट पर यह लक्ष्मण किला स्थित है। यहाँ पूर्व में खाली जमीन थी जिसका नाम किला कोट था। जब मुस्लिम शासन आया तो किला मुबारक हुआ परन्तु जब मन्दिर निर्माण हुआ तो इसका नाम लक्ष्मण किला पड़ा।

झुनकी घाट–

सरयू तट पर झुनकी घाट में यह प्रसिद्ध मन्दिर है। इस प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार झुनकी बाबा ने करवाया था।

बिड़ला मन्दिर–

इस मन्दिर का निर्माण घनश्याम दास बिड़ला ने सन् 1963 में करवाया था। इस मन्दिर में भगवान् श्रीराम, माता जानकी तथा लक्ष्मण जी की पश्चिमाभिमुखी प्रतिमा विराजित हैं।

पञ्चमुखी महादेव–

यह मन्दिर अतिप्राचीन है। मान्यता यह है कि श्री रामचन्द्र ने यहीं पर आकर शिव की पूजा की थी तथा यहाँ से पुष्पक विमान से गोलोक को प्रस्थान किया था। महाराजा विक्रमादित्य ने यहाँ आकर पूजा–अर्चना की थी।

दूधेश्वर महादेव–

यह मन्दिर अयोध्या से 40 किलोमीटर दूर स्थित है। स्कन्द पुराण में वर्णित सीता कुण्ड नामक स्थान यहीं पर है।

क्षीरेश्वर महादेव–

यह अतिप्राचीन मन्दिर है। मान्यता यह है कि इस स्थान पर महाराज दशरथ ने पुत्र प्राप्ति के लिए रुद्राभिषेक किया था।

मखभूमि–

यह स्थान सरयू पार अयोध्या से 10 मील दूर स्थित है। मान्यता है कि महाराज दशरथ ने इसी स्थान पर पुत्रेष्टि यज्ञ किया था। यह महाराजा दशरथ जी की यज्ञ भूमि है।

विल्व हरि–

यहाँ पर महाराजा विक्रमादित्य कालीन प्राचीन शिव मन्दिर है। इससे थोड़ी दूर पर महाराजा दशरथ का भइदग्धा नामक प्राचीन स्थल है। मान्यता है कि इसी स्थान पर भरत जी ने महाराज दशरथ का अन्तिम संस्कार किया था।

सूर्य कुण्ड–

इस स्थान पर राजा दर्शन नगर के द्वारा स्थापित सागर की खुदाई से निकली भगवान् सूर्यदेव की प्रतिमा स्थापित है।

अयोध्या के ऐतिहासिक टीले–

अयोध्या के प्राचीन इतिहास के साथ यहाँ के कुछ टीलों का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। प्राचीनकाल में इन स्थानों पर विशाल भवन बने रहे होंगे परन्तु वर्तमान् में ये टीले के रूप में प्रसिद्ध हैं। कतिपय टीले निम्नलिखित हैं– सुग्रीव टीला, नल–नील टीला, अङ्गद टीला, कुबेर टीला, लक्ष्मण टीला।

अयोध्या न केवल सनातन धर्मावलम्बियों में आकर्षण का केन्द्र है अपितु अनेकों धर्मों के मतावलम्बियों का पुण्य तीर्थ क्षेत्र है।

बौद्ध तप–स्थल–

अयोध्या के सन्दर्भ में बौद्ध धर्मवलम्बियों की भी अगाध श्रद्धा है। बौद्ध मत से यहाँ भगवान् बुद्ध ने 16 वर्षों तक तपस्या की थी। जिनके कुछ अवशेष अभी भी शेष हैं जिनमें दातून कुण्ड अति प्रसिद्ध स्थल है। यह ऐतिहासिक स्थान हनुमान् गढ़ी के पूर्व की तरफ स्थित है। मान्यता है कि बुद्धदेव ने दातून करके उसे दातून कुण्ड के निकट गाड़ दिया जो कुछ दिन बाद उगकर वृक्ष हो गया। वही वृक्ष बोधिवृक्ष कहलाया। किसी कारणवश यह वृक्ष सूख गया। इसकी सुखी लकड़ी को यहाँ से चीन, जापान, बर्मा, लङ्का आदि देशों के अनेकों बौद्ध भिक्षु आकर ले गये जो वहाँ के प्रमुख बौद्ध मन्दिरों में आज भी है। इसके अतिरिक्त मणि पर्वत पर भी अशोक कालीन बौद्ध स्तम्भ का भग्नावशेष है। यद्यपि दातून कुण्ड को सनातनधर्मी श्रीराम जी के दातून करने का स्थान मानते हैं।

सिक्ख गुरु द्वारा ब्रह्म कुण्ड–

मान्यता है कि एक बार हरिद्वार से जगन्नाथपुरी जाते समय श्री गुरुनानक देव जी जब अयोध्या आये तो यहाँ पर विश्राम किया था। और श्री गुरु गोविन्द सिंह साहेब जब अयोध्या आये थे तो उन्होंने भी एक रात्रि यहाँ विश्राम किया था।

अयोध्या के प्रमुख जैन मन्दिर–

जैन धर्म में अयोध्या को अत्यन्त पावन नगरी के रूप में वर्णित किया गया है। यहाँ के दिगम्बर जैन मन्दिर में एक शिलालेख में वर्णित है– जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में अनादि निधन अयोध्या नगरी है यह इस आर्यखण्ड की राजधानी रही है। प्रत्येक अवसर्पिणी उत्सर्पिणी के चतुर्थ काल में यहाँ चौबीस तीर्थङ्कर होते हैं। इस प्रकार यहाँ अनंतानंत चौबीस हो चुकी हैं और आगे भी अनंतानत होवेंगी असंख्यातों अवसर्पिणी उत्सर्पिणी बीत जाने पर यहाँ एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, इस बार यहाँ हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है। इसमें अनेक अघटित घटनाएँ हो जाया करती हैं। जैसे प्रथम तीर्थङ्कर का तृतीय काल में आ जाना आदि। तृतीय काल में पल्य का आठवाँ भाग शेष रहने पर प्रतिश्रुति सेलेकर महाराजा नाभि तक चौदह कुलकर हुए हैं। ये सब युगलिया होते थे। किन्तु बारहवें कुलकर मरुदेव जी ने अकेले पुत्र प्रसेनजित को जन्म दिया। यहाँ से युगलिया परम्परा समाप्त हो गयी। इन तेरहवें कुलकर प्रसेनजित का विवाह श्रेष्ठ कुल की कन्या के साथ सम्पन्न हुआ। प्रसेनजित ने भी अकेले पुत्र नाभिराज को जन्म दिया। इन्द्र ने शुद्ध कुल की कन्या मरुदेवी के साथ नाभिराज का विवाह सम्पन्न किया। माता मरुदेवी ने प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव को जन्म दिया। महाराजा नाभिराज ने युवावस्था में तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव का विवाह इन्द्र की अनुमति से राजा कच्छ–महाकच्छ की बहन

यशस्वती और सुनन्दा के साथ सम्पन्न किया। कर्मभूमि के प्रारम्भ में भगवान् ऋषभदेव की आज्ञा से इन्द्र ने देवों सहित यहाँ आकर अयोध्या के मध्य में और चारों दिशाओं में जिन मन्दिर बनवाकर कौशल, काशी आदि 52 देश बनाये और अयोध्या, बनारस आदि नगरियों की स्थापना करके प्रजा को यथा स्थान बसाया। पुनः श्री ऋषभदेव ने विदेह क्षेत्र की शाश्वत कर्मभूमि की व्यवस्था को अपने दिव्य अवधि ज्ञान से जानकर यहाँ वैसी क्षत्रिय, वैश, शूद्र त्रिवर्ण व्यवस्था, विवाह व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था बनाई थी। असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन षट् क्रियाओं का उपदेश देकर प्रजा को जीने की कला सिखाई थी इसीलिए वे आदि ब्रह्मा, युग स्रष्टा, युगादि पुरुष कहलाये।

हुण्डावसर्पिणी काल दोष से ही वर्तमानमें यहाँ अयोध्या में श्री ऋषभदेव, अजित नाथ, अभिनन्द नाथ, सुमति नाथ और अनन्त नाथ ऐसे 5 तीर्थङ्कर ही जन्मे हैं। प्रथम तीर्थङ्कर के गर्भ, जन्म ऐसे दो कल्याणक और 4 तीर्थङ्करों के गर्भ, जन्म, तप और केवल ज्ञान ये 4–4 कल्याणक यहीं पर इन्द्रों द्वारा मनाये गये तथा शेष 19 तीर्थङ्कर रत्नपुरी, श्रावस्ती, हस्तिनापुर आदि नगरियों में जन्मे हैं। तीर्थङ्कर के गर्भ में आने के 6 माह पूर्व में जन्म लेने तक कुबेर माता के आँङ्गन में रत्नों की वर्षा करते हैं। जन्म लेते ही इन्द्रगण उन्हें ले जाकर सुमेरु पर्वत पर राज्याभिषेक करते हैं तथा निर्वाण के समय भी इन्द्रगण महामहोत्सव मनाते हैं। श्री ऋषभदेव के प्रथम पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। भगवान् ऋषभ देव के भरत बाहुबली आदि सभी 101 पुत्र राज्य करके पुनः दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं और ब्राह्मी सुन्दरी पुत्रियों ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर आर्यिका बनकर गणिनी पद को एवं आर्यिका पथ को दिखलाया था। वह आज भी चल रहा है।

भरत चक्रवर्ती के बड़े पुत्र अर्ककीर्ति के नाम से यह इक्ष्वाकु वंश सूर्यवंश कहा जाने लगा। इस वंश में अपने–अपने पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करने की अविच्छिन्न परम्परा चौदह लाख राजाओं तक चलती रही।

बीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मुनि सुव्रत नाथ के मोक्ष के बाद आज से लगभग नौ लाख वर्ष पहले यहीं अयोध्या में इसी इक्ष्वाकु वंश, सूर्यवंश में आठवें बलभद्र मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र हुए हैं। वर्तमान् में रामजन्म भूमि नाम से यह अयोध्या सर्वत्र देश–विदेश में प्रसिद्ध है।

वर्तमान् में यहाँ कटरा मोहल्ले में एक जैन धर्मशाला है तथा निम्नलिखित स्थानों पर 5 जैन मन्दिर हैं–

1. **आदि नाथ–** स्वर्ग द्वार के पास मुराई टीले में एक टीले पर।
2. **अजित नाथ–** बकसरिया मुहल्ले में यह मन्दिर है।
3. **अभिनन्दन नाथ–** कटरा मुहल्ले में यह मन्दिर है।
4. **सुमति नाथ–** रामकोट में है। इसमें पार्श्वनाथ तथा नेमिनाथ की मूर्तियाँ हैं।
5. **अनन्त नाथ–** गोलाघाट के पास ऊँचे टीले पर। मन्दिरों में जैन तीर्थङ्करों के चरण चिह्न बने हैं।

अयोध्या एक ऐसी प्राचीन धार्मिक महानगरी है जहाँ सहस्त्रों मन्दिर हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक मार्ग एवं गलियों पर अनेकों मन्दिर हैं। प्राचीनकाल से लेकर आद्यतन अयोध्यापुरी की महिमा सदैव अक्षुण्ण है।

परिक्रमा प्रशस्ति–

परिक्रमा की प्रथा अत्यन्त प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। पुराणों में वर्णन आता है कि माता–पिता की परिक्रमा करने के कारण श्रीगणेश जी को सभी देवताओं में प्रथम पूज्य होने का वरदान प्राप्त हुआ था। सामान्यतः परिक्रमा का उद्‌देश्य किसी पूज्य स्थान या किसी विशेष देवी–देवता को सम्मान देने का होता है। ऐसा करने से देव सान्निध्य प्राप्त होता है। परिक्रमा द्वारा भगवान् की समीपता को श्रद्धालु साक्षात् प्रतीत करता है। सनातन धर्म में परिक्रमा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। इसके अन्तर्गत अयोध्या की परिक्रमा, मथुरा की परिक्रमा, काशी की परिक्रमा, नैमिषारण्य आदि अनेकों तीर्थ क्षेत्रों की परिक्रमा का वर्णन पौराणिक वाङ्मय में प्राप्त होता है। वराह पुराण में मथुरा परिक्रमा के महत्व में आया है कि जो मथुरा प्राप्त होने पर उसकी प्रदक्षिणा परिक्रमा करता है उसने सात द्वीपों वाली पृथ्वी की परिक्रमा कर ली।

वराह पुराण में प्रोक्त है–

मथुरां समनुप्राप्य यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणी कृता तेन सप्त द्वीपा वसुन्धरा।।[1]

इसी प्रकार नैमिषारण्य की 84 कोस की परिक्रमा प्रसिद्ध है। यह परिक्रमा प्रतिवर्ष फाल्गुन अमावस्या को प्रारमभ होकर पूर्णिमा को पूर्ण होती है। काशी परिक्रमा के सम्बन्ध में धर्मशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 1348 में लिखा है कि पञ्चकोसी की यात्रा अत्यन्त पुण्य कर्मों में परिगणित है।

परिक्रमा शब्द की व्युत्पत्ति–

परि + क्रम + घञ् – इधर–उधर भ्रमण करना, इतस्ततः घूमना, भ्रमण, टहलना, प्रदक्षिणा करना, इच्छानुसार टहलना, सिलसिला, क्रम, यथाक्रम, उत्तरोत्तर, घूमना।[2]

---

1. वराह पुराण, 159/14
2. संस्कृत हिन्दी शब्द कोष, पृ0 562

अयोध्या धाम की परिक्रमा में 3 प्रकार की परिक्रमाओं का वर्णन प्राप्त होता है–

1. पञ्चकोसी परिक्रमा।
2. चौदहकोसी परिक्रमा।
3. चौरासीकोसी परिक्रमा।

(1) **पञ्चकोसी परिक्रमा–** कार्तिक माह के शुक्लपक्ष की एकादशी को अयोध्या में पञ्चकोसी परिक्रमा की जाती है। पञ्चकोसी परिक्रमा रामजन्म भूमि के चारों तरफ 5 कोस की परिधि में होती है। ऐसी मान्यता है कि मानव का शरीर पञ्च भौतिक तत्त्वों से बना है। पञ्च भौतिक शरीर होने के कारण पञ्चकोसी परिक्रमा करने से भौतिक शरीर के द्वारा किए गए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।[1]

(2) **चौदहकोसी परिक्रमा–** यह परिक्रमा कार्तिक शुक्ल नवमी तिथि को की जाती है। यह परिक्रमा सर्वाधिक श्रद्धालु प्रिय तथा प्रसिद्ध है। वसिष्ठ कुण्ड से प्रारम्भ होकर हनुमान् गढ़ी से दक्षिण होते हुए श्री वसिष्ठ आश्रम पर समाप्त होती है। सामान्यतः अयोध्या के सभी प्रमुख मन्दिर तथा तीर्थ इस परिक्रमा में आ जाते हैं। यह परिक्रमा समस्त सनातन मतावलम्बियों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस परिक्रमा में सम्पूर्ण भारत के विशेषतः मिथिला, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बिहार के यात्री भारी संख्या में सम्मिलित होते हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार कार्तिक शुक्ल नवमी जो अक्षय नवमी के नाम से जानी जाती है के दिन श्री अयोध्या की स्थापना हुई थी। एक प्राचीन मान्यता है कि इस तिथि को

---

1. https//aapkikhabar.com (Aapki Khabar News, Sun. 14 November)

सतयुग प्रारम्भ हुआ था, इसके कारण भी यह परिक्रमा बड़ी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। यह यात्रा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् चतुर्वग फल देने वाली है। सामान्यतः यह परिक्रमा कहीं से भी प्रारम्भ की जा सकती है, परन्तु यह आवश्यक है कि जहाँ से भी प्रारम्भ कीजाये वहीं पहुँचकर समाप्त की जाये। स्वर्ग द्वार से प्रारम्भ करके यह यात्रा सरयू नदी के किनारे–किनारे सात मील तक जाती है। इस यात्रा में सरयू के समस्त घाट, छोटी छावनी, बड़ी छावनी, मौनी जी का स्थान, शीतल कुञ्ज, वैतरणी, सूर्य कुण्ड, मीरा घाट, यमस्थल घाट, लक्ष्मण किला, रामलला घाट, चक्रतीर्थ घाट, लक्ष्मण घाट, सरयू सहस्त्र धारा, तीर्थचक्र आदि सभी आ जाते हैं। मार्ग में अनेक सुन्दर तालाब, पर्वत, कूप पड़ते हैं एवं सूर्य कुण्ड का सर्वप्रमुख तथा विस्तीर्ण सरोवर पड़ता है। श्रद्धालु अति उमङ्ग तथा उत्साह के साथ मार्ग की कठिनाइयों को पार करके इस यात्रा को पूर्ण करते हैं। चौदहकोसी की परिक्रमा करने से व्यक्ति के अनेकों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्माण्ड में चौदह लोभ माने गये हैं, सात अधोलोक (अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल) तथा सात उर्ध्वलोक (भूलोक, भुवःलोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक) इन लोकों में हमें उर्ध्व पुण्य लोकों की प्राप्ति हो इसलिए चौदहकोसी परिक्रमा को समस्त मानव के लिए महत्त्वपूर्ण बताया गया है।

(3) **चौरासीकोसी परिक्रमा–** यह परिक्रमा ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा से प्रारम्भ की जाती है। इस यात्रा के अन्तर्गत अयोध्या के सभी पवित्र स्थल तथा निकटतम् जनपदों के तीर्थ स्थल जिनका भगवान् श्रीराम से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध है आ जाते हैं। चौरासीकोसी परिक्रमा उस स्थान से प्रारम्भ होती है जहाँ महाराजा दशरथ ने पुत्र प्राप्ति हेतु यज्ञ

किया था। इसमें 25 पड़ाव के साथ विश्राम के लिए कई स्थल हैं। परिक्रमा मार्ग 5 जनपदों– बस्ती, अयोध्या, अम्बेडकर नगर, बाराबङ्की और गोण्डा के 100 से अधिक गाँवों से होकर गुजरती है।

चौरासीकोसी परिक्रमा मार्ग के अन्तर्गत इन पाँचों जनपदों के प्रमुख धार्मिक स्थल बस्ती जनपद के मखभूमि, रामरेखा; अम्बेडकर नगर के श्रवण क्षेत्र; अयाध्या के शृङ्गी ऋषि आश्रम, श्रवण कुमार आश्रम, दशरथ समाधि स्थल, विल्व हरि घाट, सूर्यकुण्ड, दर्शन नगर, गौराघाट, चकियवा पारा, तारडीह, रामचौरा, सूर्यकुण्ड रामपुर भगन, दुग्धेश्वर कुण्ड, दराबगंज, नन्दीग्राम, भरत कुण्ड, पिशाचमोचन कुण्ड, मानस तीर्थ, जटा कुण्ड, शत्रुघ्न कुण्ड, राम कुण्ड, पुष्प नगर पुंहपी, श्री रमणक आश्रम, पण्डितपुर, गहनाग आश्रम, सौरहीमिल, आस्तीक आश्रम व ऋषि जमदाग्नि की तपस्थली, आत्तीकन, जन्मेजय कुण्ड, अमानीगंज ऋषि च्यवन आश्रम कीन्हूपुर, श्री गौतम आश्रम रूदौली, ऋषि माण्डव्य आश्रम व तमसोत्पत्ति स्थान मवई, ऋषि पाराशर आश्रम देवराकोट, माँ कामाख्या भवानी, सुनबा जङ्गल रूदौली, बड़ी देवकाली, छोटी देवकाली, लक्ष्मी कुण्ड, फतेजगंज, गिरिजा कुण्ड और जनकौरा क्षेत्र के तीर्थ स्थल जैसे ढकहवा ताल, पहाड़पुर, हनुमान् गढ़ी नाका आदि, बन्दी देवी (जालपा देवी), गुप्तार घाट, गोण्डा जनपद के सन्त तुलसीदास की जन्म स्थली राजापुर व भगवान् वाराह मन्दिर सूकर क्षेत्र, उत्तरी भवानी (वाराही देवी), जम्बू तीर्थ, ऋषि अगस्त्य व तुंदिल आश्रम, सरचण्डी गाँव भौरीगंज, महर्षि जमदग्नि आश्रम जमथा, अष्टावक्र आश्रम अमदही, शौनडीहा बनगाँव, पाराशर मुनि आश्रम परास आदि शामिल हैं।[1]

1. गूगल पत्रिका, काम 9 जनवरी, 2020 के माध्यम से।

मार्ग के अधिकांश स्थान श्रीराम जी के जीवनचरित से किसी न किसी प्रकार से सम्बन्ध रखते हैं। चौरासीकोसी परिक्रमा से मनुष्य को चौरासी लाख योनियों में भ्रमण से मुक्ति प्राप्त होती है।

*****

षष्ठ अध्याय

अयोध्या की राजनैतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष अत्यधिक प्राचीनकाल से जगत् गुरु की उपाधि से विभूषित रहा है। पौराणिक वाङ्मय में भारतवर्ष की प्रशंसा स्थान–स्थान पर सर्वत्र की गयी है। श्रीमद्भागवत महापुराण में बताया गया है कि देवता भी इस पवित्र भारत भूमि में जन्म लेने के लिए उत्सुक रहते हैं।[1] कारण कि ईश्वर के अवतारों में अधिकांश अवतार इसी पवित्र भारत भूमि पर हुए हैं। भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति का वर्णन अनेकों पुराणों में आया है। श्री नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालिततत्त्वादिदं भारतं वर्षमभूत्। इलावृत्तस्य मध्ये मेरुः सुवर्णमयश्चतुरशीति सहस्त्राणि योजनान् तस्योच्छ्रायः षोडश सहस्त्र मत्यधस्तादवगाढः। तद्द्विगुणो मूर्ध्नि विस्तारः।। तन्मध्ये ब्रह्मणः पुरी। ऐन्द्रयामिन्द्रस्य चामरावती। आग्नेयामग्नेस्ते जोवती। याम्यां यमस्य संयमनी। नैर्ऋत्यां निऋतेर्भयङ्करी वारुण्यां वरुणस्य विश्वावती। वायव्यां वायोर्गन्धवती। उदीच्यां सोमस्य विभावरीति। नववर्षान्वितं जम्बूद्वीपं पुण्य पर्वतैः पुण्य नदीभिरन्वितम् किम्पुरुषादीन्यष्टवर्षाणि पुण्यवतां भोग स्थानानि साक्षाद् भारतवर्षमेकं कर्मभूमिश्चातुर्वर्ण्य युतम्।। तत्रैव कर्मभिः स्वर्गकृतैः प्रात्स्यान्ति मानवाः। मुक्तिश्चात्रैव निष्कामैः प्राप्यते ज्ञान कर्मभिः।।

अधोगतिमितो विप्र यान्ति वै पाप कारिणः। ये पाप कारिणस्तानि विद्धि पाताल तले नरके कोटि–समन्वितम्।।[2]

अर्थात् ऋषभ से भरत का जन्म हुआ, जिसके द्वारा चिरकाल तक धर्मपूर्वक पालित होने के कारण इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। इलावृत्त वर्ष के बीच में मेरु नामक सुवर्णमय पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 5/19/21
2. श्री नरसिंह पुराण, 30/7–11

है। वह सोलह हजार योजन तक नीचे जमीन में गड़ा है। इससे दूने इसकी चोटी की ऊँचाई है। इसके मध्य में ब्रह्मा जी की पुरी है, पूर्वभाग में इन्द्र की अमरावती है, अग्निकोण में अग्नि की तेजोवती पुरी है, दक्षिण में यमराज की संयमनी है, नैर्ऋत्य कोण में निर्ऋति की भयङ्करी नामक पुरी है। पश्चिम में वरुण की विश्वावती, वायव्य कोण में वायु की गन्धवती नगरी है और उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी पुरी है। नौ खण्डों से युक्त यह जम्बूद्वीप पुण्य पर्वतों तथा पुण्य नदियों से युक्त है। किम्पुरुष आदि आठ वर्ष पुण्यवानों के भोग स्थान है। केवल एक भारतवर्ष ही चारों वर्णों से युक्त कर्मक्षेत्र है। भारतवर्ष में ही कर्म करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करेंगे और वहाँ ही ज्ञान–साधक को निष्काम कर्मों से मुक्ति भी प्राप्त होती है। विप्रवर पाप करने वाले पुरुष यहाँ से अधोगति को प्राप्त होते हैं। जो पापी हैं, उन करोड़ों मनुष्यों को पातालस्थ नरक में पड़े हुए समझिए।

इसी प्रकार वायु पुराण में प्रोक्त है–

उतरं यत्समुद्रस्यहिमवद्दक्षिणञ्चयत्। वर्षेयद् भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा।

भरणाच्च प्रजानावै मनुर्भरत उच्यते। निरुक्तं वाचनाश्चैववर्षेतद्भारतं स्मृतम्।।[1]

अर्थात् समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण देश का नाम भारत है वहीं भारती प्रजा रहती है, प्रजा के भरण–पोषण करने के कारण मनु ही भरत कहलाता है।

मनुस्मृति में प्रोक्त है–

आसमुद्रस्तु वै पूर्वदा समुद्राच्च पश्चिमात्।

तयोरैवान्तरं गिर्योरार्यावर्त विदुर्बुधाः।।[2]

---

1. वायुपुराण, प्रथम खण्ड, 45/75–76
2. मनुस्मृति, 2/24

अर्थात् पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक हिमलाय और विन्ध्याचल के मध्यवर्ती प्रदेश को विद्वान् लोग आर्यावर्त कहते हैं।

इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण में प्रोक्त है–

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत्।

वर्ष तद् भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा।।[1]

इसी महान् भारत भूमि का एक अत्यन्त उत्तम प्रदेश है उत्तर प्रदेश। उत्तर प्रदेश शब्द का वास्तविक अर्थ है उत्तरी प्रान्त और यह भारत के उत्तरी भाग में स्थित है। यह एक महत्त्वपूर्ण राज्य है। सर्वप्रथम इस राज्य को मध्य प्रान्त के नाम से जाना जाता था फिर इस प्रान्त में अनेक राजवंशों का उदय हुआ और ये विभाजित हो गया।

1947 से पूर्व तक इसको संयुक्त प्रान्त के नाम से जाना जाता था। जिसमें अवध प्रान्त और ब्रज प्रान्त संयुक्त रूप से था। 24 जनवरी 1950 में इसका नाम बदलकर उत्तर प्रदेश किया गया।

उत्तर प्रदेश $23^0$52′ उत्तरी अक्षांश से $31^0$28′ उत्तरी अक्षांश तथा $77^0$51′ पूर्वी देशान्तर से $84^0$38′ पूर्वी देशान्तर के मध्यम स्थित है। वर्तमान में इस प्रदेश की राजधानी लखनऊ है। लखनऊ से लगभग 130 किमी0 पूर्व दिशा में अयोध्या स्थित है। अयोध्या नगरी का अक्षांश $26^0$27′ उत्तर तथा देशान्तर लन्दन से $82^0$15′ पूर्व और वाराणसी से $7^0$30′ पश्चिम है।[2]

पौराणिक वाङ्मय में अयोध्या को कोशल देश की राजधानी के रूप में वर्णित किया गया है, कोशल प्राचीन भारत का एक महत्त्वपूर्ण जनपद था।

---

1. ब्रह्माण्ड पुराण, अनुषङ्ग पाद, 16/5
2. http//www/dristiias.com

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।

निविष्टः सरयू तीरे प्रभूतधनधान्यवान्।।

अयोध्या नाम नगरी तत्रा सील्लोकाविश्रुता।

मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।।[1]

अर्थात् कोशल नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है, जो सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धन–धान्य से सम्पन्न, सुखी समृद्धिशाली है। उसी जनपद में अयोध्या नाम की एक नगरी है जो समस्त लोकों में विख्यात् है, उस पुरी को स्वयं महाराज मनु ने बनवाया और बसाया था।

इसी प्रकार श्री नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

आसीद् भूमौ महाभाग पुरी दिव्या सुशोभना।

सरयूतीर मासाद्य अयोध्या नाम नामतः।।[2]

अर्थात् महाभाग इस पृथ्वी पर सरयू नदी के किनारे अयोध्या नाम से प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्य पुरी है।

स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतोदिशि।

तथैव दिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोऽवधिः।।

दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः।

एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहं स्थितम्।।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकण्ड, 5/5–6
2. श्री नरसिंह पुराण, 24/3

मत्स्याकृतिरियं विप्रपुरी विष्णोरुदीरिता।

पश्चिमेतस्यमूर्द्धातुगोप्रतारासिताद्द्विज।

पूर्वतः पृष्ठभागोहिदक्षिणोतन्मरमध्यमः।

तस्यां पुर्य्या महाभाग! नाम्ना विष्णुर्हरिस्वयम् पूर्व दृष्ट प्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि।।[1]

अर्थात् यह पूर्व में सहस्त्र धारा से लेकर एक योजन पर्यन्त है, पश्चिम दिशा में यह सम (?) से लेकर योजन पर्यन्त विस्तृत है। दक्षिण में यह सरयू से एक योजन पर्यन्त है। उत्तर में यह तमसा से 1 योजन पर्यन्त है यही अयोध्या क्षेत्र का संज्ञान है। इस स्थान के मध्य में हरि अन्तर्गृह है। हे विप्र यह विष्णुपुरी मत्स्याकृति है। इसका मस्तिष्क पश्चिम की ओर गोप्रतार तथा असिता पर्यन्त है। इसका पुच्छ भाग पूर्व दिशा की ओर है तथा मध्य भाग उत्तर एवं दक्षिण कीओर है। हे महाभाग हरि इस पुरी में विष्णु विग्रहरूपेण विराजमान् रहते हैं।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित कोशल की अयोध्या नगरी वैदिक काल से ही विद्यमान है। इसकी स्थापना वैवस्वत मनु ने महाप्रलय की घटना के पश्चात् किया था। महाकाव्य तथा पौराणिक साहित्य से विदित होता है कि अयोध्या नगरी प्राचीन भारत की वैभवशाली नगरी थी।

अयोध्या की सभ्यता महाभारत काल से पहले की है क्योंकि महाभारत में रामायण के पात्र अयोध्या के राजाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु रामायण में महाभारत के किसी राजा का उल्लेख नहीं किया गया है।[2] पुराण आदि ग्रन्थों के बाद इतिहास की पुस्तकें भी इस नगरी की कहानियाँ सुनाती हैं। छठी

---

1. स्कन्द पुराण, वैभव खण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 1/64–67
2. प्राचीन अयोध्या का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 40

शताब्दी ईसापूर्व में यह कोशल जनपद की राजधानी थी इसके उत्तर में पाञ्चाल, दक्षिण में काशी एवं पूर्व में विदेह जनपद था। बुद्ध तथा महावीर के काल में यह एक समृद्ध व महत्त्वपूर्ण नगरी थी। बौद्ध साहित्य में यह भी मिलता है कि कोशल में सतेत्य तथा उक्कथ जैसे छोटे नगर भी थे। इनके अतिरिक्त जो बड़े नगर थे उसमें अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती थे।

जैन ग्रन्थ आदिपुराण में अयोध्या का वर्णन आया है कि किस प्रकार से अयोध्या शत्रुओं से सुरक्षित थी–

नरेन्द्र भवनं चास्याः सुरैर्मध्ये निवेशितम्।

सुरेन्द्र भवनं स्पर्द्धि परार्द्धय विभवान्वितम्।।

सुत्रामा सूत्रधारोऽस्या शिल्पिनः कल्पजा सुराः।

वास्तुजातं महीकृत्स्ना सोद्धानास्तु कथंपुरी।

संचस्कुरुश्च तां वप्रप्राकार परिखादिभिः।

अयोध्या न परं नाम्ना गुणेनात्यरिभिः सुराः।

साकेतरुढ़िरयप्स्या श्लाघ्यैव सुनिकेतनैः।

स्व निकेत इवाह्वातुं साकूतैः केतवहुभिः।

सुकोशलेति विख्यातिं सादेशाभिख्यया गताः।

विनीत जनताकीर्णा विनीतेति च सा मता

बभौ सुकोशला भावि विषयस्या लघीयसः।

नाभि लक्ष्मीं दधानासौ राजधानी सुविश्रुता।

स नृपालय मुद्वप्रंदीप्रशालं सखातिकम्।

तद् वत्स्यन्नगरारम्भे प्रतिच्छन्दायितं पुरम्।।[1]

अर्थात् उस नगरी के मध्य भाग में देवों ने राजमहल बनाया था। वह राजमहल इन्द्रपुरी के साथ स्पर्धा करने वाला था और बहुमूल्य अनेकों विभूतियों सहित था। जबकि उस नगरी की रचना करने वाले कारीगर स्वर्ग के देव थे उनका अधिकारी सूत्रधार इन्द्र था और मकान वगैरह बनाने के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी पड़ी थी तब यह नगरी प्रशंसनीय क्यों न हो।

फिर देवों ने कोट और खाईं से इसे अलंकृत किया और अयोध्या केवल नाम से ही नहीं अयोध्या शत्रुओं के लिए भी अयोध्या थी। इसको साकेत इसलिए कहते थे कि इसमें अच्छे मकान थे, उन पर झण्डे फहराते थे जिससे ऐसा जान पड़ता था कि देवताओं को नीचे बुला रहे हैं। इसका नाम सुकोशल इस कारण था कि उसी नाम के देश का प्रधान नगर था और विनीत जनों के रहने से इसका नाम विनिता पड़ा। वह सुकोशला नाम की राजधानी अत्यन्त प्रसिद्ध थी और आगे होने वाले बड़े भारी देश की नाभि (मध्य भाग के) धारण करती हुई सुशोभित थी। राजभवन, वप्रकोट और खाईं सहित वह नगर ऐसा जान पड़ता था मानो आगे कर्मभूमि के समय में होने वाले नगरों की रचना प्रारम्भ करने के लिए एक प्रतिबिम्ब नक्शा ही बनाया गया हो।

प्रायः विद्वानों ने यह माना है कि वैवस्वत मनु के जीवन की घटनाओं प्रलय आदि के आख्यान् से ऐसा प्रतीत होता है कि मनु ने कुछ समय यहाँ निवास किया था। अयोध्या मनु ने निर्मित की थी और वह बारह योजन लम्बी तथा तीन योजन चौड़ी थी। वह सरयू से वेदश्रुति तक फैली हुई थी। वह वेदश्रुति अयोध्या से 24 मील दूर होनी चाहिए। इसे आजकल बिसुई कहते हैं।

---

1. आदिपुराण, 12/74–80

अयोध्या की लम्बाई 12 योजन अर्थात् 48 कोस तथा चौड़ाई 3 येाजन अर्थात् 12 कोस। यह नगर मात्र की लम्बाई, चौड़ाई है राजमहल व राजदुर्ग इनसे भिन्न था। महर्षि ने अन्यत्र लिखा है–

सा च योजन द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते।[1]

अर्थात् द्वादश योजन लम्बी और 3 योजन विस्तृत महापुरी में 2 योजन पोखरादि द्वारा विशेष सुरक्षित है। अयोध्या जिसे शत्रु न जीत सके के नाम को अधिक सार्थक करता था। राजधानी अयोध्या के चारों ओर प्राकार (कोट) था। प्राकार के ऊपर नाना प्रकार के शतघ्नी आदि सैकड़ों यंत्र रखे हुए थे। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय में तोप की भाँति कोई यन्त्र किले की रक्षा के लिए रखा जाता था। कोटे के नीचे जल से भरी हुई परिखा थी। अयोध्यापुरी के उत्तर में सरयू का प्रवाह था अतः उधर परिखा की आवश्यकता ही नहीं थी। नगरी के वर्णन में महर्षि वाल्मीकि ने दुर्ग गम्भीर परिखा शब्द का प्रयोग किया है। अतः यह एक प्रकार से जल दुर्ग था।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

आयाता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।

श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्त महापथा।।[2]

अर्थात् वह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी थी। वहाँ बाहर के जनपदों में जाने का जो विशाल राजमार्ग था, वह उभय पार्श्व में विविध वृक्षावलियों से विभूषित होने के कारण सुस्पष्टतया अन्य मार्गों से विभक्त जान पड़ता था।

नगर की सुरक्षा व्यवस्था के सन्दर्भ में प्रोक्त है–

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 6/26
2. तदेव, 5/7

कपाट तोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।

सर्वयन्त्रा युधवती मुषितां सर्वशिल्पिभिः।।

सूतमागध सम्बाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्।

उच्चाटालध्वजवतीं शतघ्नींशतसङ्कुलाम्।।

वधु नाटक संघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्।

उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम्।।

दुर्ग गम्भीर परिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।

वाजिवारण सम्पूर्णा गोभिरूष्ट्रैः खरैस्तथा।।[1]

अर्थात् वह पुरी बड़े–बड़े फाटकों और कवाड़ों से सुशोभित थी। उसके भीतर पृथक्–पृथक् बजारें थीं। वहाँ सब प्रकार के यंत्र और अस्त्र–शस्त्र सञ्चित थे। उस पुरी में सभी कलाओं के शिल्पी निवास करते थे। स्तुति पाठ करने वाले सूत और वंशावली का बखान करने वाले मागध वहाँ भरे हुए थे। वह पुरी सुन्दर शोभा से सम्पन्न थी। उसकी सुषमा की तुलना कहीं नहीं थी। वहाँ ऊँची–ऊँची अट्टालिकाएँ थीं जिनके ऊपर ध्वज फहराते थे। सैकड़ों शतघ्नियों से वह पुरी व्याप्त थी। उस पुरी में ऐसी बहुत सी नाटक मण्डलियाँ थीं जिनमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य एवं अभिनय करती थीं।

उस नगरी में चारों ओर उद्यान तथा आर्यों के बगीचे थे। लम्बाई और चौड़ाई की दृष्टि से वह पुरी बहुत विशाल थी तथा साखू के वन उसे सब ओर से घेरे हुए थे। उसके चारों ओर गहरी खाईं खुदी थी, जिसमें प्रवेश करना या जिसे लांघना अत्यन्त कठिन था। वह नगरी दूसरों के लिए सर्वथा दुर्गम एवं

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/10–13

दुर्जय थी। घोड़े, हाथी, गाय, बैल, ऊँट तथा गदहे आदि उपयोगी पशुओं से पूरी भरी थी।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी दुर्ग चतुर्विधि (औदक, पार्वत, धान्वन, वन) वर्णन में जो औदक दुर्ग है वही दुर्ग गम्भीर परिखा का अर्थ लेना चाहिए–

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रोक्त है–

चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेतः, अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं, प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं, निरूदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं, खञ्जनोदकं स्तम्भ गहनं वा वनदुर्गमम्। तेषां नदी पर्वत दुर्ग जनपदारक्षस्थानं धान्वनवन दुर्गमटवी स्थानम् आपद्य पसारो वा।।[1]

जनपद सीमाओं की चारों दिशाओं में राजा युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाये। दुर्ग चार प्रकार के हैं– 1. औदक, 2. पार्वत, 3. धान्वन, 4. वन दुर्ग।

चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आवृत्त स्थल प्रदेश औदक दुर्ग कहलाता है। बड़ी–बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूपमें निर्मित दुर्ग पार्वत दुर्ग कहलाता है। जल तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग धान्वन दुर्ग है। इसी प्रकार चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत्त दुर्ग वन दुर्ग कहलाता है। इनमें औदक तथा पार्वत दुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के लिए उपयोग में लाये जाते थे। धान्वन और वनदुर्ग वनपालों की रक्षा के लिए उपयोगी होते थे। अथवा आपत्ति के समय इन दुर्गों में भागकर राजा भी अपनी रक्षा कर सकता था।

अर्थशास्त्र में परिखा की माप का भी वर्णन आया है–

---

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 19/3/1

तस्य परिखास्तिस्रो दण्डन्तराः कारयेत्। चतुर्दश द्वादश दशेति दण्डान् विस्तीर्णा विस्तारादवगाधाः पादोनमर्ध वा त्रिभागामूला मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टका बहुपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तु तोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्म ग्राहवतीः।।[1]

नगर के चारों ओर एक–एक दण्ड (चार हाथ) की दूरी पर तीन खाइयाँ खुदवानी चाहिए। वे खाइयाँ क्रमशः चौदह, बारह और दस दण्ड चौड़ी होनी चाहिए। जितनी वे चौड़ी हों उससे चौथाई अथवा आधी गहरी होनी चाहिए अथवा चौड़ाई का तीसरा हिस्सा गहरी भी हो सकती है। उन खाइयों की तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बंधी हों। उनकी दीवारें पत्थर अथवा ईटों से मजबूत बनी हुई हों। कहीं–कहीं खाइयाँ इतनी कम गहरी हों कि जहाँ से जल बाहर की ओर छलकने लगे अथवा किसी नदी के जल से इन्हें भरा जा सके। उनमें जल के निकलने का मार्ग अवश्य रहना चाहिए। कमल के फूल तथा घड़ियाल आदि जलचर भी उनमें रहें।

इस प्रकार अयोध्या नगरी चारों तरफ से सुरक्षा व्यवस्था के दृष्टिकोण से अत्यन्त समृद्ध थी। नगरी के चारों ओर चार द्वार थे। सम्भव है सभी द्वारों के नाम थे जिनमें पश्चिम द्वार का नाम वैजयन्त द्वार था।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

द्वारेण वैजयन्तेनप्राविशच्छ्रान्त वाहनः।

द्वाः स्थैरूत्थाय विजय मुक्तस्तैः सहितो ययौ।[2]

अर्थात् पुरी के द्वार पर सदा वैजयन्ती पताका फहराने के कारण उस द्वार का नाम वैजयन्त रखा गया था (यह पुरी के पश्चिम भाग में था) उस

---

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 19/3/2
2. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 71/33

वैजयन्त द्वार से भरतपुरी के भीतर प्रविष्ट हुए। उस समय उनके रथ के घोड़े बहुत थके हुए थे। द्वारपालों ने उठकर कहा– महाराज की जय हो, फिर वे उनके साथ आगे बढ़े।

नगर की पूर्व की ओर जो द्वार था उसी से विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण शिद्धाश्रम व मिथिला नगरी को गये। दक्षिण का द्वारा राम लक्ष्मण और सीता दण्डक वन को गये थे और इसी द्वार से लक्ष्मण जी सीता जी को वन छोड़कर आये थे। उत्तर की ओर जो द्वार था उसके द्वारा पुरवासी तट पर आया–जाया करते थे।[1]

इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण में वर्णन आता है कि अयोध्या अत्यन्त सुरक्षित राजधानी थी। जब भरत जी भगवान् श्रीराम को मनाने गये थे तब श्रीराम जी ने भरत से अयोध्या का कुशल क्षेम पूछा था।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

वीरैरध्युषितां पूर्वमस्माकं तात् पूर्वकैः।

सत्यनामांदृढ़द्वारा हस्त्यश्वरथ सञ्कुलाम्।।

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यै स्वकर्म निरतैः सदा।

जितेन्द्रियैर्महोत्साहैर्वृतामार्यैः सहस्त्रशः।।

प्रासादैर्विविधाकारैर्वृतां वैद्यजनाकुलाम्।

कच्चित् समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसे।[2]

अर्थात् तात् भरत अयोध्या हमारे वीर पूर्वजों की निवास भूमि है, उसका जैसा नाम वैसा ही गुण है। उसके दरवाजे सब ओर से सुदृढ़ है, वह हाथी,

---

1. अयोध्या का इतिहास, पृ0 61
2. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/40–42

घोड़े और रथों से परिपूर्ण है। अपने–अपने कर्मों में लगे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सहस्त्रों संख्या में वहाँ सदा निवास करते हैं। वे सबके सब महान् उत्साही, जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ हैं। नाना प्रकार के राजभवन और मन्दिर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वह नगरी बहुसंख्यक विद्वानों से भरी है। ऐसी अभ्युदय शील और समृद्धशालिनी नगरी अयोध्या की तुम भलीभाँति रक्षा तो करते हो न।

इस प्रकार पौराणिक वाङ्मय में अयोध्या की राजनैतिक स्थिति का वर्णन सर्वत्र ओत–प्रोत है। वर्तमान के ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी अयोध्या का वर्णन अतिशयता के साथ पाया जाता है। विदेशी यात्रियों ने भी अपने यात्रा वृत्तान्त में अयोध्या का वर्णन किया है।

अयोध्या का इतिहास पृष्ठ 9 पर राय बहादुर लाल सीताराम ने लिखा है कि सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग अयोध्या आया था, उसने अपने यात्रा वृत्तान्त में अयोध्या को 'ओयूटी' लिखा है। यही नहीं वह इस नगर के बारे में कुछ विस्तार से जानकारी देता है– इस राज्य का क्षेत्रफल 5000 ली0 (चीनी माप) और राजधानी का क्षेत्रफल 20 ली0 है। यहाँ पर अन्न बहुत उत्पन्न होता है तथा सब प्रकार के फल–फूलों की अधिकता है यहाँ के लोग धार्मिक कृत्य से बड़ा प्रेम रखते हैं तथा विद्याभ्यास में विशेष परिश्रम करते हैं। सम्पूर्ण देशभर में लगभग 100 संघराम व 300 साधु हें जो हीनयान व महायान दोनों सम्प्रदायों की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं। लगभग 10 देव मन्दिर हैं जिनमें अनेक पथों के अनुयायी (बौद्ध धर्म के विरोधी) निवास करते हैं। परन्तु उनकी संख्या थोड़ी है।

वाल्मीकि रामयण में अयोध्या की स्थिति का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

कच्चिद् दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः।

यन्त्रैश्च प्रतिपूर्णानि तथाशिल्पीधनुर्धरैः।।[1]

अर्थात् श्री रामचन्द्र जी भरत से पूछ रहे हैं कि क्या तुम्हारे सभी दुर्ग धन–धान्य, अस्त्र–शस्त्र, जल यन्त्र, शिल्पी तथा धुनर्धर सैनिकों से भरे–पूरे रहते हैं।

अयोध्या की राजनैतिक सुरक्षा व्यवस्था के लिए महाराज दशरथ अन्य अनेक उपाय किया करते थे जिनका वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ में किया है।

ये च बाणैर्न विध्यन्ति विविक्तमपरा परम्।

शब्दवेध्यं च विततं लघुहस्ता विशारदा।।

सिंहव्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने।

हन्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद् बाहुबलैरपि।।

तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः।

पुरीमावसयामास राजा दशरथस्तदा।।

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां द्विजोतमैर्वेदषडंगपारगैः।

सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिःर्महर्षिकल्पै ऋषिभिश्च केवलैः।।[2]

अर्थात् जो अपने समूह से बिछड़कर असहाय हो गया है, जिसके आगे–पीछे कोई न हो (अर्थात् जो पिता और पुत्र दोनों से हीन हो) तथा जो शब्द भेदी बाण द्वारा बेधने योग्य हो अथवा युद्ध से हारकर भागे जा रहे हों, ऐसे पुरुषों पर जो लोग बाणों का प्रहार नहीं करते, जिनके सधे–सधाये हाथ शीघ्रतापूर्वक लक्ष्यवेध करने में समर्थ हैं, अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग में कुशलता

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/53
2. तदेव, बालकाण्ड, 5/20–23

प्राप्त कर चुके हैं तथा जो वन में गर्जते हुए सिंहों, व्याघ्रों और सुअरों को तीखे शस्त्रों से एवं भुजाओं के बल से भी बलपूर्वक मार डालने में समर्थ हैं, ऐसे सहस्त्रों महारथी वीरों से अयोध्यापुरी भरी पूरी थी। उसे महाराज दशरथ ने बसाया और पाला था। अग्निहोत्री, शम–दम आदि उत्तम गुणों से सम्पन्न तथा छहो अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदों के पारङ्गत विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण उस पुरी को सदा घेरे रहते थे। वे सहस्त्रों का दान करने वाले और सत्य में तत्पर रहने वाले थे। ऐसे महर्षि कल्प महात्माओं तथा ऋषियों से अयोध्यापुरी सुशोभित थी तथा राजा दशरथ उसकी रक्षा करते थे।

अन्यत्र वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता।

यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमतां।।

योधानामग्नि कल्पानां पेशलानाम महर्षिणाम्।

सम्पूर्णाकृतविधानां गुहा केसरिणामिव।।

काम्बोज विषये जातैर्बाह्लीकैश्च हयोत्तमैः।

वनायुजैनदीजैश्चपूर्णाहरिहयोत्तमैः।।

विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि।

मदान्वितैरति बलैर्मातङ्गै पर्वतोपमैः।।

ऐरावत कुलीनैश्च महापद्म कुलैस्तथा।

अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनदपि च द्विपैः।।

भद्रैर्मन्द्रैमृगैश्चैव भद्रमन्द्र मृगैस्तथा।

भद्रमन्द्रैर्भद्रमृगैमृगर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी।।

नित्य मत्तैः सदापूर्णा नागैरचल संनिभैः।

सा योजनेद्वे च भूयः सत्य नामाप्रकाशते। यस्यां दशरथो राजा वसञ्जगद पालयत।।

तां पुरी स महातेजा राजा दशरथो महान्।

शशास शमितोमित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः। तां सत्य नामा दृढ़ तोरणार्गतां ग्रहैर्विचित्र रूप शोभितां शिवाम्।

पुरीमयोध्यां नृसस्त्रं कुलां शशासवैशक्र समो महीपतिः।।[1]

अर्थात् इक्ष्वाकु कुल के स्वामी राजा दशरथ अयोध्यापुरी की रक्षा उसी प्रकार करते थे, जैसे बुद्धिमान् महाराज मनु ने पूर्वकाल में उसकी रक्षा की थी। शौर्य की अधिकता के कारण अग्नि के समान दुर्धर्ष, कुटिलता से रहित, अपमान को सहन करने में असमर्थ तथा अस्त्र–शस्त्रों के ज्ञाता योद्धाओं के समुदाय से वह पुरी उसी तरह से भरी–पूरी रहती थी, जैसे पर्वतों की गुफा सिंहों के समूह से परिपूर्ण होती है कम्बोज और बाह्लीक देश में उत्पन्न हुए उत्तम घोड़ों से वनायु देश के अश्वों से तथा सिन्धु नदी के निकट पैदा होने वाले दरियाई घोड़ों से, जो इन्द्र के अश्व उच्चैःश्रवा के समान श्रेष्ठ थे, अयोध्यापुरी भरी रहती थी। विन्ध्य और हिमालय पर्वतों में उत्पन्न होने वाले अत्यन्त बलशाली पर्वताकार मदमत्त गजराजों से भी वह नगरी परिपूर्ण रहती थी। ऐरावत कुल में उत्पन्न महापद्म के वंश में पैदा हुए तथा अञ्जन और वामन नामक दिग्गजों से भी प्रकट हुए हाथी उस पुरी की पूर्णता में सहायक हो रहे थे। हिमालय पर्वत पर उत्पन्न भद्र जाति के विन्ध्य पर्वत पर उत्पन्न हुए मन्द्र जाति के तथा सहयादि पर्वत पर पैदा हुए मृग जाति के हाथी भी वहाँ उपस्थित थे। भद्र, मन्द्र और मृग इन तीनों के मेल से उत्पन्न हुए सङ्कर

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 6/20–28

जाति के भद्र और मन्द्र इन दो जातियों के मेल से पैदा हुए सङ्कर जाति के तथा भद्र और मृग जातियों के संयोग से उत्पन्न सङ्कर जाति तथा मृग और मन्द्र इन दो जातियों के सम्मिश्रण से पैदा हुए पर्वताकार गजराज भी, जो सदा मनोन्मत्त रहते थे उस पुरी में भरे हुए थे। दो योजन की भूमि तो ऐसी थी जहाँ पहुँचकर किसी के लिए भी युद्ध करना असम्भव था, इसलिए वह पुरी 'अयोध्या' इस सत्य एवं सार्थक नाम से प्रकाशित होती थी, जिसमें रहते हुए राजा दशरथ इस जगत् का (अपने राज्य का) पालन करते थे। जैसे चन्द्रमा नक्षत्र लोक का शासन करते हैं, उसी प्रकार महातेजस्वी महाराज दशरथ अयोध्यापुरी का शासन करते थे। उन्होंने अपने समस्त शत्रुओं को नष्ट कर दिया था। जिसका अयोध्या नाम सत्य एवं सार्थक था जिसके दरवाजे और अर्गला सुदृढ़ थे। जो विचित्र गृहों से सदा सुशोभित थी, सहस्त्रों मनुष्यों से भरी हुई उस कल्याणपुरी का इन्द्रतुल्य तेजस्वी राजा दशरथ न्यायपूर्वक शासन करते थे।

यहाँ पर इन श्लोकों में अयोध्या की भौगोलिक सीमा 'सा योजने द्वे च भूयः' पर विशेष बल दिया गया है। परन्तु वास्तविक विस्तार 3 योजन बताया गया है। अर्थात् 3 योजन विस्तार में 2 योजन भूमि ऐसी थी जहाँ पर शत्रु द्वारा युद्ध असम्भव था।

महाराज दशरथ अत्यधिक प्रतापी राजा थे। उनके समय में अयोध्या की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त उत्तम थी जैसा कि वर्णन हो चुका है। वाल्मीकि रामायण में राजनीति के सन्दर्भ में ही राज मन्त्रियों का भी वर्णन आता है जो अयोध्या के राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए महाराज दशरथ के सहायक थे। अर्थशास्त्र में वर्णन आता है कि राज्य को सुचारू रूप से चलाने में मन्त्रि परिषद् का महत्त्वपूर्ण स्थान है– कौटिल्य ने मन्त्रि परिषद् के प्रमुख चार सदस्य बताये हैं, श्रेष्ठता के अनुसार जिनका क्रम है– मन्त्री, पुरोहित,

सेनापति, युवराज इनके अतिरिक्त पौर जानपद आदि भी परिषद् के सदस्य होते थे। अर्थशास्त्र में प्रोक्त है–

तान् राजा स्वविषये मन्त्रि पुरोहित सेनापति युवराज दौवारिकान्तर्वशिक प्रशास्तृ समाहर्तृ सन्निधातृ प्रदेष्ट नायक पौर व्यावहारिक कार्मान्तिक मन्त्रि परिषदध्यक्ष दण्ड दुर्गान्त पालातविकेषु श्रद्धेय वेष शिल्प भाषाभिजन्नाय देशान् भक्तितः सामर्थ्य योगाच्चाय सर्पयेत्।।[1]

अर्थात् राजा को चाहिए कि वह इन सत्री आदि गुप्तचरों के मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, ड्यौढ़ीदार, अन्तःपुर रक्षक, छावनी रक्षक, कलक्टर, कोशाध्यक्ष, कमिश्नर, हवलदार, नगर मुखिया, खदान निरीक्षक, मन्त्रि परिषद् का अध्यक्ष, सेना रक्षक, दुर्ग रक्षक, सीमा रक्षक और अटवी पाल आदि अधिकारियों के समीप, वेष बोली, कौशल भाषा तथा कुलीनता के आधार पर उनकी भक्ति और उनके सामर्थ्य की परीक्षा करके तब रवाना करे।

महाराज दशरथ के राज मन्त्रियों और पुरोहितों के गुणों का वर्णन वाल्मीकि रामायण में किया गया है–

तस्यामात्या गुणैशसन्निक्ष्वाको सुमहात्मनः।

मन्त्राज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहितेरताः।।

अष्टौ बभूवर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः।

शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः।।

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।

अकोपोधर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टयोऽर्थवित्।।

ऋत्विजौद्वावाभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ।

---

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 7/11/1

वासिष्ठौ वाम देवश्च मन्त्रिणश्च तथा परे।।

सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः काश्यपोऽत्यथागौतमः।

मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः।।

एतैर्बृहमर्षिभिर्नित्य मृत्विजस्तस्यपौर्षकाः।

विद्याविनीताह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः।।

श्रीमन्तश्च महात्मानः शस्त्रज्ञा दृढ़ विक्रमाः।

कीर्ति मन्तः प्राविहिता यथावचनकारिणः।।

तेजः क्षमा यशः प्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः।

क्रोधात् कामार्थहेतोर्वान ब्रूयुरनृतं वचः।।[1]

अर्थात् इक्ष्वाकुवंशी वीर महामना महाराज दशरथ के मन्त्रिजनोचित गुणों से सम्पन्न 8 मन्त्री थे, जो मन्त्र के तत्त्वों को जानने वाले और बाहरी चेष्टा देखकर हीमन के भाव को समझ लेने वाले थे। वे सदा ही राजा के प्रिय एवं हित में लगे रहते थे। इसीलिए उनका यश बहुत ही फैला हुआ था। वे सभी शुद्ध आचार–विचार से युक्त थे और राजकीय कार्यों में निरन्तर संलग्न रहते थे। उनके नाम इस प्रकार हैं– धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और आठवें सुमन्त्र जो अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे। ऋषियों में श्रेष्ठतम् वशिष्ठ और वामदेव ये दो महर्षि राजा के माननीय ऋत्विज् (पुरोहित) थे। इनके सिवा सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम दीर्घायु मार्कण्डेय और विप्रवर कात्यायन भी महाराज के मन्त्री थे। इन ब्रह्मऋर्षियों के साथ राजा के पूर्व परम्परागत ऋत्विज् भी विनयशील, सलज्ज, कार्य कुशल, जितेन्द्रिय, श्री सम्पन्न सदा मन्त्री का काम करते थे। वे सबके सब विद्वान् होने के कारण

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 7/1–8

महात्मा, शस्त्र विद्या के ज्ञाता, सुदृढ़ पराक्रमी, यशस्वी, समस्त राजकार्यों में सावधान, राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य करने वाले, तेजस्वी, क्षमाशील, कीर्तिमान् तथा मुस्कुराकर बात करने वाले थे। वे कभी काम, क्रोध या स्पर्धा के वशीभूत होकर झूठ नहीं बोलते थे।

उपर्युक्त वर्णन में महाराज दशरथ के 8 मन्त्रियों के नाम का वर्णन किया गया है तथा इसके अतिरिक्त 2 पुरोहित तथा सुयज्ञ इत्यादि 6 अन्य मन्त्रियों का उल्लेख मिलता है।

अर्थशास्त्र में भी मन्त्रियों की संख्या का उल्लेख किया गया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में वर्णन आता है।

1. मनु के अनुयायी अर्थशास्त्रविदों का इस सम्बन्ध में कहना है कि मन्त्रि परिषद् में 12 अमात्यों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
2. बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् 16 मन्त्रियों के पक्ष में हैं।
3. शुक्राचार्य पक्ष के अनुयायी आचार्य मन्त्रियों की संख्या 20 रखना अधिक उपयुक्त समझते हैं।
4. आचार्य कौटिल्य का कहना है कि कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।

अर्थशास्त्र में प्रोक्त है–

1. मन्त्रि परिषद् द्वादशामात्यान् कुर्वीतेति मानवाः।
2. षोडशेति बार्हस्पत्याः।
3. विंशति मित्यौशनसाः।

4. यथा सामर्थ्यमिति कौटिल्यः।[1]

कौटिलीय अर्थशास्त्र में मन्त्री के साथ राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए विविध प्रकार से सुपरीक्षित गुप्तचरों का वर्णन किया गया है। यहाँ पूर्व के श्लोक (7/11/1) में वर्णन किया गया है। इसी प्रकार से गुप्तचरों का वर्णन वाल्मीकि रामायण में भी आता है।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है कि मन्त्री राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए गुप्तचरों का सर्वत्र सहारा लेते थे–

तेषामविदितं किंचित स्वेषु नास्ति परेषु वा।

क्रियमाणं क्रतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम्।।

कुशला व्यवहारेषु सौह्रदयेष परीक्षिताः।

प्राप्त कालं यथा दण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि।।

कोश संग्रहणे युक्ता बलस्य च परिग्रहे।

अहितं चापि पुरुषं न हिस्युर विदूषकम्।।

वीराश्च नियतोत्साद्य राजशास्त्र मनुष्ठिताः।

शुचीनां रक्षितारश्च नित्यं विषयवासिनाम्।।

ब्रह्मक्षत्रमहिंसन्तस्ते कोशं समपूरयन्।

सुतीक्ष्ण दण्डाः सम्प्रेक्ष्य पुरुषस्य बलाबलम्।।

शुची नामेक बुद्धीनां सर्वेषां सम्प्रजानताम्।

नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित्।।

क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतिर्नरः।

---

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 10/14/1

प्रशान्तसर्वमेवासीद् राष्ट्रं पुरवरं च तत्।।

सुवाससः सुवेषाश्च ते च सर्वेशुचिवृताः।

हितार्थाश्च नरेन्द्रस्य जाग्रतो नय चक्षुषा।।

गुरोर्गुणग्रहीताश्च प्रख्यातश्च पराक्रमैः।

विदेशेष्वपि विज्ञाताः सर्वतो बुद्धि निश्चयाः।।

अभितो गुणवन्तश्च न चासन् गुणवर्जिताः।

सन्धिविग्रह तत्त्वज्ञाः प्रकृत्या सम्पदान्विता।।[1]

अर्थात् महाराज दशरथ के मन्त्रियों से अपने या शत्रु पक्ष के राजाओं की कोई भी बात छिपी नहीं रहती थी। दूसरे राजा क्या करते हैं, क्या कर चुके हैं और क्या करना चाहते हैं। ये सभी बातें गुप्तचरों द्वारा उन्हें मालूम होती रहती थीं। वे सभी व्यवहार कुशल थे। उनके सौहार्द की अनेक अवसरों पर परीक्षा ली जा चुकी थी। वे अवसर पड़ने पर अपने पुत्र को भी दण्ड देने में नहीं हिचकते थे। कोश संचय तथा चतुरङ्गिणी सेना के संग्रह में सदा लगे रहते थे। शत्रु ने भी यदि अपराध न किया हो तो वे उसकी हिंसा नहीं करते थे। उन सबमें सदा शौर्य एवं उत्साह भरा रहता था। वे राजनीति के अनुसार कार्य करते थे तथा अपने राज्य के भीतर रहने वाले सत्पुरुषों की सदा रक्षा करते थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियों को कष्ट न पहुँचाकर न्यायोचित धन से राजा का खजाना भरते थे। वे अपराधी पुरुष के बलाबल को देखकर उसके प्रति तीक्ष्ण अथवा मृत्यु दण्ड का प्रयोग करते थे। उन सबके भाव शुद्ध और विचार एक थे। उनकी जानकारी में अयोध्या पुरी अथवा कोशल राज्य के भीतर कहीं एक भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो मिथ्यावादी, दुष्ट और पर–स्त्री लम्पट है। सम्पूर्ण

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 7/9–18

राष्ट्र और नगर में पूर्ण शान्ति छायी रहती थी। उन मन्त्रियों के वस्त्र और वेष स्वच्छ एवं सुन्दर होते थे। वे उत्तम वृत का पालन करने वाले तथा राजा के हितैषी थे। नीति रूपी नेत्रों से देखते हुए सदा सजग रहते थे। अपने गुणों के कारण वे सभी मन्त्री गुरु तुल समादरणीय राजा के अनुग्रह पात्र थे। अपने पराक्रमों के कारण उनकी सर्वत्र ख्याति थी। विदेशों में भी सब लोग उन्हें जानते थे। वे सभी बातों में बुद्धि द्वारा भलीभाँति विचार करके किसी निश्चय पर पहुँचते थे। समस्त देशों और कालों में वे गुणवान् ही सिद्ध होते थे, गुणहीन नहीं। सन्धि और विग्रह के उपयोग और अवसर का उन्हें अच्छी तरह ज्ञान था। वे स्वभाव से ही सम्पत्तिशाली थे।

भगवान् श्रीराम चन्द्र जी ने गुप्तचरों के उचित प्रयोग का वर्णन किया है–

काच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दशपञ्च च।

त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः।।[1]

अर्थात् हे भरत क्या तुम शत्रु पक्ष के 18 तीर्थों की अर्थात् शत्रु पक्ष के 1. मन्त्री, 2. पुरोहित, 3. सेनापति, 4. द्वारपाल, 5. अन्तर्वेशिक, 6. युवराज, 7. कारागाराध्यक्ष, 8. कोषाध्यक्ष, 9. सचिव, 10. प्रदेष्टा, 11. नगराध्यक्षख 12. कार्य निर्माणकर्त्ता, 13. धर्माध्यक्ष, 14. सभाध्यक्ष, 15. दण्डपाल, 16. दुर्गपाल, 17. राष्ट्रपाल, 18. वनरक्षक तथा अपने पक्ष के 15 तीर्थों (मन्त्री, पुरोहित, युवराज को छोड़कर) की तीन–तीन अज्ञात् गुप्तचरों द्वारा देखभाल या जाँच–पड़ताल करते रहते हो?

वाल्मीकि रामायण में सन्धि विग्रह शब्दों का प्रयोग हुआ है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी षाड्गुण्य समुद्देश में उल्लेख किया है–

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/36

1. षाड्गुणस्य प्रकृति मण्डलं योनिः।

2. सन्धि विग्रहासनयान द्वैधी भावाः षाड्गुण्यभित्या चार्याः।

3. द्वैगुण्यमिति वात व्याधिः सन्धि विग्रहाभ्याभ्यां हि षाड्गुण्यं सम्पद्यत इति।

4. षाड्गुण्यमेवैतदवस्था भेदादिति कौटिल्यः।

5. तत्रपणबन्धः सन्धि, अपकारो विग्रहः, उपेक्षणमासनम्, अभ्युच्चयो यानं, परार्पणं संश्रयः, सन्धि विग्रहोपादानं द्वैधी भाव इति षड्गुणाः।[1]

अर्थात्

(1) सात प्रकृतियाँ और बारह राजमण्डल ही छः गुणों के आधार हैं।

(2) पुरातन आचार्यों ने 1. सन्धि, 2. विग्रह, 3. यान, 4. आसन, 5. संश्रय, 6. द्वैधी भाव ये 6 गुण बताये हैं।

(3) आचार्य वातव्याधि का कहना है कि गुण तो 2 ही हैं। सन्धि और विग्रह शेष उनके अवान्तर भेद हैं।

(4) किन्तु आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि गुण तो 6 ही हैं। सन्धि और विग्रह से शेष चार गुण सर्वथा भिन्न हैं। इसलिए इन दोनों में उनका अन्तर्भाव कैसे सम्भव है।

(5) उनमें 2 राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना सन्धि, शत्रु का कोई अपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, चढ़ाई करना यान, आत्मसमर्पण करना संश्रय और सन्धि विग्रह दोनों से काम लेकर द्वैधी भाव कहलाता है, यही 6 गुण हैं।

इसके अतिरिक्त कौटिल्य अर्थशास्त्र में विनयाधिकारिक नामक प्रथम अधिकरण में मन्त्राधिकार नामक प्रकरण में आता है–

---

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 7/98/1

तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किञ्चिच्चिकीर्षितम्।

आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा।।[1]

अर्थात् गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पावे। केवल कार्यारम्भ करने वाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सकें और उन्हें भी उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो।

वाल्मीकि रामायण में भी अयोध्या की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति में मन्त्रणा के सम्बन्ध में वर्णन आता है–

मन्त्र संवरणे शक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु।

नीतिशास्त्र विशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः।।

ईदृशैस्ते रमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः।

उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद् वसुन्धराम्।।

अवेक्ष्यमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रक्षयन्।

प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन्।।

विश्रुतास्त्रिषु लोकेषु वदान्यः सत्यसंगरः।

स तत्र व्याघ्रः शशास पृथिवीभिमाम्।।

नाध्यगच्छद्रिशिष्टं वा तुल्यं वा शत्रुमात्मनः।

मित्र वान्नत सामन्तः प्रताप हत कण्टकः।

स शशास जगद् राजा दिवि देवपतिर्यथा।।

तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्र हिते निविष्टैवृतोऽनुरक्तैः कुशलैः समर्धैः।

स पार्थिवो दीप्तिमवाप युक्तस्तेजो मयैगोभिरिवोदितोऽर्कः।।[2]

---

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 10/14/2
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 7/19–24

अर्थात् राजा दशरथ के मन्त्रियों में राजकीय मन्त्रणा को गुप्त रखने की पूर्ण शक्ति थी। वे सूक्ष्म विषय का विचार करने में कुशल थे। नीतिशास्त्र में उनकी विशेष जानकारी थी तथा वे सदा ही प्रिय लगने वाली बात बोलते थे। ऐसे गुणवान् मन्त्रियों के साथ रहकर निष्पाप राजा दशरथ उस भूमण्डल का शासन करते थे।

वे गुप्तचरों के द्वारा अपने और शत्रु राज्य के वृत्तान्तों पर दृष्टि रखते थे। प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करते थे तथा प्रजापालन करते हुए अधर्म से दूर ही रहते हैं। उनकी तीनों लोकों में प्रसिद्धि थी। वे उदार और सत्य प्रतिज्ञ थे। पुरुष सिंह राजा दशरथ अयोध्या में ही रहकर इस पृथ्वी का शासन करते थे। उन्हें कभी अपने से बड़ा अथवा अपने समान भी कोई शत्रु नहीं मिला। उनके मित्रों की संख्या बहुत थी। सभी सामन्त उनके चरणों में मस्तक झुकाते थे। उनके प्रताप से राज्य के सारे कण्टक (शत्रु एवं चोर आदि) नष्ट हो गये थे। जैसे– देवराज इन्द्र स्वर्ग में रहकर तीनों लोकों का पालन करते थे, उसी प्रकार राजा दशरथ अयोध्या में रहकर सम्पूर्ण जगत् का शासन करते थे। उनके मन्त्री मन्त्रणा को गुप्त रखने तथा राज्य के हित साधन में संलग्न रहते थे। वे राजा के प्रति अनुरक्त कार्यकुशल और शक्तिशाली थे। जैसे सूर्य अपनी तेजोमयी किरणों के साथ उदित होकर प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार राजा दशरथ उन तेजस्वी मन्त्रियों से घिरे रहकर बड़ी शोभा पाते थे।

मन्त्रणा के सम्बन्ध में ही वाल्मीकि रामायण में अन्यत्र प्रोक्त है–

कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन् बहुभिः सह।

कच्चित् ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं नपरिधावति।।[1]

अर्थात् श्रीराम कहते हैं कि, हे भरत! कोई भी गुप्त मन्त्रणा दो से चार कानों तक ही गुप्त रहती है, छः कानों में जाते ही वह फूट जाती है, अतः मैं

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/18

पूछता हूँ तुम किसी गूढ़ विषय पर अकेले ही तो विचार नहीं करते? अथवा बहुत लोगों के साथ बैठकर तो मन्त्रणा नहीं करते, कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त मन्त्रणा फूटकर शत्रु के राज्य तक फैल जाती हो।

अन्यत्र प्रोक्त है–

मन्त्रभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा।

कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मन्त्रयसेबुध।।[1]

अर्थात् विद्वान् क्या तुम नीतिशास्त्र की आज्ञा के अनुसार चार या तीन मन्त्रियों के साथ सबको एकत्र करके अथवा सबसे अलग–अलग मिलकर मन्त्रणा करते हो।

राजा दशरथ के पास चतुरङ्गिणी सेना थी जिसके विषय में वर्णन आता है। जब महाराजा दशरथ श्री रामचन्द्र जीके विवाह के लिए मिथिला नगरी जाने को उद्धत होते हैं तब वे मन्त्री सुमन्त्र को आदेश देते हैं–

चतुरङ्ग बलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः।

ममाज्ञा समकालं च यानं युग्युमनुत्तमम्।।[2]

अर्थात् सारी चतुरङ्गिणी सेना भी यहाँ से कूच कर दे। अभी मेरी आज्ञा सुनते ही सुन्दर–सुन्दर पालकियाँ और अच्छे–अच्छे घोड़े आदि वाहन तैयार होकर चल दें। ज्ञातव्य है कि चतुरङ्गिणी सेना में हाथी, घुड़सवार, रथ तथा पैदल सैनिक आते हैं।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/71
2. तदेव, बालकाण्ड, 69/3

महाराजा दशरथ के सैनिक अत्यन्त वीर तथा पराक्रमी थे। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

दीर्घासिबद्ध गोधाश्च संनद्धा मृष्टवाससः।

महाराजाङ्गनं शूराः प्रविशन्तु महोदयम्।।[1]

अर्थात् लम्बी तलवार लिए और गोधाचर्म के बने दास्ताने पहने और कमर कसकर तैयार रहने वाले शूरवीर योद्धा स्वच्छ वस्त्र धारण किये महाराज के महान् अभ्युदयशाली आङ्गन में प्रवेश करें।

स्वयं महाराज दशरथ के महल सदैव धनुर्धर वीरों द्वारा सुरक्षित रहते थे और कई सुरक्षित ड्योढ़ियों के पश्चात् महाराज का निवास स्थान होता था–

स कक्ष्याधान्विभिर्गुप्तास्तिस्त्रोऽति क्रम्य वाजिभिः।

पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नरोत्तमः।।

स सर्वाः समति क्रम्य कक्ष्या दशरथात्माजः।

संनिवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तः पुरमत्य गात्।।[2]

अर्थात् उन्होंने (श्रीरामचन्द्र जी ने) धनुर्धर वीरों द्वारा सुरक्षित महल की तीन ड्योढ़ियों को तो घोड़े जुते हुए रथ से ही पार किया। फिर 2 ड्योढ़ियों में वे पुरुषोत्तम राम पैदल ही गये।

इस प्रकार समस्त ड्योढ़ियों को पार करके दशरथ नन्दन श्रीराम साथ आये हुए सब लोगों को लौटाकर स्वयं अन्तःपुर में गये।

अयोध्या में नगर की सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने वाले अनेकानेक पुरुष थे जो विभिन्न प्रकार के कर्मों में अति कुशल थे। जब भरत जी श्री

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 3/19
2. तदेव, 28/20–21

रामचन्द्र जी को अयोध्या वापस लाने के लिए उद्धत होते हैं तब अयोध्या से गङ्गा तट तक सुखद राजमार्ग का निर्माण किया गया था उस समय विभिन्न कर्मों में कुशल पुरुषों के कार्य का वर्णन प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

अध भूमि प्रदेशाज्ञाः सूत्रकर्म विशारदाः।

स्वकर्म भिरता शूरा खनका यन्त्रकास्तथा।।

कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषः यन्त्र कोविदाः।

तथा वर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्ष तक्षकाः।।

सूपकारा सुधाकारा वंश चर्मकृतस्तथा।

समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे।।[1]

अर्थात् तत्पश्चात् ऊँची–नीची एवं सजल–निर्जल भूमि का ज्ञान रखने वाले सूत्र कर्म (छावनी आदि बनाने के लिए सूत धारण करने वाले) में कुशल मार्ग की रक्षा आदि अपने कर्म में सदा सावधान रहने वाले शूरवीर भूमि खोदने या सुरङ्ग बनाने वाले, नदी आदि पार करने के लिए तुरन्त साधन उपस्थित करने वाले अथवा जल के प्रवाह को रोकने वाले वेतनभोगी कारीगर, थवई, रथ और यन्त्र आदि बनाने वाले पुरुष बढ़ई, मार्गरक्षक, पेड़ काटने वाले, रसोइये, चूने से पोतने आदि का कार्य करने वाले, बांस की चटाई और सूप आदि बनाने वाले, चमड़े का चारजामा आदि बनाने वाले तथा रास्ते की विशेष जानकारी रखने वाले सामर्थ्यशाली पुरुषों ने पहले प्रस्थान किया।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि अयोध्या की राजनैतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि अत्यन्त समृद्ध थी। महाराजा भरत को जिस

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 80/1–3

मार्ग से श्री रामचन्द्र जी के पास जाना था उसे अयोध्यावासियों ने अत्यन्त सुविधापूर्ण बना दिया था–

बहुपां सुचयाश्चापि परिखाः परिवारितः।

ततेन्द्रनील प्रतिमाः प्रतोली वरशोभिताः।।

प्रासाद माला संयुक्ताः सौधप्राकार संवृताः।

पताका शोभिताः सर्वे सुनिर्मित महापथाः।।

विसर्पद्भिरि वाकाशे विटङ्कागविमानकैः।

समुच्छ्रितैर्निवेशान्ते बभुः शक्रपुरोपमाः।।[1]

मार्ग में बने हुए निवेश (विश्राम स्थान) इन्द्रपुरी के समान शोभा पाते थे। उनके चारों ओर खाइयाँ खोदी गयी थीं, धूल मिट्टी के ऊँचे ढेर लगाये गये थे। खेमों के भीतर इन्द्रनील मणि की बनी हुई प्रतिमाएँ सजायी गयी थीं। गलियों और सड़कों से उनकी विशेष शोभा होती थी। राजकीय ग्रहों और देव स्थानों से युक्त वे शिविर चूने से पुते हुए प्राकारों (चहार दीवारी) से घिरे थे। सभी विश्राम स्थान पताकाओं से सुशोभित थे। सर्वत्र बड़ी–बड़ी सड़कों का सुन्दर विधि से निर्माण किया गया था। विटङ्को (कबूतरों के रहने का स्थान) और ऊँचे–ऊँचे श्रेष्ठ विमानों के कारण उन सभी शिविरों की बड़ी शोभा हो रही थी।

अयोध्या की तत्कालीन उत्तम राजनीतिक स्थिति का वर्णन वाल्मीकि रामायण में दृष्टिगोचर होता है जहाँ पर श्रीरामचन्द्र जी भरत से अयोध्या की राजनैतिक स्थिति की जानकारी लेते हुए पूछते हैं–

कच्चिन्मुख्या महत्स्वेवमध्यमेषु च मध्यमाः।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 80/18–20

जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः।।

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैता महान् शुचीन्।

श्रेष्ठान् श्रेष्ठेषु कच्चितत्वं नियोजयसि कर्मसु।।

कच्चिनोग्रेण दण्डेनभ्रशमुद्वेजिताः प्रजाः।

राष्ट्रे तवाव जानन्ति मन्त्रिणः कैकेयी सुत।।

कच्चित् त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा।

उग्र प्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः।।

उपाय कुशलं वैद्यं भृत्य संदूषणेरतम्।

शूरमैश्वर्य कामं च यो हन्ति न स हन्यते।।

कच्चिद् धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान् मतिमान् शुचिः।

कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः।।

बलवन्तश्च कच्चित् ते मुख्या युद्धविशारदाः।

द्रष्टापदानाविक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः।।

कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।

सम्प्रातकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे।।

कालाति क्रमणे हयेव भक्त वेतनयो भृताः।

भर्तुरप्यति कुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् कृतः।।[1]

अर्थात् तात्! तुमने प्रधान व्यक्तियों को प्रधान, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मध्यम और छोटी श्रेणी के लोगों को छोटे ही कामों में नियुक्त किया है न, जो घूस न लेते हों अथवा निश्छल हों, बाप दादों के समय से ही काम करते

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/25–33

आ रहे हों तथा बाहर भीतर से पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्यों को ही तुम उत्तम कार्यों में नियुक्त करते हो न। कैकेयी कुमार तुम्हारे राज्य की प्रजा कठोर दण्ड से अत्यन्त उद्विग्न होकर तुम्हारे मन्त्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती?

जैसे पवित्र याजक पतित यजमान् का तथा स्त्रियाँ कामचारी पुरुष का तिरस्कार कर देती हैं। उसी प्रकार प्रजा कठोरता पूर्वक अधिक कर लेने के कारण तुम्हारा अनादर तो नहीं करती? जो साम, दान आदि उपायों के प्रयोग में कुशल राजनीतिशास्त्र का विद्वान्, विश्वासी भृत्यों को फोड़ने में लगा हुआ, शूर (मरने से न डरने वाला) राजा के राज्य को हड़प लेने की इच्छा रखने वाला है। ऐसे पुरुष को जो राजा नहीं मार डालता है, वह स्वयं उसके हाथ से मारा जाता है। क्या तुमने सदा संतुष्ट रहने वाले, शूरवीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन एवं अपने में अनुराग रखने वाले रण कर्म दक्ष पुरुष को ही सेनापति बनाया है?

तुम्हारे प्रधान–प्रधान योद्धा बलवान्, युद्ध कुशल और पराक्रमी तो हैं न? क्या तुमने उनके शौर्य की परीक्षा कर ली है? तथा क्या वे तुम्हारे द्वारा सत्कार पूर्वक सम्मान पाते रहते हैं? सैनिकों को देने के लिए नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता तुम समय पर देते हो न? देने में विलम्ब तो नहीं करते? यदि समय बिताकर भत्ता और वेतन दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामी पर भी अत्यन्त कुपित हो जाते हैं और इसके कारण बड़ा भारी अनर्थ हो जाता है।

महाराज भरत जब नन्दीग्राम में रहकर अयोध्या का शासन कर रहे थे तो उनके मन्त्री पुरोहित इत्यादि भी उन्हीं के जैसा आचरण करते थे–

चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात्।

उपस्थित ममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः।।

बल मुख्यैश्च युक्तैश्च काषायम्बर धारिभिः।।[1]

अर्थात् भरत जी चारों वर्णों की प्रजाओं को सब प्रकार के भय से सुरक्षित रखते थे। उनके पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी योगयुक्त होकर रहते थे और गेरुए वस्त्र पहनते थे।

अयोध्या की राजनैतिक स्थिति का वर्णन वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है जब भगवान् श्रीरामचन्द्र जी वनवास से वापस आते हैं तब उनकी आगवानी करने के लिए अयोध्यावासी जाते हैं–

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थश्चार्थ साधकः।

अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः।

मतैर्नाग सहस्त्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः।

अपरेहेमकक्षाभिः सगजाभि करेणुभिः।।

निर्ययुस्तुरगा क्रान्ता रथैश्च सुमहारथाः।

शक्त्यृष्टिपाशहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम्।।

तुरगाणां सहस्त्रैश्च मुख्यैर्मुख्यतरान्वितैः।

पदातीनां सहस्त्रैश्च वीराः परिवृता ययुः।।[2]

अर्थात् धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त ये आठों मन्त्री ध्वजा और आभूषणों से विभूषित मतवाले हाथियों पर चढ़कर चले। दूसरे बहुत से महारथी वीर सुनहरे रस्सों से कसी हुई हथिनियों, हाथियों, घोड़ों और रथों पर सवार होकर निकले। ध्वजा पताकाओं से विभूषित

---

1. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 125/33
2. तदेव, 127/11–14

हजारों अच्छे–अच्छे घोड़ों और घुड़सवारों तथा हाथों में शक्ति, ऋष्टि और पाश धारण करने वाले सहस्त्रों पैदल योद्धाओं से घिरे हुए वीर पुरुष श्रीराम की आगवानी के लिए चले।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में नाटकों में विदूषक का चरित्र चित्रण प्राप्त होता है जो कि राजा का मित्र तथा हास्यप्रद वेशभूषा आदि के द्वारा राजा को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया करता है। साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने विदूषक को परिभाषित करते हुए लिखा है–

कुसुमवसन्ताद्याभिधः कर्मणपुर्वेशभाषाद्यैः।

हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः।।[1]

अर्थात् किसी फूल अथवा वसन्तादिक पर जिसका नाम हो और जो अपनी क्रिया, देह, वेश और भाषा आदि से हँसाने वाला हो, दूसरों को लड़ाने में प्रसन्न रहता हो और अपने मतलब का पूरा हो अर्थात् अपने खाने–पीने की बात कभी न भूले वह पुरुष विदूषक कहलाता है।

आचार्य धनञ्जय कृत दशरूपक में भी प्रोक्त है–

एक विधो विटश्चान्यो, हास्य कृच्च विदूषकः।

हास्यकारी विदूषकः अस्य विकृताकारवेषादित्त्वं हास्यकारित्वेनैव लभ्यते।।[2]

अर्थात् विदूषक नाटक का मजाकिया पात्र होता है। विदूषक के अजीब तरह के आकार व वेशभूषा हास्य के उत्पन्न करने वाले हैं।

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में विदूषकों का वर्णन प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

तत्रोपविष्टं राजानमुपासन्ते विचक्षणाः।

---

1. साहित्यदर्पण, 3/42
2. दशरूपक, 2/9

कथानां बहुरूपाणां हास्यकाराः समन्तत।।

विजयो मधुमतश्च काश्यपो मङ्गल कुलः।

सुराजिः कालियो भद्रो दन्तवक्त्रः सुमागधः।।

एते कथा बहुविधाः परिहास समन्विता।

कथयन्तिस्म संहृष्टा राघवस्य महात्मनः।।[1]

अर्थात् वहाँ बैठे हुए महाराज श्रीराम के पास अनेक प्रकार की कथाएँ कहने में कुशल हास्य विनोद करने वाले सखा सब ओर से आकर बैठते थे। उन सखाओं के नाम इस प्रकार हैं– विजय, मधुमत्त, काश्यप, मङ्गलकुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्त्र और सुमागध ये सब लोग बड़े हर्ष से भरकर महात्मा श्री रघुनाथ जी के सामने अनेक प्रकार की हास्य विनोदपूर्ण कथाएँ कहा करते थे।

अन्यत्र भगवान् श्रीरामचन्द्र जी अनुज शत्रुघ्न को राज्य को सुचारूप रूप से चलाने के लिए सेना का महत्त्व बताते हैं–

नह्यर्थास्तत्र तिष्ठन्ति न दारा न च बान्धवाः।

सुप्रीतो भृत्यवर्गस्तु यत्र तिष्ठति राघवः।।[2]

अर्थात् हे रघुनन्दन अत्यन्त प्रसन्न रखे गये सेवक समूह (सेना) जहाँ जिस सङ्कटकाल में खड़े होते या साथ देते हैं, वहाँ न तो धन टिक पाता है, न स्त्री ठहर सकती है और न भाई बन्धु ही खड़े हो सकते हैं अतः उन सबको संतुष्ट रखना चाहिए।

---

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 43/1–3
2. तदेव, 64/6

इस प्रकार पौराणिक वाङ्मय से लेकर आद्यतन संस्कृत साहित्य में अयोध्या की राजनैतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि का स्थाने–स्थाने वर्णन प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में तो तत्कालीन अयोध्या की राजनैतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि का उत्कर्षपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है जिससे विदित होता है कि अयोध्या प्राचीनकाल से ही अत्यन्त समृद्ध एवं सम्पन्न नगरी थी।

*****

सप्तम अध्याय

अयोध्या का धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व

प्राचीनकाल से ही अयोध्या नगरी अत्यन्त धार्मिक नगरी के रूप में विख्यात् है। अथर्ववेद[1] से लेकर सम्पूर्ण पौराणिक वाङ्मय अयोध्या नगरी की धार्मिकता, दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत है। अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी राजा अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे। स्कन्द पुराण में महाराज रघु की दानशीलता तथा धार्मिकता के वर्णन में प्रोक्त है–

नृपञ्चक्रे ततो राज्ञं विश्वदिग्जयसञ्ज्ञितम्।

नाना सम्भार मधुरकृतं सर्वस्व दक्षिणम्।।

नानाविधेन दानेन मुनि सन्तोष हर्षकृता।

सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः।।

तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान्।

बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च।।[2]

अर्थात् महाराजा रघु ने विविध मधुर द्रव्य के ढेर को मँगवाकर अपना सर्वस्व दक्षिणा के रूप में देकर विश्रजित् यज्ञाचरण किया। उनके यज्ञ में मुनियों ने अनेक प्रकार के दान को ग्रहण किया था तथा अत्यन्त संतुष्ट हो गये। तदनन्तर सभी हर्षित होकर राजा द्वारा पूजित होकर स्वग्रह चले गये।

अयोध्या में यज्ञादि क्रियाएँ अत्यन्त विधि–विधान से सम्पन्न होती थीं। महाराजा सगर जो श्री भगवान् श्रीराम के पूर्वज थे उनके यज्ञ के विषय में बताते हुए महर्षि वाल्मीकि ने कहा है कि जब इन्द्र ने महाराजा सगर के यज्ञ का अश्व चुरा लिया तो उन्होंने स्वयं को यज्ञ में दीक्षित होने के कारण स्वयं न जाकर अपने पुत्रों को भेजा अर्थात् स्वयं या स्थान छोड़कर नहीं जा सकते थे।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 4/48–50
2. अष्टाचक्रा नवद्वारां देवानां पूरयोध्या।, अथर्ववेद संहिता, 10/2/31

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

दीक्षितः पौत्र सहितः सोपाध्यायगणस्त्वहम्।

इह स्थास्यामिभद्रंवोयावत् तुरग दर्शनम्।।[1]

अर्थात् महाराजा सगर ने अपने साठ हजार पुत्रोंको बुलाकर कहा कि मैं यज्ञ की दीक्षा ले चुका हूँ, अतः स्वयं उसे ढूँढने के लिए नहीं जा सकता, इसलिए जब तक उस अश्व का दर्शन नहीं तब तक मैं उपाध्यायों के साथ और पौत्र अंशुमान के साथ यहीं रहूँगा।

महाभारत के द्रोणपर्व में अयोध्या की धार्मिक स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है–

ब्याप्यं कृत्स्नं जगत् कीर्त्या सुरर्षिगण सेवितः।

स प्राप्य विधिवद् राज्यंसर्वभूतानुकम्पका।।

आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन्।

निरर्गलं राजसूयमश्वमेधं च तं विभुः।।

आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत्।

अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः।।[2]

अर्थात् देवर्षिगणों से सेवित श्रीराम ने विधिपूर्वक राज्य पाकर अपनीकीर्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर दिया और समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करते हुए वे धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे, भगवान् राम ने निर्बाध रूप से राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया और देवराज इन्द्र ने हविष्य से तृप्त करके उन्हें आनन्द प्रदान किया। राजा राम ने नाना प्रकार के दूसरे यज्ञ भी किये जो अनेक गुणों से सम्पन्न थे।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 39/16
2. महाभारत, 59/8–10

नाहीयत् प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा।

प्राणोऽपानः समानाश्च रामे राज्यं प्रशासति।

पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदानर्थाश्वनाभवन्।

दीर्घा युषः प्रजाः सर्वायुवा न म्रियते तदा।।

वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीता प्राप्नुवन्ति दिवौकसः।

हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्ते हुतमेव च ।।[1]

अर्थात् राम राज्य में प्राणियों के प्राण, अपान और समान आदि प्राण वायु का क्षय नहीं होता था। इस नियम में कोई हेर–फेर नहीं था। सब ओर यज्ञ स्वरूप अग्नि देव प्रज्जवलित होते रहते थे। उन दिनों किसी प्रकार का अनर्थ नहीं होता था। सारी प्रजा दीर्घायु होती थी किसी युवक की मृत्यु नहीं होती थी। चारों वेदों के स्वाध्याय से प्रसन्न हुए देवता तथा पितृगण नाना प्रकार के हव्य और कव्य प्राप्त करते थे। सब ओर इष्ट (यज्ञ–यागादि) और पूर्त (वापी, कूप, तडाग) और वृक्षारोपण आदि का अनुष्ठान होता रहता था।

वाल्मीकि रामायण में महाराजा सगर के पौत्र अंशुमान, दिलीप, भगीरथ इत्यादि जो उत्तरोत्तर अयोध्या के राजा हुए। इनका वर्णन है जिससे अयोध्या की धार्मिक स्थिति का पता चलता है। माहराजा सगर के पौत्र अंशुमान अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे–

द्वात्रिशच्छत साहस्रं वर्षाणिसुमहायशाः।

तपोवन गतो राजा स्वर्गं लेभे तपोधनः।।[2]

---

1. महाभारत, 59/13–15
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 42/4

अर्थात् महान् यशस्वी राजा अंशुमान ने उस तपोवन में जाकर बत्तीस हजार वर्षों तक तप किया। तपस्या के धन से सम्पन्न हुए उस नरेश ने वहीं शरीर त्याग कर स्वर्गलोक को प्राप्त किया।

इसी वंश के राजा दिलीप जो महाराजा भगीरथ के पिता तथा अंशुमान के पुत्र थे। उनके विषय में वर्णन आया है–

दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान्।

त्रिंशद्वर्षसहस्त्राणि राजा राज्यमकारयत्।।[1]

अर्थात् महातेजस्वी दिलीप ने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान तथा तीस हजार वर्षों तक राज्य किया। इक्ष्वाकुवंशीय महाराजा भगीरथ अत्यन्त धर्मात्मा तथा दृढ़ तपस्वी थे जिन्होंने अपने तप से गङ्गा जी को पृथ्वी पर लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। उन्होंने अत्यन्त कठिन तपस्या की थी–

ऊर्ध्वबाहुः पञ्चतपा मासाहारो जितेन्द्रियः।

तस्यवर्ष सहस्राणि घोरे तपसि तिष्ठतः।।

अतीतानि महाबाहो तस्य राज्ञो महात्मनः।

सुप्रीतो भगवान् ब्रह्मा प्रजानां प्रभुरीश्वरः।।[2]

अर्थात् महाराजा भगीरथ अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर पञ्चाग्नि सेवन करते और इन्द्रियों को वश में रखकर एक–एक महीने पर आहार ग्रहण करते थे। इस प्रकार घोर तपस्या में लगे हुए महात्मा राजा भगीरथ के एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 42/8
2. तदेव, 42/13–14

इसी प्रकार महाराजा रघु, दिलीप, अज, दशरथ इत्यादि अयोध्या के समस्त इक्ष्वाकुवंशीय राजा अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे। महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् में इसका अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। रघुवंशम् में प्रोक्त है–

सोऽहमाजन्म शुद्धानाम फलोदय कर्मणाम्।

आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्।।

यथाविधि हुताग्नीनां यथा कामार्चितार्थिनाम्।

यथाऽपराध दण्डानां यथा कालप्रबोधिनाम्।।

त्यागाय संभ्रतार्थानां सत्यायमितभाषिणाम्।

यशसेविजिगीषूणां प्रजायै गृह मेधिनाम्।।

शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।

वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनु त्यजाम्।।

रघुणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपिसन्।

तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।।[1]

अर्थात् जन्म से ही शुद्ध, फल की प्राप्ति तक कर्म करने वाले, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी, स्वर्ग तक रथ को ले जाने वाले, विधिपूर्वक यज्ञों से अग्नि को तृप्त करने वाले, याचकों को मनोनुकूल दान देने वाले, अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, उचित समय पर जागरूक, दान के लिए धन का संग्रह करने वाले, सत्य के लिए कम बोलने वाले, यश की इच्छा से विजय चाहने वाले, सन्तान के लिए विवाह करने वाले, बाल्यावस्था में विद्या पढ़ने वाले, युवावस्था में भोग की इच्छा रखने वाले, वृद्धावस्था में मुनियों की भाँति जङ्गलों में रहकर तपस्या करने वाले और अन्त में योगाभ्यास के द्वारा शरीर

1. रघुवंशम्, 1/5–9

त्यागने वाले, रघुवंशियों के गुणों से आकृष्ट होकर मैं अल्पमति होकर भी उनके वंश का वर्णन करूँगा।

इस प्रकार अयोध्या की धार्मिक स्थिति की समीक्षा की जा सकती है कि पौराणिक वाङ्मय सेलेकर आद्यतन संस्कृत साहित्य में अयोध्या के धार्मिक राजाओं का वर्णन स्थाने–स्थाने प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण तो अयोध्या की धार्मिकता से ओत–प्रोत है। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सर्वे नराश्चनार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयता।

मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः।।[1]

अर्थात् अयोध्या के सभी स्त्री–पुरुष धर्मशील, संयमी, सदा प्रसन्न रहने वाले तथा शील और सदाचार की दृष्टि से महर्षियों की भाँति निर्मल थे।

अन्यत्र प्रोक्त है–

नानाहिताग्निर्नायज्वा न छुद्रो वा न तस्करः।

कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृतो न संकरः।।

स्वकर्म निरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।

दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रति ग्रहे।।

नास्तिको नानृती वापि न कश्चिद् बहुश्रुतः।

ना सूयको न चा शक्तो नाविद्वान विद्यते क्वचित्।।

नाषडंगविदत्रास्ति नावृतो ना सहस्त्रदः।

न दीनः क्षिप्त चित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन्।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 6/9
2. तदेव, 6/12–15

अर्थात् अयोध्या में कोई भी ऐसा नहीं था, जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो, जो छुद्र, चोर, सदाचार शून्य अथवा वर्णसङ्कर हो। वहाँ निवास करने वाले ब्राह्मण सदा अपने कर्मों में लगे रहते इन्द्रियों को वश में रखते, दान और स्वाध्याय करते तथा प्रतिग्रह से बचे रहते थे। वहाँ कहीं एक भी ऐसा द्विज नहीं था जो नास्तिक असत्यवादी, अनेक शास्त्रों के ज्ञान से रहित, दूसरों के दोष ढूँढने वाला साधन में असमर्थ और विद्याहीन हो। उस पुरी में वेद के छहों अङ्गों को न जानने वाला, व्रतहीन, सहस्त्रों से कम दान देने वाला दीन, विक्षिप्त चित्त अथवा दुःखी भी कोई नहीं था।

भगवान् श्रीराम के पिता महाराजा दशरथ अत्यन्त धार्मिक थे। उनके द्वारा किये गये यज्ञ का वर्णन वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है–

विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति।

तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते।।

तथा विधानं क्रियतां समर्थाः साधनेष्विति।

तथेति चाब्रुवन् सर्वे मन्त्रिणः प्रतिपूजिताः।।[1]

अर्थात् महाराजा दशरथ ने अपने पुरोहितों और ऋत्विजों से कहा कि विधिहीन यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले यजमान तत्काल नष्ट हो जाते हैं, अतः मेरा यह यज्ञ जिस तरह विधिपूर्वक सम्पन्न हो सके वैसा उपाय किया जाये।

तुम सब लोग ऐसे साधन प्रस्तुत करने में समर्थ हो, महाराजा दशरथ ने ऋष्यशृङ्ग के द्वारा एक पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाया था वह स्थान आज भी अयोध्या में प्रसिद्ध स्थलों में से एक है–

गुरूणां वचनाच्छीघ्रं सम्भाराः सम्भ्रियन्तु मे।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 8/18–19

समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायोविमुच्यताम्।।

सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञ भूमिर्विधीयताम्।

शान्तयश्चाभिवर्धन्ता यथा कल्पं यथा विधि।।[1]

अर्थात् गुरुजनों की आज्ञा के अनुसार तुम लोग शीघ्र ही मेरे लिए यज्ञ की सामग्री जुटा दो। शक्तिशाली वीरों के संरक्षण में यज्ञिय अश्व छोड़ा जाये और उसके साथ प्रधान ऋत्विज भी रहें। सरयू के उत्तर तट पर यज्ञभूमि का निर्माण हो, शास्त्रोक्त विधि के अनुसार क्रमशः शान्ति कर्म–पुण्याह वाचन आदि का विस्तारपूर्वक अनुष्ठान किया जाये, जिससे विघ्नों का निवारण हो।

तत्कालीन अयोध्या में आयोजित यज्ञीय विधि–विधान अत्यन्त साङ्गोपाङ्ग विधि से सम्पादित किया जाता था जो कि द्रष्टव्य है–

प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा तथैवोपसदं द्विजाः।

चक्रुश्च विधिवत् सर्वमधिकं कर्म शास्त्रतः।।

अभिपूज्य तदा हृष्टः सर्वे चक्रुर्यथा विधि।

प्रातः सवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुंगवाः।।

ऐन्द्रश्चविधिवद् दत्तो राजा चाभिषुतोऽनघः।

माध्यन्दिन च सवनं प्रावर्तत यथा क्रमम्।।

तृतीय सवनं चैव राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः।

चक्रुस्ते शास्त्रतो द्रष्ट्वा यथा ब्राह्मण पुंगवा।।

आह्वयाञ्चक्रिरे तत्र शक्रादीन विबुधोतमान्।

ऋष्यश्रृंगादयोमन्त्रैः शिक्षाक्षर समन्वितैः।।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 12/15–16

गीतिभिर्मधुरैः स्निग्धैर्मन्त्राह्वानैर्यथा हितः।

होतारो ददुरावाह्य हविर्भागान् दिवौकसाम्।।

न चाहुतमभूत तत्र स्खलितं वा न किंचन्।

दृश्यते ब्रह्मवत् सर्व क्षेम युक्तं हि चक्रिरे।।[1]

अर्थात् ब्राह्मणों ने प्रवर्ग्य (अश्वमेध के अङ्गभूत कर्म विशेष) का शास्त्र के अनुसार सम्पादन करके उपसद नामक इष्टि विशेष का भी शास्त्र केअनुसार ही अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् शास्त्रीय उपदेश से भी अधिक जो अतिदेशतः प्राप्त कर्म है उस सबका भी विधिवत् सम्पादन किया।

तदनन्तर तत्तत् कर्मों के अङ्गभूत देवताओं का पूजन करके हर्ष में भरे हुए उन सभी मुनिवरों के विधिपूर्वक प्रातः सवन आदि (प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा तृतीय सवन) कर्म किए। इन्द्र देवता को विधिपूर्वक हविष्य का भाग अर्पित किया गया। पाप निवर्तक राजा सोम (सोमलता) का रस निकाला गया। फिर क्रमश' माध्यन्दिन सवन का कार्य प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने शास्त्र से देखभाल कर मनस्वी राजा दशरथ के तृतीय सवन कर्म का भी विधिवत् सम्पादन किया।

ऋष्यशृङ्ग आदि महर्षियों ने वहाँ अभ्यासकाल में सीखे गये अक्षरों से युक्त स्वर और वर्ण से सम्पन्न मन्त्रों द्वारा इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओं का आवाहन किया। मधुर एवं मनोरम सामगान के लय में गाये हुए आहवान मन्त्रों द्वारा देवताओं का आवाहन करके होताओं ने उन्हें उनके योग्य हविष्य के भाग समर्पित किये। उस यज्ञ में कोई अयोग्य अथवा विपरीत आहुति नहीं पड़ी। कहीं कोई भूल नहीं हुई, अनजान में भी कोई कर्म छूटने नहीं पाया, क्योंकि

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 14/4–10

वहाँ सारा कर्म मन्त्रोच्चारण पूर्वक सम्पन्न होता दिखायी देता था। महर्षियों ने सब कर्म क्षेम युक्त एवं निर्विघ्न परिपूर्ण किये गये।

स्कन्द पुराण में भी इस पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन प्राप्त होता है–

पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिं नाम नामतः।

चकार विधवद् यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चाऽऽदरात्।।

क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरि दक्षिणम्।

यज्ञान्ते क्रतुभुक्तम् मूर्तिमान्सम दृश्यत्।।[1]

अर्थात् पूर्वकाल में राजा दशरथ ने जब प्रचुर दक्षिणा वाला पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न किया उस समय यज्ञावसान काल में हुताशन ने मूर्तिमान् होकर उनको दर्शन दिया था।

अश्वमेध यज्ञ के लिए अत्यन्त भव्य यज्ञ मण्डप का निर्माण किया गया था तथा विभिन्न प्रकार के यूपों (खम्भों) का प्रयोग तथा शुल्ब सूत्र में वर्णित विधान से यज्ञ कुण्डादि का निर्माण भी वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

प्राप्ते यूपोच्छ्रये तस्मिन् षड्बैल्वा खादिरस्तथा।

तावन्तो बिल्व सहिताः पर्णिनश्च तथा परे।।

श्लेष मातकमयो दिष्टो देवदारूमयस्तथा।

द्वावेव तत्र विहितौ बाहुव्यस्तपरिग्रहो।।

कारिताः सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञ कोविदैः।

शोभार्थ तस्य यज्ञस्य काञ्चनालङ्कृता भवन्।।

एक विंशति यूपास्ते एकविंशत्य रत्नयः।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/2–3

वासोभिरेक विंशद्भिरैकेकं समलंकृताः।।

विन्यस्ता विधवत् सर्वे शिल्पिभिः सुकृता दृढ़ाः।

अष्टास्त्रयः सर्व एवश्लक्ष्णरूप समन्विताः।।

आच्छादितस्ते वासोभिः पुण्यैर्गन्धैश्चपूजिताः।

सप्तर्षयोदीप्ति मन्त्रो विराजन्ते यथादिवि।।

इष्टकाश्च यथा न्यायं कारिताश्च प्रमाणतः।

चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्र कुशलैः शिल्प कर्मणि।।

स चित्यो राजसिंहस्य संचितः कुशलैर्द्विजः।

गरुड़ो रुक्मपक्षो वै त्रिगुणोऽष्टादशात्मकः।।[1]

अर्थात् महाराजा दशरथ के यज्ञ हेतु यज्ञ मण्डप निर्माण प्रारम्भ हुआ तथा जब यूप खड़ा करने का समय आया तब बेल की लकड़ी के छः यूप गाड़े गये, उतने ही खैर के यूप खड़े किये गये तथा पलाश के भी उतने ही यूप थे, जो बिल्व निर्मित यूपों के साथ खड़े किये गये थे। बहेड़े का वृक्ष का एक यूप अश्वमेध यज्ञ के लिए विहित है। देवदारू के बने हुए यूप का भी विधान है परन्तु उनकी संख्या न एक है न छः। देवदारू के दो ही यूप विहित है। दोनों बाँहें फैला देने पर जितनी दूरी होती है, उतनी ही दूर पर वे दोनों स्थापित किये गये थे।

यज्ञ कुशल शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों ने ही इन सब यूपों का निर्माण कराया था। उस यज्ञ की शोभा बढ़ाने के लिए उन सबमें सोना जड़ा गया था। पूर्वोक्त 21 यूप 21–21 अरत्नि (504 अंगुल) ऊँचे बनाये गये थे। उन सबको पृथक्–पृथक्

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 14/22–29
   नोट– एक अरत्नि 24 अंगुल के बराकर माप का होता है।

21 कपड़ों से अलंकृत किया गया था। कारीगरों द्वारा अच्छी तरह बनाये गये वे सभी यूप विधिपूर्वक स्थापित किये गये थे। वे सबके सब आठ कोणों से सुशोभित थे। उनकी आकृति सुन्दर एवं चिकनी थी। उन्हें वस्त्रों से ढक दिया गया था और पुष्प चन्दन से उनकी पूजा की गयी थी। जैसे आकाश में तेजस्वी सप्तर्षियों की शोभा होती है, उसी प्रकार यज्ञ मण्डप में वे दीप्तिमान यूप सुशोभित होते थे।

सूत्र ग्रन्थों में बताये अनुसार ठीक माप से ईंटे तैयार करायी गयी थी। उन ईटों के द्वारा यज्ञ सम्बन्धी शिल्पि कर्म में कुशल ऋषियों ने अग्नि चयन किया था। राजसिंह महाराज दशरथ के यज्ञ में चयन द्वारा सम्पादित अग्नि की कर्मकाण्ड कुशल ब्रह्माणों द्वारा शास्त्रविधि के अनुसार स्थापना की गयी। उस अग्नि की आकृति दोनों पंख और पुच्छ फैलाकर नीचे देखते हुए पूर्वाभिमुख खड़े हुए गरुड़ की सी प्रतीत होती थी। सोने की ईटों से पंख का निर्माण होने से उस गरुड़ के पंख सुवर्णमय दिखायी देते थे। प्रकृत अवस्था में चित्य अग्नि के 6 प्रस्तार होते हैं, किन्तु अश्वमेध यज्ञ में उसका प्रस्तार 3 गुना हो जाता है। इसलिए वह गरुड़ाकृति अग्नि 18 प्रस्तारों से युक्त थी।

इस प्रकार से महाराजा दारथ द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ के वर्णन के विषय मेंचित्रण करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में बताया है कि यज्ञ मण्डप में जो यूप गाड़े गये थे उनमें 300 पशु बाँधे गये थे तथा अश्वमेध यज्ञ का अश्व भी बाँधा गया जिसका संस्कार महारानी कौसल्या द्वारा किया गया। इसके अतिरिक्त यज्ञ विधि का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि कहते हैं–

हयस्य यानि चांगानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः।

अग्नौ प्रास्यन्ति विधवत् समस्ताः षोडशर्त्विजः।।

प्लक्षशाखासु यज्ञानामन्येषां क्रियते हविः।

अश्वमेधस्य यज्ञस्यवैतसो भाग इष्यते।।

त्रयहोऽश्वमेधः संख्यातः कल्प सूत्रेण ब्राह्मणैः।

चतुष्टोम महस्तस्यप्रथमं परिकल्पितम्।।

उक्थ्यं द्वितीयं संख्यातमतिरात्र तथोत्तरम्।

कारितास्तत्र बहवो विहिताः शास्त्रदर्शनात्।।

ज्योतिष्टोमायुषी चैवमतिरात्रौ च निर्मितौ।

अभिषिद्विश्वजिच्चैव माप्तोर्यामो महाक्रतु।।[1]

अर्थात् उस अश्वमेध यज्ञ के अङ्गभूत जो–जो हवनीय पदार्थ थे उन सबको लेकर समस्त 16 ऋत्विज ब्राह्मण अग्नि में विधिवत् आहुति देने लगे।

अश्वमेध के अतिरिक्त अन्य यज्ञों में जो हवि दी जाती थी वह पाकर की शाखाओं में रखकर दी जाती है, परन्तु अश्वमेध यज्ञ का हविष्य बेंत की चटाई में रखकर देने का नियम है।

कल्प सूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वरा अश्वमेध के तीन सवनीय दिन बताये गये हैं उनमें से प्रथम दिन जो सवन होता है उसे चतुष्टोम (अग्निष्टोम) कहा गया है। द्वितीय दिवस साध्य सवन को उक्थ्य नाम दिया गया है तथा तीसरे दिन जिस सवन का अनुष्ठान होता है उसे अतिरात्र कहते हैं। उसमें शास्त्रीय दृष्टि से विहित बहुत से दूसरे–दूसरे क्रतु भी सम्पन्न किये गये।

ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम यज्ञ, दो बार अतिरात्र यज्ञ, पाँचवां अभिजित छठा विश्वजित तथा सातवें, आठवें आप्तोर्याम ये सबके सब महाक्रतु माने गये हैं, जो अश्वमेध के उत्तरकाल में सम्पादित हुए।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 14/38–42

यज्ञ के पश्चात् सर्वस्व दान की परम्परा अयोध्या के राजाओं में देखी जाती है। महाराजा रघु ने यज्ञ में सर्वस्व दान कर दिया था। पुनः कौत्स ऋषि की याचना पर कुबेर से स्वर्ण वृष्टि करवायी थी। महाकवि कालिदास प्रणीत रघुवंशम् में प्रोक्त है–

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्य मानात्।

दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम्।।[1]

अर्थात् युद्ध के लिए चढ़ाईकिये जाने वाले कुबेर से वृष्टि द्वारा प्राप्त चमकती हुई सुवर्ण राशि रघु ने कौत्स ऋषि को दे दी। जो कि वज्र से काटकर गिराये हुए सुमेरू के टुकड़े के समान दिखती थी।

इसी प्रकार महाराजा दशरथ द्वारा यज्ञ के पश्चात् सर्वस्व दान का वर्णन वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है–

प्राचीं होत्रे ददौराजा दिशं स्वकुल वर्धनः।

अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्राह्मणे दक्षिणां दिशम्।।

उद्गात्रे तु तथौ दीचीं दक्षिणैषा विनिर्मिता।

अश्वमेधे महायज्ञे स्वयं भू विहिते पुरा।।

क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः।

ऋत्विभौ हि ददौ राजाधरां ता कुलवर्धनः।।

एवं दत्त्वा प्रहृष्टोऽभूच्छ्री यानिक्ष्वाकुनन्दनः।

ऋत्विजस्त्वबुवन् सर्वेराजानं गतकित्विषम्।।

भवानेव महीं कृत्स्नामेको रक्षितुमर्हति।

---

1. रघुवंशम्, 5/30

न भूम्याकार्यमस्माकं नहिशक्ताः स्मपालने।।

रताः स्वाध्याय कणे वयं नित्यं हि भूमिप।

निष्क्रयं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति।।

मणिरत्नं सुवर्णं वा नित्यं हि भूमिप।

निष्क्रयं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति।।

मणि रत्नं सुवर्ण वा गावो युद्धा समुद्यतम्।

तत् प्रयच्छ नृपश्रेष्ठ धरण्या न प्रयोजनम्।।

एवमुक्तो नरपति र्बाह्मणैर्वेदपारगैः।

गवां शत सहस्त्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः।।

दशकोटि सुवर्णस्य रजतस्य चतुर्गुणम्।

ऋत्विजस्तु ततः सर्वे प्रददुः सहिता वसु।।[1]

अर्थात् अपने कुल की वृद्धि करने वाले राजा दशरथ ने यज्ञ पूर्ण होने पर होता को दक्षिणा रूप में अयोध्या से पूर्व दिशाओं का समस्त राज्य सौंप दिये। अध्वर्यु को पश्चिम दिशा तथा ब्रह्मा को दक्षिण दिशा का राज्य दे दिया। इसी तरह उद्गाता को उत्तर दिशा की सारी भूमि दे दी। पूर्वकाल में भगवान् ब्रह्मा जी ने जिसका अनुष्ठान किया था, उस अश्वमेध नामक महायज्ञ में ऐसी ही दक्षिणा का विधान किया गया था। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त करके अपने कुल की वृद्धि करने वाले पुरुष शिरोमणि राजा दशरथ ने ऋत्विजों को समस्त पृथ्वी दान कर दी। इस प्रकार दान देकर इक्ष्वाकु कुल नन्दन श्रीमान् महाराजा दशरथ के हर्ष की सीमा न रही, परन्तु समस्त ऋत्विज् उन निष्पाप

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 14/43–51

नरेश से इस प्रकार बोले, महाराज! अकेले आपही इस सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ हैं। हममें इसके पालन की शक्ति नहीं है, अतः भूमि से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। भूमिपाल! हम तो सदा वेदों के स्वाध्याय में ही लगे रहते हैं। इस भूमि का पालन हमसे नहीं हो सकता, अतः आप हमें यहाँ इस भूमि का कुछ निष्क्रय (मूल्य) ही दे दें। नृप श्रेष्ठ! मणि, रत्न, सुवर्ण, गौ अथवा जो भी वस्तु यहा उपस्थित हो वही हमें दक्षिणा रूप में दीजिए।

इस धरती से हमें कोई प्रयोजन नहीं है। वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर राजा ने उन्हें दस लाख गौएँ प्रदान की। दस करोड़ स्वर्ण मुद्रा तथा उससे चौगुनी रजत मुद्रा अर्पित की।

श्रीमद्भागवत पुराण में भी इस बात का समर्थन किया गया है जब श्रीरामचन्द्र जी ने यज्ञ में इसी विधि–विधान से धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करके दान दिया था–

भगवानात्मत्नाऽऽत्मानं राम उत्तम कल्पकैः।

सर्वदेवमयं देवमीजं आचार्यवान् मखैः।।

होत्रेऽदाद् दिशं प्राची ब्राह्मणेदक्षिणां प्रभुः।

अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगायसः।।

आचार्याय ददौशेषां यावती भूस्तदन्तरा।

मन्यमानं इदं कृत्स्नं ब्रह्मणोऽर्हति निःस्पृहः।।

इत्ययं तदलङ्कार वासोभ्यामवशेषितः।

तथा राज्ञयपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता।।

तेतु ब्रह्मण्य देवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम्।

प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मैप्रत्यर्त्येदं बभाषिरे।।

अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन् भुवनेश्वर।

यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमोहसि स्वरो चिषा।।

नमो ब्रह्मण्य देवाय रामाय कुण्ठ मेधसे।

उत्तम श्लोक धुर्यायन्यस्त दण्डार्पिताङ्घ्रये।।[1]

अर्थात् भगवान् श्रीराम ने गुरु वसिष्ठ जी को अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियों से युक्त यज्ञों के द्वारा अपने आप ही अपने सर्वदेव स्वरूप स्वयं प्रकाश आत्मा का यजन किया। उन्होंने होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण, अध्वर्यु को पश्चिम और उद्गाता को उत्तर दिशा दे दी। उनके बीच में जितनी भूमि बच रही थी, वह उन्होंने आचार्य को दे दी। उनका निश्चय था कि सम्पूर्ण भूमण्डल का एक मात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है। इस प्रकार सारे भूमण्डल का दान करके उन्होंने अपने शरीर के वस्त्र अलङ्कार ही अपने पास रखे। इसी प्रकार महारानी सीता जी के पास केवल माङ्गलिक वस्त्र और आभूषण ही बच रहे थे।

जब आचार्यों तथा ब्राह्मणों ने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणों को ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उनके हृदय में ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त स्नेह है, तब उनका हृदय प्रेम से द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान् को लौटा दी और कहा प्रभो! आप सब लोगों के एक मात्र स्वामी हैं। आप तो हमारे हृदय के भीतर रहकर अपनी ज्योति से अज्ञानान्धकार का नाश कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में आपने हमें क्या नहीं दे रखा है। आपका ज्ञान अनन्त है। पवित्र कीर्ति वाले पुरुषों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। उन महात्माओं को,

---

1. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 9/11/1–7

जो किसी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाते हैं, आपने अपने चरण कमल दे रखें हैं। ऐसा होने पर भी आप ब्राह्मणों को अपना इष्टदेव मानते हैं। भगवन्! आपके इस राम रूप को हम नमस्कार करते हैं।

अयोध्या की धार्मिक स्थिति अत्यन्त उत्कृष्ट थी, महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में वर्णन किया है कि जब भरत जी श्री रामचन्द्र जी से अयोध्या वापस चलने के लिए अनुनय–विनय करते हैं तब श्री रामचन्द्र जी भरत को समझाते हैं, उस समय महर्षि जाबालि नास्तिक मत का आश्रय लेकर श्री रामचन्द्र जी को वापस अयोध्या चलने का उपदेश देते हैं उस समय भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने स्वयं नास्तिक मत का खण्डन करते हुए धर्म का मर्यादित स्वरूप बताया था–

निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः।

मानं न लभते सत्सुभिन्न चारित्र दर्शनः।।

कुलीनंमकुलीनं वा वीरं पुरुष मानिनम्।

चारित्रमेव व्याख्यातिशुचिं वा यदि वाशुचिम्।।[1]

अर्थात् जो पुरुष धर्म अथवा वेद की मर्यादा को त्याग देता है वह पाप कर्म प्रवृत्त हो जाता है। उसके आचार और विचार दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं, इसलिए वह सत्पुरुषों में कभी सम्मान नहीं पाता है। आचार ही यह बताता है कि कौन पुरुष उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है और कौन अधम कुल में, कौन वीर है और कौन व्यर्थ ही अपने को पुरुष मानता है तथा कौन पवित्र है और कौन अपवित्र।

आगे सत्य धर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए वर्णन प्राप्त होता है–

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 109/3–4

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।

तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेवहि मेनिरे।

सत्यवादी हिलोकेऽस्मिन् परं गच्छति चा क्षयम्।।

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।

धर्मः सत्यपरोलोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।

सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परंपदम्।।

दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि चतपांसि च।

वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्य परो भवेत्।।

एक' पालयते लोकमेकः पालयेत कुलम्।

मज्जत्येको हि निरय एक स्वर्गे महीयते।।[1]

अर्थात् सत्य का पालन ही राजाओं का दया प्रधान धर्म है। सनातन आचार है, अतः राज्य सत्य स्वरूप है। सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं। ऋषियों और देवताओं ने सदा सत्य का ही आदर किया है। इस लोक में सत्यवादी मनुष्य अक्षय परमधाम में जाता है। झूठ बोलने वाले मनुष्य से सब लोग उसी तरह डरते हैं जैसे साँप से। संसार में सत्य ही धर्म की पराकाष्ठा है और वही सबका मूल कहा जाता है। जगत् में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्य से बढ़कर इसका कोई परम पद नहीं है। दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद इन सबका आधार सत्य ही है, इसलिए सबको सत्य परायण होना चाहिए।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्यवाकाण्ड, 109/10–15

एक मनुष्य सम्पूर्ण जगत् का पालन करता है, एक समूचे कुल का पालन करता है, एक नरक में डूबता है और एक स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है।

अन्यत्र वर्णन आता है–

त्वत्तो जनाः पूर्वतरेद्विजाश्च शुभानि कर्माणि बहूनि चक्रुः।

दित्त्वा सदेमं च परं च लोकं तस्माद्द्विजाः स्वास्तिकृतं हुतं च।।

धर्मेरताः सत्पुरुषै समेतास्तेजास्विनो दानगुणप्रधानाः।

अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवति पूज्या मुनयः प्रधानाः।।[1]

अर्थात् आपके सिवा पहले के श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने इहलोक और परलोक की फल कामना का परित्याग करके वेदोक्त धर्म समझकर सदा ही बहुत से शुभ कर्मों का अनुष्ठान किया है। अतः जो भी ब्राह्मण हैं, वे वेदों को ही प्रमाण मानकर स्वस्ति (अहिंसा और सत्य आदि) कृत (तप, दान और परोपकार आदि) तथा हुत (यज्ञ–यागादि) कर्मों का सम्पादन करते हैं, जो धर्म में तत्पर रहते हैं, सत्पुरुषों का साथ करते हैं, तेज से सम्पन्न हैं, जिनमें दान रूपीगुण की प्रधानता है, जो कभी किसी प्राणी की हिंसा नहीं करते तथा जो मल संसर्ग से रहित हैं, ऐसे श्रेष्ठ मुनि ही संसार में पूजनीय होते हैं।

अयोध्या के राजा प्राचीनकाल से ही अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के रहे हैं। जैसा पूर्वोक्त वर्णन किया जा चुका है। श्री नरसिंह पुराण में महाराजा इक्ष्वाकु के द्वारा की गयी तपस्या का वर्णन प्राप्त होता है–

कृत्वेत्थं स तपोवेषं वसिष्ठोक्तं तपोवनम्।

प्रविश्य च तपस्तेपेशाक मूलफलाशनः।।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 109/35–36

ग्रीष्मेपञ्चाग्नि मध्यस्थोऽतपत्काले महातपाः।

वर्षा काले निरालम्बो हेमन्ते च सरोजले।।

इन्द्रियाणि समस्तानि नियम्यह्रदये पुनः।

मनोविष्णौ समावेश्यमन्त्रवै द्वादशाक्षरम्।।

जपतो वायुभक्षस्य तस्य राज्ञो महात्मनः।

आविर्बभूवभगवान् ब्रह्मालोक पितामहः।।

तमागतमथालोक्य पद्मयोनिं चतुर्मुखम्।

प्रणम्यभक्तिभावेन स्तुत्या च पर्यतोषयत्।।[1]

अर्थात् इस प्रकार वसिष्ठ जी के कथनानुसार तापस वेष धारण कर महाराजा इक्ष्वाकु तपोवन में प्रविष्ट हो, शाक और फल–मूल का आहार करते हुए तपस्या में प्रवृत्त हो गये। महातपस्वी राजा इक्ष्वाकु ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि के मध्य स्थित होकर तपस्या करते थे। वर्षा ऋतु में खुले मैदान में रहते और शीतकाल में सरोवर के जल में खड़े होकर तप करते थे। इस प्रकार समस्त इन्द्रियों को मन में निरूद्ध करके मन को भगवान् विष्णु में लीन कर द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करते और वायु पीकर रहते हुए उन महात्मा राजा के समक्ष लोक–पितामह भगवान् ब्रह्मा जी प्रकट हुए। उन चार मुखों वाले पद्म योनि ब्रह्मा जी को आया देख राजा ने उन्हें भक्ति भाव से प्रणाम, उनकी स्तुति करके संतुष्ट किया।

अन्यत्र अयोध्या नरेश महाराज इक्ष्वाकु के सन्दर्भ में नरसिंह पुराण में ही प्रोक्त है–

निष्कामो दानधर्मैश्च परं ज्ञानमवाप्तवान्।

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 25/26–30

यजन् यज्ञं महींरक्षन् स कुर्वन् केशवार्चनम्।।

उत्पाद्य पुत्रान् पित्रर्थं ध्याना त्यक्त्वाकलेवरम्।

ध्यायन् वै केवलं ब्रह्मप्राप्तवान् वैष्णव पदम्।।[1]

अर्थात् निष्काम भाव से किये गये यज्ञ, दान तथा धर्माचरणों द्वारा उन सर्वदेवमय भगवान् विष्णु को संतुष्ट करके राजा ने परम उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया। यज्ञों का अनुष्ठान्, पृथ्वी का पालन और भगवान् केशव का पूजन करते हुए राजा ने पितृगणों की तृप्ति के निमित्त श्राद्ध आदि कर्म करने के लिए पुत्रों को उत्पन्न किया और केवल ब्रह्म का चिन्तन करते हुए ध्यान के द्वारा ही शरीर त्यागकर भगवान् विष्णु के धाम को प्राप्त कर लिया। अयोध्या की धार्मिक स्थिति के वर्णन में वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है कि समय–समय पर वहाँ विभिन्न स्थानों से ऋषि–मुनियों का समागम होता रहता था। राक्षसों का संहार करने के अनन्तर जब भगवान् श्रीराम ने राज्य प्राप्त कर लिया था, तब सम्पूर्ण ऋषि–महर्षि श्री रघुनाथ जी का अभिनन्दन करने के लिए अयोध्यापुरी में आये थे।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्ग्योगालव एव च।

कण्वो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः।।

स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान् नमुचिः प्रमुचिस्तथा।

अगस्त्योऽत्रिश्च भगवान् सुमुखोविमुखस्तथा।।

आजग्मुस्ते सहागत्या येश्रिता दक्षिणां दिशम्।

नृषङ्गु कवषोधौम्यः कौशेयश्च महानृषिः।।

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 25/70–71

तेऽप्याजग्मुः सशिष्यावै ये श्रिताः पश्चिमं दिशम्।

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्र सगौतमः।।

जमदग्निर्भरद्वाजस्तेऽपि सप्तर्षयस्तथा।

उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः।।

सम्प्राप्यैते महात्मानो राघवस्य निवेशनम्।

विठिष्ताः प्रतिहारार्थं हुताशन समप्रभाः।।

वेदवेदाङ्ग विदुषो नानाशास्त्रविशारदाः।

द्वास्थं प्रोवाच धर्मात्मा अगस्त्यो मुनिसत्तमः।।[1]

अर्थात् जो ऋषि मुख्यतः पूर्व दिशा में निवास करते हैं वे कौशिक यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि के पुत्र कण्व वहाँ पधारे। स्वस्त्यात्रेय भगवान्, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, भगवान् अत्रि, सुमुख और विमुख ये दक्षिण दिशा में रहने वाले महर्षि अगस्त्य जी के साथ वहाँ आये। जो प्रायः पश्चिम दिशा का आश्रय लेकर रहते हैं, वे नृषङ्ग, कवष, धौम्य और महर्षि कौशेय भी अपने शिष्यों के साथ वहाँ आये। इसी तरह उत्तर दिशा के नित्य निवासी वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदाग्नि और भारद्वाज ये सात ऋषि जो सप्तर्षि कहलाते हैं, अयोध्यापुरी में पधारे ये सभी अग्नि के समान तेजस्वी, वेद–वेदाङ्गों के विद्वान् तथा नाना प्रकार के शास्त्रों का विचार करने में प्रवीण थे। वे महात्मा मुनि श्री रघुनाथ जी के राजभवन के पास पहुँचकर अपने आगमन की सूचना देने के लिए ड्यौढ़ी पर खड़े हो गये तथा मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ने द्वारपाल से, भगवान् श्रीराम को सूचित करने के लिए कहा– भगवान् श्री रामचन्द्र जी उन मुनीश्वरों को उपस्थित देख हाथ जोड़कर खड़े

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 1/2–8

हो गये। फिर पाद्य–अर्घ्य आदि के द्वारा उनका आदरपूर्वक पूजन किया। पूजन से पहले उन सबके लिए एक–एक गाय भेंट की, श्रीराम ने शुद्ध भाव से उन सबको प्रणाम करके उन्हें बैठने के लिए आसन दिये। वे आसन सोने के बने हुए विचित्र आकार–प्रकार वाले थे। सुन्दर होने के साथ ही वे विशाल और विस्तृत भी थे। उन पर कुश के आसन रखकर ऊपर से मृग चर्म बिछाये गये थे। उन आसनों पर वे श्रेष्ठ मुनि यथा योग्य बैठ गये–

दृष्ट्वा प्राप्तान् मुनींस्तास्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।

पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च गां निवेद्य च सादरम्।।

रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेशह।

तेषु काञ्चन चित्तेषु महत्सु च वरेषु च।।

कुशान्तर्धान दत्तेषु मृगचर्मयुतेषु च।

यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्वृषि पुङ्गवा।।[1]

इसी प्रकार भगवान् श्रीराम के द्वारा अयोध्या से जाकर नैमिषारण्य (जो कि वर्तमान सीतापुर जनपद में स्थित है) में अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन करने का वर्णन प्राप्त होता है–

एवं सुविहितो यज्ञो ह्यश्वमेधोह्यवर्तत।

लक्ष्मणेन सुगुप्ता साह्यचर्या प्रवर्तत।।

ईदृशं राजसिंहस्य यज्ञ प्रवरमुत्तमम्।

नान्यः शब्दोऽभवत् तत्र ह्यमेधेमहात्मनः।।

छन्दतो देहि देहीति यावत् तुष्यन्ति याचकाः।

---

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 1/13–15

तावत् सर्वाणि दत्तानि क्रतु मुख्ये महात्मनः।।

विविधानि च गौड़ानिः खाण्डवानि तथैव च।

न निःसृतं भवत्योष्ठाद् वचनं यावदर्थिनाम्।।

तावद् वानर रक्षोभिर्दत्तमेवाभ्य दृश्यत्।

न कश्चिन्मलिनो वापिदीनोवाप्यथवा कृशः।।

तस्मिन् यज्ञ वरे राज्ञोहृष्टपुष्ट जनावृते।

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिर जीविनः।।

नास्मरंतादृशं यज्ञं दानौघ समलंकृतम्।

यः कृत्यवान् सुवर्णेन सुवर्ण लभते स्म सः।।

वित्तार्थी लभते वित्तं रत्नार्थी रत्नमेव च।

हिरण्यानां सुवर्णानां रत्नानामथवाससाम्।।

अनिशं दीयमानानां राशिः समुपदृश्यते।

न शक्रस्य न सोमस्य यमस्य वरुणस्य च।।

ईदृशो दृष्टपूर्वो न एव मूचुस्तपोधनाः।

सर्वत्र वानरास्तथुः सर्वत्रैव च राक्षसाः।।

वासोधनान्न कामेभ्यः पूर्ण हस्ता ददुर्भृशम्।

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः।।

संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते।।[1]

---

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 92/9–19

अर्थात् इस प्रकार सुन्दर ढङ्ग से अश्वमेध यज्ञ का कार्य प्रारम्भ हुआ और लक्ष्मण के संरक्षण में रहकर घोड़े के भूमण्डल में भ्रमण का कार्य भलीभाँति सम्पन्न हो गया।

राजाओं में सिंह के समान पराक्रमी महात्मा श्री रघुनाथ जी का वह श्रेष्ठ यज्ञ इस प्रकार उत्तम विधि से होने लगा। उस अश्वमेध यज्ञ में केवल एक ही बात सब ओर सुनायी पड़ती थी। जब तक याचक संतुष्ट न हो तब तक उनकी इच्छानुसार सब वस्तुएँ दिये जाओ, इसके सिवा दूसरी बात सुनायी नहीं देती थी। इस प्रकार महात्मा श्रीराम के श्रेष्ठ यज्ञ में नाना प्रकार के गुड़ के बने हुए खाद्य पदार्थों और खाण्डव आदि तब तक निरन्तर दिये जाते थे जब तक पाने वाले पूर्णतः संतुष्ट होकर बस न कर दें। जब याचकों के मन की बात ओष्ठ से बाहर नहीं निकल पाती थी, तब तक ही राक्षस और वानर उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दे देते थे, यह बात सबने देखी।

राजा श्रीराम के उस श्रेष्ठ यज्ञ में ह्रष्ट–पुष्ट मनुष्य भरे हुए थे वहाँ कोई भी मलिन, दीन अथवा दुर्बल नहीं दिखायी देता था। उस यज्ञ में जो चिरंजीवी महात्मा मुनि पधारे थे, उन्हें ऐसे किसी भी यज्ञ का स्मरण नहीं था, जिसमें दान की ऐसी धूम रही हो। वह यज्ञ दानराशि से पूर्णतः अलंकृत दिखायी देता था। जिसे सुवर्ण की आवश्यकता थी, वह सुवर्ण पाता था, धन चाहने वाले को धन मिलता था और रत्न की इच्छा वाले को रत्न। वहाँ निरन्तर दिये जाने वाले चाँदी, सोने, रत्न और वस्त्रों के ढेर लगे दिखायी देते थे। वहाँ आये हुए तपस्वी मुनि कहते थे कि ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्रमा, यम और वरूण के यहाँ भी नहीं देखा गया। वानर और राक्षस सर्वत्र हाथों में देने की सामग्री लिए खड़े रहते थे और वस्त्र, धन तथा अन्न की इच्छा रखने वाले याचकों को अधिक से अधिक देते थे। राजसिंह भगवान् श्रीराम का ऐसा

सर्वगुण सम्पन्न यज्ञ एक वर्ष से भी अधिक काल तक चलता रहा। उसमें कभी किसी बात की कमी नहीं हुई।

भगवान् श्रीराम की धार्मिकता से सम्बन्धित अन्यत्र वर्णन आया है–

इष्ययज्ञो नरपतिः पुत्रद्वय समन्वितः।

नः सीतायाः परां भर्यावव्रे स रघुनन्दनः।

यज्ञे–यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत्।।

दशवर्षसहस्त्राणि वाजि मेधानथा करोत्।

वाजपेयान् दशगुणांस्तथा बहु सुवर्णकान्।।

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधनैः।

ईजेक्रतुभिरन्यैश्च स श्रीमानाप्तदक्षिणैः।।

एवं स कालः सुमहान् राज्यस्थस्य महात्मनः।

धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद् राघवस्य च।।[1]

अर्थात् यज्ञ पूरा करके रघुकुल नन्दन राजा श्रीराम अपने दोनों पुत्रों के साथ रहने लगे। उन्होंने सीता के सिवा दूसरी किसी स्त्री से विवाह नहीं किया। प्रत्येक यज्ञ में जब–जब धर्मपत्नी की आवश्यकता होती श्री रघुनाथ जी सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा लिया करते थे। उन्होंने दस हजार वर्षों तक यज्ञ किये। कितने ही अश्वमेध यज्ञों और उनसे दस गुने वाजपेय यज्ञों का अनुष्ठान किया, जिसमें असंख्य स्वर्ण मुद्राओं की दक्षिणाएँ दी गयी थीं। श्रीमान राम ने पर्याप्त दक्षिणाओं से युक्त अग्निष्टोम अतिरात्र गोसव तथा अन्य बड़े–बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया, जिनमें अपार धनराशि खर्च की गयी।

---

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 99/7–11

इस प्रकार राज्य करते हुए महात्मा भगवान् श्री रघुनाथ जी का बहुत बड़ा समय धर्मपालन के प्रयत्न में ही बीता।

महाकवि भवभूति कृत उत्तररामचरित में भी इसी बात का समर्थन प्राप्त होता है–

नियोजय यथाधर्मं प्रिया त्वं धर्मचारिणीम्।

हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे।।[1]

अर्थात् आप सुवर्णमयी प्रतिमा की पवित्र आधार स्वरूप अपनी सहधर्मिणी प्रिया सीता को धर्मानुकूल यज्ञ में नियुक्त करो।

वाल्मीकि रामायण में अयोध्या की धार्मिक स्थिति के अन्तर्गत सनातन वैदिक कर्मकाण्ड यज्ञ–यागादि के अतिरिक्त अयोध्या के राजाओं द्वारा सेवित मानव धर्म का भी वर्णन प्राप्त होता है– भगवान् श्रीराम ने स्वयं कहा है–

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके समीश्चिता धर्मफलोदयेषु।

ये तत्र सर्वेस्युर संशयं मे भार्येव वश्याभिमतासपुत्राः।।

यास्मिंस्तु सर्वेस्युर सन्निविष्टा धर्मोयतः स्यात् तदुपक्रमेत्।

द्वेष्यो भवत्यर्थपरोहिलोके कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता।।

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात् प्रहर्षादथ वापि कामात्।

यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्म कस्तं न कुर्याद् नृशंस वृत्तिः।।

न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञामिमां न कर्तु सकला यथावत्।

सह्याव योस्तात् गुरुर्नियोगे, देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः।।[2]

---

1. उत्तररामचरित, 7/20
2. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 21/57–60

अर्थात् इस जगत् में पूर्वकृत धर्म के फल की प्राप्ति के अवसरों पर जो धर्म, अर्थ और काम तीनों देखे गये हैं, वे सबके सब जहाँ धर्म है वहाँ अवश्य प्राप्त होते हैं। इसमें संशय नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे भार्या धर्म, अर्थ और काम तीनों की साधन होती है। वह पति के वशीभूत या अनुकूल रहकर अतिथि सत्कार आदि धर्म के पालन में सहायक होती है, प्रेयसी रूप में काम का साधन बनती है और पुत्रवती होकर उत्तम लोक की प्राप्ति रूप में अर्थ की साधिका होती है। जिस कर्म में धर्म आदि पुरुषार्थों का समावेशन हो उसको नहीं करना चाहिए। जिससे धर्म की सिद्धि होती है उसी का आरम्भ करना चाहिए। जो केवल अर्थपरायण होता है, वह लोक में सबके द्वेष का पात्र बन जाता है तथा धर्म विरुद्ध काम में अत्यन्त आसक्त होना प्रशंसा नहीं निन्दा की बात है।

महाराज हम लोगों के गुरु, राजा और पिता होने के साथ ही बड़े–बूढ़े माननीय पुरुष हैं। वे क्रोध से, हर्ष से अथवा काम से प्रेरित होकर भी यदि किसी कार्य के लिए आज्ञा दें तो हमें धर्म समझकर उसका पालन करना चाहिए। जिसके आचरण में क्रूरता नहीं है, ऐसा कौन पुरुष पिता की आज्ञा के पालन रूप धर्म का आचरण नहीं करेगा। इसलिए मैं पिता की इस सम्पूर्ण प्रतिज्ञा का यथावत् पालन करने से मुँह नहीं मोड़ सकता। तात् लक्ष्मणः वे हम दोनों को आज्ञा देने में समर्थ गुरु हैं और माता जी के तो वे ही पति, गति तथा धर्म हैं।

अयोध्या की धार्मिक स्थिति के विषय में अन्यत्र वर्णन आया है। भगवान् श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण को समझाते हैं कि मानव का धर्म यही है कि उसे जो कुछ भी प्राप्त हो उसे दैव प्रासाद समझकर स्वीकार करना चाहिए तथा सुख–दुःख, लाभ, हानि में सन्तोष करना चाहिए।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

यद्चिन्त्यं तु तद्दैवं भूतेष्वपि न हन्यते।

व्यक्तं मयि च तस्यां च पतितो हि विपर्ययः।।

कश्चदैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान्।

यस्य नु ग्रहणं किंचित् कर्मणोऽन्यन्न दृश्यते।।

सुखदुःखे भयक्रोधो लाभालाभौ भवाभवौ।

यस्य किंचित् तथा भूतं ननु दैवस्य कर्म तत्।।

ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः।

उत्सृज्य नियमांस्तीव्रानभ्रश्यन्ते काममन्युभिः।।

असंकल्पितमेवेह यद् कस्मात् प्रवर्तते।

निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत्।।

एतया तत्त्वया बुद्धया संस्तभ्यात्मानमात्मना।

व्याहतेऽप्यभिषेकेमे परितापो न विद्यते।।[1]

अर्थात् जिसके विषय में कभी कुछ सोचा न गया है, वही दैव का विधान है। प्राणियों में अथवा उनके अधिष्ठाता देवताओं में भी कोई ऐसा नहीं है, जो उस दैव के विधान को मेट सके, अतः निश्चय ही उसी की प्रेरणा से मुझमें और कैकेयी में यह भारी उलटफेर हुआ। सुमित्रानन्दन! कर्मों के सुखदुःखादि रूप फल प्राप्त होने पर ही जिसका ज्ञान होता है, कर्मफल से अन्यत्र कहीं भी जिसका पता नहीं चलता, उस दैव के साथ कौन पुरुष युद्ध कर सकता है?

सुखदुःख, भय–क्रोध, लाभ–हानि उत्पत्ति और विनाश तथा इस प्रकार के और भी जितने परिणाम प्राप्त होते हैं, जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता वे सब दैव के ही कर्म हैं। उग्र तपस्वी ऋषि भी दैव से प्रेरित होकर अपने तीव्र

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 22/20–25

नियमों को छोड़ बैठते और काम–क्रोध के द्वारा विवश हो मर्यादा से भ्रष्ट हो जाते हैं। जो बात बिना सोचे–विचारे अकस्मात् सिर पर आ पड़ती है और प्रयत्नों द्वारा आरम्भ किए हुए कार्य को रोककर एक नया ही काण्ड उपस्थित कर देती है, अवश्य ही वह दैव का विधान है।

इस तात्त्विक बुद्धि के द्वारा स्वयं ही मन को स्थिर कर लेने के कारण मुझे अपने अभिषेक में विघ्न पड़ जाने पर भी दुःख या सन्ताप नहीं हो रहा है।

इस प्रकार मानव धर्म, राज धर्म, पुत्र धर्म, स्त्री धर्म इत्यादि अनेकानेक धर्मों के स्वरूपों का वाल्मीकि रामायण में स्थाने–स्थाने वर्णन किया गया है। जिनका अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि तत्कालीन अयोध्या की धार्मिक स्थिति अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी।

इसी प्रकार अयोध्या के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व से पौराणिक वाङ्मय ओत–प्रोत है। अयोध्यापुरी के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में वर्णित है कि– जो मनुष्य इस कलिकाल में दशरथ तनय राम की अयोध्यापुरी का दर्शन करते हैं, उनको गया श्राद्ध तथा पुरुषोत्तम दर्शन इतना लाभ प्राप्त होता है–

गया श्राद्धञ्च ये कृत्वा पुरुषोत्तम दर्शनम्।

कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौ दाशरथींपुरीम्।।[1]

बताया गया है कि 60 हजार वर्ष तक जाह्नवी जल में स्नान का जो फल है वही फल दाशरथी पुरी अयोध्या का दर्शन करने वाले को आधे क्षण में मिल जाता है। प्राणीगण एक निमेष अथवा आधा निमेष राम चिन्तन करके संसार के कारण 'अज्ञान' का नाश कर लेते हैं। इसमें संशय नहीं है। मानव जहाँ भी रहे यदि वह मन ही मन अयोध्या का स्मरण करता रहे उस स्थिति में सैकड़ों कल्प में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता–

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्याकाण्ड, 10/28

षष्टिवर्ष सहस्त्राणि भगीरथ्यवगाहजम्।

तत्फलं निमिषार्धेन कलौदाशरथींपुरीम्।।

निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां राम चिन्तनम्।

संसार कारणाज्ञाननाशकं जायते ध्रुवम्।।

यत्र कुल स्थितो ह्यस्तुह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्।

न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपिः।।[1]

इसी प्रकार के अज्ञान के नाश से उत्पन्न कैवल्य भाव एवं मुक्ति का विवेचन भारतीय आस्तिक दर्शनों में प्राप्त होता है।

सांख्य दर्शन में प्रोक्त है–

प्राप्तेशरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधान विनिवृतौ।

ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।।[2]

अर्थात् शरीर पात होने पर, भोग एवं अपवर्ग दोनों ही प्रयोजनों के पूर्व से ही सिद्ध हुए रहने के कारण प्रकृति के निवृत्त हो जाने से पुरुष एकान्तिक और आत्यन्तिक मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

वेदान्तसार में इसी भाँति अज्ञान के निवारण की बात कही गयी है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे इत्यादि श्रुते।।[3]

अर्थात् उस कारण कार्य रूप ब्रह्म का आत्मभाव से दर्शन कर लेने पर इस जीवन्मुक्त की हृदय गन्थि खुल जातीहै, दृष्ट और अदृष्ट अर्थों के सम्बन्ध

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/32–34
2. सांख्य तत्त्व, कौमुदी प्रभा, कारिका 68
3. वेदान्तसार, कारिका 65, पृ0 185; मुण्डकोपनिषद, 2/2/8

में होने वाले सारे संशय नष्ट हो जाते हैं, प्रारब्ध के अतिरिक्त सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं। इससे जीवन्मुक्त का पूर्वोक्त लक्षण प्रमाणित होता है।

अयेध्या नगरीकी दार्शनिकता और आध्यात्मिकता का दर्शन स्कन्द पुराण वैभव खण्ड के अयोध्या माहात्म्य में होता है। यहाँ बताया गया है कि अयोध्या में सैकड़ों तीर्थ एवं कुण्ड हैं जिनमें स्नान दान के द्वारा मनुष्यों को लौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

तीर्थों का आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व

अयोध्या स्थित तीर्थों का आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व भी पौराणिक वाङ्मय में प्राप्त है।

चक्रतीर्थ–

अयोध्या में स्थित चक्रतीर्थ की महत्ता का वर्णन करते हुए स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

चक्रतीर्थे नरः स्नात्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
बहुवर्षसहस्त्राणि स्वर्गलोके महीयते।।
पितृनुदिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति।
तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः।।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्त्वा दृष्टवा विष्णु हरिं विभुम्।
सर्वपाप क्षयं प्राप्य नाकपृठे महीयते।
स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्त्वानिष्कल्मषो नरः।
विष्णुलोकेवसेद्धी मान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।[1]

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/104–107

अर्थात् मानव चक्रतीर्थ में स्नान करके सर्वपाप रहित होजाता है। वह अनेक संवत्सर स्वर्गलोक में निवास करता है। जो मनुष्य पितरों के उद्देश्य से उस तीर्थ में पिण्डादि दान करता है, उसके पितृगण तृप्त होकर विष्णुलोक में गमन करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। मानव चक्रतीर्थ में स्नान तथा विष्णु हरि मूर्ति का दर्शन करके निष्पाप होकर चतुर्दश इन्द्रों के अधिकार काल तक विष्णुलोक में निवास करता है।

चन्द्रहरि तीर्थ–

चन्द्रहरि तीर्थ के सम्बन्ध में स्कन्द पुराण में वर्णित है–

सर्वयज्ञाधिकं फलं सर्वतीर्थाव गहनम्।

सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम्।।

तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणि नामस्य दर्शनात्।

तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषु गीयते।।

उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विज पुरस्सरम्।

अग्रे चन्द्र हरेश्चन्द्र सहस्त्र व्रत सञ्ज्ञकः।।[1]

अर्थात् समस्त यज्ञ, समस्त तीर्थ स्नान तथा सर्वविधि देव दर्शन का जो फल है केवल मात्र इस तीर्थ दर्शन द्वारा प्राणीगण को समस्त फल प्राप्त हो जाता है। इसलिए पुराणादि शास्त्रों में इसे महाक्षेत्र कहते हैं। मानवगण पहले सहस्त्र चन्द्रव्रत को सम्पन्न करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण के साथ इसका उद्यापन सम्पन्न करे।

धर्महरि तीर्थ–

धर्महरि तीर्थ के विषय में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 03/53–55

सरयू सलिले स्नात्त्वा सुचिन्ता कुल मानसः।

देवं धर्महरिं पश्येत्सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

अत्र दानं तथा होमं जपो ब्राह्मण भोजनम्।

सर्वमक्षयतां याति विष्णु लोके निवास कृत।।[1]

अर्थात् जो मानव सरयू जल में स्नान करके उत्तम चिन्तन करते हुए देव धर्महरि का दर्शन करता है, इससे वह समस्त कलुष रहित हो जाता है। यहाँ अन्न दान, होम, जप, ब्राह्मण भोजन अक्षयफलप्रद हो जाता है। इन सब कर्म के प्रभाव द्वारा मानव विष्णुलोक में वास करता है।

चक्रहरि तीर्थ तथा हरिस्मृति तीर्थ–

चक्रहरि तीर्थ तथा हरिस्मृति तीर्थ की महत्ता के विषय में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

तयो दर्शनतो यान्ति तेषां पापानि देहिनाम्।

तानि पापानियावन्ति कुर्वते भुवि येनराः।।[2]

अर्थात् ये दोनों तीर्थ ऐसे हैं जिनके दर्शन मात्र से व्यक्ति के देहस्थ पाप दग्ध हो जाते हैं तथा पृथ्वी पर उसने जो भी पाप किया है, वे सभी विलीन हो जाते हैं।

स्वर्ण खनि–

स्वर्ण खनि के विषय में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

राजल्लंभस्व सत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम्।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 4/22–23
2. तदेव, 6/13

इयं स्वर्ण खनिस्तूर्णं मनोऽभीष्टफलप्रदा।।

भूयादत्रपरं तीर्थं सर्वपापहरं सदा।

अत्र स्नानेन दानेन नृणां लक्ष्मीः प्रजायते।।[1]

अर्थात् हे राजन! तुमको तुम्हारे वंश के गुणानुरूप उत्तम सन्तान का लाभ होगा। यह स्वर्ण खान तुम्हारे लिए अभीष्ट फलप्रद हो जायें। यहाँ सर्वपापहारी उत्कृष्ट तीर्थ होगा। जो मानव इस तीर्थ में दान करेगा, मेरे वर के अनुसार वह श्रीमान् होगा।

तिलोदकी नदी–

तिलोदकी की महत्ता के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

सङ्गमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचि वृतः।

स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि।।

तस्मात्तिलोदकी स्नानं सर्वपापहरं मुने।

कर्त्तव्य सुप्रयत्नेन प्राणिभि धर्मकाङ्क्षिभिः।।

स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत्।।[2]

अर्थात् पवित्र व्रती मानव इस तिलोदकी में स्नान करके सप्त जन्मों के पापों से मुक्त हो जाते हैं। हे मुनिवर! जो धर्माभिलाषी मानव प्रयत्नपूर्वक इस तिलोदकी में स्नान करते हैं। उनका व्रत, होम, दान, स्नानादि सभी अक्षय फल प्रदान करते हैं।

सरयू–घाघरा सङ्गम–

सरयू–घाघरा सङ्गम का महत्त्व स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 4/66–67
2. तदेव, 5/27–28

भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहत वेतसाम्।

गतिमन्वेषणमाणानां न सङ्गम समागतिः।।

सप्तावरान्सप्त परान्पुरुषश्चाऽऽत्मनासह।

पुंसस्तारयते सर्वान्सङ्गमे स्नानामाचरन्।।

जात्यन्धैरिहते तुल्यास्तथा पङ्गुभिरेव च।

समेत्याऽत्रर्चन स्नानान्ति सरयू घर्घर सङ्गमे।।

वर्णानां ब्राह्मणो यद्वत्तथा तीर्थेषु सङ्गमः।

सरयू घर्घरा योगे वैष्णवस्थो नरः सदा।।[1]

X X X

एकतः सर्वतीर्थानि नाना विधि फलानिवै।

सरयू घर्घरोत्पन्न सङ्गमस्त्वधिको भवेत्।।

सर्वतीर्थावगाहस्य फलं या द्रक स्मृतंश्रुतौ।

ताद्रक्फलं नृणां सम्या भवेत् सङ्गम मज्जनात्।।[2]

अर्थात् जो दुःखग्रस्त व्यक्ति मानवगण उत्तम गति का अन्वेषण करते हैं, उनके लिए सङ्गम के समान उत्तम गति नहीं है। इस सङ्गम स्नान को करने पर सात पूर्व पीढ़ी तथा सात आगे की पीढ़ी की आत्मा का त्राण हो जाता है। जो सरयू–घाघरा सङ्गम में आते हैं तथापि स्नान नहीं करते, वे इस पाप प्रभाव से पङ्गु हो जाते हैं। वर्ण में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार तीर्थों में

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 6/103–106
2. तदेव, 6/110–111

सरयू–घाघरा सङ्गम श्रेष्ठ है। मानव सरयू–घाघरा सङ्गम का सङ्ग लाभ करके सतत् वैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं।

एक ओर समस्त तीर्थों की फल राशि को एकत्र किया जाये तथापि इस सङ्गम स्नान का फल उससे अधिक होता है। वेद में समस्त तीर्थों में स्नान का जो फल कहा गया है, इस सङ्गम स्नान द्वारा मानव उसी के समान फल लाभ कर लेता है।

अयोध्या में स्थित कुण्डों का आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व

अयोध्या में स्थित कुण्डों का आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व भी है जिसे निम्नवत देखा जा सकता है–

ब्रह्म कुण्ड–

ब्रह्म कुण्ड के माहात्म्य के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

अत्र स्नानेन विधिवत्पापात्मनोऽपि जन्तवः।

विमान हंस संयुक्तमास्थाय रुचिराम्बरा निवसन्ति ब्रह्मलोकं यावदाभूत सम्प्लवम्।।

अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः।

तुलाश्वमेधयोः पुण्यो प्राप्नुयुर्मुनिसत्तमाः।।

ममास्मिन्सरसि श्रीमाञ्जायते स्नानतो नरः।

तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं जपादिकम्।।

सर्वयज्ञ समस्याद्वै महापातकनाशनम।

ब्रह्म कुण्डमिति ख्यातिमितो यास्यत्नुत्तमाम्।।[1]

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 2/12–15

अर्थात् यदि पापात्मा प्राणीगण इस कुण्ड में सविधि स्नान करेंगे तब वे सुन्दर वस्त्रधारी होकर हंसयुक्त विमानारूढ़ होकर ब्रह्मलोक गमन करेंगे तथा पुनः वहाँ प्रलयकाल तक निवास करेंगे। लोग यहाँ पर यथासाध्य दान तथा होम करके अश्वमेध यज्ञ फल लाभ करेंगे। इस सरोवर में स्नान करने वाला श्रीमान् हो जाता है। यहाँ मानव यथाविधि स्नान, दान, जपादि करके समस्त यज्ञ के तुल्य फल को तथा महापातकों के नाश रूपी स्थिति को प्राप्त करता है।

सीता कुण्ड–

सीता कुण्ड के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

अत्र स्नानाञ्च दानञ्च जपो होमस्तपोऽथवा।

सर्वमक्षयतां याति विधानेन शुचिस्मिते।।

मार्ग कृष्ण चतुर्दश्यां तत्र स्नान विशेषतः।

सर्वपापहरं देवि! सर्वदा स्नायिनां नृणाम्।।[1]

अर्थात् स्वयं राम ने कहा है– हे शुचिस्मिते! यहाँ सीता कुण्ड में विधिवत् स्नान, दान, जप तथा होम करना अक्षय फलप्रद है। हे देवि! मनुष्य इस तीर्थ में स्नान द्वारा समस्त बन्धनरहित हो जाते हैं तथापि अग्रहायण कृष्ण चतुर्दशी के दिन सीता कुण्ड में स्नान प्रशस्त है।

क्षीरोदक कुण्ड–

क्षीरोदक कुण्ड की महत्ता का वर्णन स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

तत्र स्नात्त्वा नरो धीमान्विजितेन्द्रिय आदरात्।

सर्व कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान्।।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 6/4–5

आश्विने शुक्ल पक्षस्य एकादश्यांजित व्रतः।

तत्र स्नात्त्वा विधानेन दत्त्वाशक्त्याद्विजन्मने।।

विष्णुं सम्पूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात्।

पुत्रानवाप्नुयादिद्धि धर्माश्चविधि वन्नरः।।[1]

अर्थात् जो इन्द्रिय जनित विद्वान् मनुष्य इस क्षीरोदक में श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, उसकी सभी कामना सफल होती है। उसे ज्ञानी पुत्र की प्राप्ति होती है। जितेन्द्रिय मानव यथा विधान आश्विन एकादशी के दिन यहाँ स्नानोपरान्त यथा शक्ति ब्राह्मणगण को दान करके सविधि विष्णु पूजन प्रभृति विविध धर्मानुष्ठान द्वारा समस्त कामना पूर्ण करता है। उसे अनेक पुत्र भी प्राप्त होते हैं।

बृहस्पति कुण्ड–

बृहस्पति कुण्ड के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र च आचरेत्।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते।।

भवेद् बृहस्पतेः पीडायस्यगोचरबेधतः।

तेनाऽत्र विधिवत्स्नानं कार्य सङ्कल्पपूर्वकम्।।[2]

अर्थात् व्यक्ति इस कुण्ड में बृहस्पति तथा विष्णु की पूजा करके सर्वपाप विनिर्मुक्त होते हैं, वे विष्णुलोक गमन करने से अतीव हर्षित भी होते हैं। गोचर में जिसे बृहस्पति पीड़प्रद होते हैं, वे इस कुण्ड में सविधि स्नान करें।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/6–8
2. तदेव, 7/15–16

रुक्मिणी कुण्ड–

रुक्मिणी कुण्ड की महत्ता का वर्णन स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

सर्वकाममवाप्नोति तत्र स्नाने मानवः।

रुक्मिणी श्रीपति प्रीत्यैदातब्यञ्च स्वशक्तितः।।[1]

अर्थात् जो मानव रुक्मिणी कुण्ड में स्नान करता है, उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यहाँ रुक्मिणी तथा श्रीपति विष्णु की प्रसन्नतार्थ यथा शक्ति दान करना चाहिए।

वसिष्ठ कुण्ड–

वसिष्ठ कुण्ड के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशय।

अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठ समोभवेत्।।[2]

अर्थात् यहाँ समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है। इसमें संशय नहीं है जो मानव यहाँ स्नान करता है, वह वसिष्ठ के समान हो जाता है।

उर्वशी कुण्ड–

उर्वशी कुण्ड के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

भाद्रे शुक्ल तृतीयायां यात्राय साम्वत्सरी भवेत्।

विष्णु रत्र जनैःपूज्यः सर्वकामार्थशिद्धये।।[3]

अर्थात् भाद्र मासीय शुक्ला तृतीया के दिन उर्वशी कुण्ड की साम्वत्सरी यात्रा होती है। मानवगण सर्व काम सिद्धि हेतु यहाँ विष्णु पूजा करते हैं।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/26
2. तदेव, 7/74
3. तदेव, 7/106

भरत कुण्ड–

भरत कुण्ड की महत्ता के विषय में स्कन्द पुराण में वर्णित है–

तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्द निर्मलम्।

तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितृनुदिश्य कुर्वतः।।

पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्यु सर्वदेवता।।[1]

अर्थात् भरत कुण्ड में स्नान द्वारा व्यक्ति निर्मल हो जाता है। इस स्नान द्वारा प्रमोद तथा आनन्द वृद्धि होती है। जो मानव भरत कुण्ड में स्नान करके पितरों के श्राद्ध करता है, उसके पितृगण तथा देवगण संतुष्ट हो जाते हैं।

स्कन्द पुराण में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की जन्मस्थली के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व का अतीव सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है–

यद् दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासं जयो भवेत्।

बिना दानेन तपसा बिना तीर्थै विना मखैः।।

नवमी दिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः।

स्नान दान प्रभावेण मुच्यते जन्म बन्धनात्।।

कपिला गो सहस्राणि यो ददाति दिने–दिने।

तत्फलं समवाप्नोति जन्म भूमेः प्रदर्शनात्।।

आश्रमे वसतांपुंसा तापसानाञ्च यत्फलम्।

राजसूय सहस्त्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः।।

नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्म स्थाने विशेषतः।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 9/53

मातापित्रो गुरुणाञ्च भक्तिमुद्वहतांसताम्।।

तत्फलं समवाप्नोति जन्म भूमेः प्रदर्शनात्।।[1]

अर्थात् यहाँ दर्शन करने से मनुष्य पुनः गर्भ में नहीं आता। व्रतधारी मानव नवमी के दिन इस तीर्थ में स्नान तथा दान करके उस पुण्य प्रभाव से बिना दान, तप, तीर्थ, सेवा तथा यज्ञ किए ही जन्म बन्धन से रहित हो जाता है। जन्म भूमि के दर्शन मात्र से नित्य प्रति हजारों हजार कपिला गोदान का फल लाभ होता है। आश्रम में रहकर तप करने वाले ऋषिगण का जो पुण्य है, हजारों राजसूय यज्ञ अनुष्ठान का जो फल है, प्रतिवर्ष अग्निहोत्र करने का जो फल है, वह मनुष्य नियमस्थ होकर इस जन्म भूमि के दर्शन से प्राप्त कर लेता है। साधु चरित्र व्यक्ति माता–पिता, गुरुजन के प्रति भक्ति दिखलाने से जो फल लाभ करते हैं, जन्मभूमि के दर्शन मात्र से वही फल मिलता है।

इसी भाँति महाभारत में भी अयोध्या में स्थित गोप्रतार घाट के आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व का विवेचन किया गया है तथा अन्यान्य तीर्थों का वर्णन भी प्राप्त होता है।

महाभारत में प्रोक्त है–

गोप्रतारं ततो गच्छेत्सरय्वास्तीर्थमुत्तमम्।

यत्र रामोगतः स्वर्गं सभृत्य बलवाहनः।।

देहं त्यक्त्वा दिवं गातस्तस्य तीर्थस्य तेजसा।

रामस्य च प्रसादेन व्यवसायाच्चभारत।।

तस्मिंस्तीर्थे नरस्नात्त्वा गोप्रतार नराधिप।

सर्वपाप विशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते।।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/20–25

रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोमत्यांकुरुनन्दन।

अश्वमेधम वाप्नोति पुनाति च कुलं नरः।।

शत साहस्त्रिकं तत्र तीर्थं भारतसत्तम।

तत्रोपस्पर्शनं कृत्त्वा नियतो नियताशनः।।

गो सहस्त्र फलं पुण्यं प्राप्नोति भरतर्षभ।।[1]

अर्थात् वहाँ से सरयू के उत्तम तीर्थ गोप्रतार (गुप्तार घाट) को जाये। हे महाराज! जहाँ से राम अपने सेवक, सेना तथा वाहनों सहित स्वर्ग को गये। हे भारत! उस तीर्थ के तेज और राम की कृपा से तथा निश्चय से मनुष्य देह त्यागकर द्युलोक को जाता है। हे राजन्! उस गुप्तार घाट तीर्थ में स्नान करके मनुष्य सब पापों से शुद्ध आत्मा वाला होकर स्वर्ग लोक में पूजा जाता है। हे कुरुनन्दन! आगे गोमती के रामतीर्थ में स्नान करने से पुरुष को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है और उसके कुल का उद्धार हो जाता है। हे भरत कुल सिंह! वहीं शत साहस्त्र तीर्थ है, यदि जिता हारी और नियमधारी होकर उसका स्पर्श करे तो पुरुष को हजार गोदान का फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार पौराणिक वाङ्मय में सर्वत्र अयोध्या की धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक स्थिति का साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्राप्त होता है जिससे अयोध्या नगरी की महिमा अत्यधिक गौरव को प्राप्त करती है।

*****

1. महाभारत, आरण्यक पर्व, 82/63–67

अष्टम अध्याय

अयोध्या का शैक्षिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व

अयोध्या प्राचीनकाल से ही नगरीय सभ्यता की जननी रही है। महाराजा मनु द्वारा स्थापित तथा इक्ष्वाकुवंशीय नरेशों द्वारा शासित यह नगरी शैक्षिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से आदिकाल से ही सर्वोन्नत अवस्था में थी। यहाँ के ब्राह्मण अत्यन्त विद्वान् तथा वेद विद्या में पारङ्गत थे। आदिकाव्य के प्रणेता स्वयं महर्षि वाल्मीकि तत्कालीन इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के गुरू माने जाते हैं। महकवि भवभूति कृत उत्तररामचरित में वर्णन प्राप्त होता है–

वसिष्ठ एव ह्याचार्यो रघुवंशस्य सम्प्रति।

स एव चानयोर्ब्रह्मक्षत्र कृत्यं करिष्यति।।

यथा वसिष्ठागिङ्गरसौ ऋषिः प्राचेसस्तथा।

जनकाणां रघूणां च वंशयोरुभयोर्गुरुः।।[1]

अर्थात् इस समय महर्षि वसिष्ठ ही रघुकुल के आचार्य हैं और वही इन दोनों बालकों (लव, कुश) के ब्राह्मणोचित (वेदाध्ययनादि) तथा क्षत्रियोचित (धनुर्वेदाध्ययनादि) कार्य सम्पन्न करेंगे। जिस प्रकार रघुवंशी और जनकवंशी इन दोनों वंशों के राजाओं के महर्षि वसिष्ठ तथा शतानन्द क्रमशः गुरू हैं, उसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि भी इन दोनों वंशों के गुरू हैं।

तत्कालीन अयोध्या की शैक्षिक महत्ता का वर्णन स्वयं आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है कि तत्कालीन शिक्षा कितनी उत्कृष्ट कोटि की थी तथा शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत किन–किन विषयों का समावेश था। विद्यार्थी आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।

---

1. उत्तररामचरित, 7/14–15

भ्रातरो स्वर सम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ।।

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठतौ।

वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत् प्रभुः।।

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।

पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितवृतः।।

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।

जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलय समन्वितम्।।

रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।

वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतद्गायताम्।।

तौ तु गान्धर्व तत्त्वज्ञौ स्थानमूर्च्छनकोविदौ।

भ्रातरौ स्वर सम्पन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ।।[1]

अर्थात् राजकुमार कुश और लव दोनों भाई धर्म के ज्ञाता और यशस्वी थे। उनका स्वर बड़ा ही मधुर था और वे मुनि के आश्रम पर ही रहते थे उनकी धारणा शक्ति अद्भुत थी। और वे दोनों ही वेदों में पारङ्गत हो चुके थे। भगवान् वाल्मीकि ने उनकी ओर देखा और उन्हें सुयोग्य समझकर उत्तम व्रत का पालन करने वाले उन महर्षि ने वेदार्थ का विस्तार से ज्ञान कराने के लिए उन्हें सीता के चरित्र से युक्त सम्पूर्ण रामायण नामक महाकाव्य का जिसका दूसरा नाम पौलस्त्य वध या दशानन वध था, अध्ययन कराया।

वह महाकाव्य पढ़ने में, गाने में भी मधुर, द्रुत, मध्य और विलम्बित इन तीनों गतियों से अन्वित षड्ज आदि सातों स्वरों से युक्त, वीणा बजाकर स्वर

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 4/5–10 (स्वर और मूर्च्छना शब्द सङ्गीत गायन विद्या से सम्बन्धित है)

और ताल के साथ गाने योग्य तथा श्रृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर तथा भयानक आदि सभी रसों से अनुप्राणित है। दोनों भाई कुश और लव उस महाकाव्य को पढ़कर उसका गान करने लगे। वे दोनों भाई गान्धर्व विद्या (सङ्गीत शास्त्र) के तत्त्वज्ञ, स्थान और मूर्च्छना के जानकार, मधुर स्वर से सम्पन्न तथा गन्धर्वों के समान मनोहर रूप वाले थे।

लव और कुश की प्रखर बुद्धि तथा योग्यता का वर्णन भवभूतिकृत उत्तररामचरित में भी प्राप्त होता है, द्वितीय अङ्क में आत्रेयी वन देवता को बताते हुए कहती हैं–

अस्मिन्नगस्त्य प्रमुखा प्रदेशे भूयांस उद्गीथ विदो वसन्ति।

तेभ्योऽधि न्तु निगमान्त विद्या वाल्मीकि पार्श्वादिह पर्यटामि।।

वितरति गुरू प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे,

न त खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।

भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा,

प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्नमृदादयः।।[1]

अर्थात् इस प्रदेश में अगस्त्य आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त विद्या का अध्ययन करने के लिए वाल्मीकि ऋषि के पास से यहाँ आ रही हूँ। गुरू जिस प्रकार व्युत्पन्न शिष्य को उसी प्रकार मन्द बुद्धि शिष्य को भी विद्या देता है, वह उन दोनों शिष्यों के ज्ञान में न तो सामर्थ्य की वृद्धि करता है और न सामर्थ्य को नष्ट ही करता है परन्तु विद्या के फल में बहुत अधिक अन्तर होता है। जैसे स्वच्छ मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होती है मिट्टी आदि पदार्थ नहीं।

---

1. उत्तररामचरितम्, 2/3–4

उपरोक्त श्लोकद्वय के द्वारा आत्रेयी लव–कुश के साथ विद्याध्ययन में अपनी असमर्थता प्रकट करती है।

श्री रामबिहारी उपाध्याय द्वारा लिखित प्राचीन अयोध्या का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन पुस्तक के पृष्ठ 190 पर वर्णन आया है कि प्राचीन अयोध्या में और्व वरतन्तु वसिष्ठ, वाल्मीकि, सुयज्ञ तथा पतञ्जलि जैसे विद्वानों का राजकीय पालन–पोषण हुआ था। इन महर्षियों का सम्बन्ध अयोध्या के राज परिवारों के साथ–साथ वहाँके जनजीवन के साथ रहा होगा।

इन महर्षियों की तपो भूमियाँ, मानव जीवन के कोलाहल से परे थीं। इस प्रकार के स्थानों में उनकी शैक्षणिक संस्थाएँ भी विद्यमान रहती थीं, क्योंकि प्राचीनकाल में महर्षियों के आश्रम ही विद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित थे।

उत्तररामचरितम् में प्रोक्त है–

अवनिरयर सिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः,

स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां य प्रयोक्ता।

स च मुनिरनुयातारुन्धती को वसिष्ट

स्तवविररतुभद्रं भूयसे मङ्गलाय।।[1]

अर्थात् हम जैसों के साथ (अर्थात् तमसा जैसी नदियों और बासन्ती जैसी वन देवताओं के साथ) पृथ्वी, गङ्गा और छन्दों के सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले वह कुलपति वाल्मीकि और अरून्धती से अनुगत वह ऋषि वसिष्ठ आपके महान् कल्याण के लिए मङ्गल प्रदान करें।

1. उत्तररामचरितम्, 3/48

उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त 'कुलपति' शब्द की विवेचना करते हुए पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी आचार्य ने वर्णन किया है–

मुनीनां दश साहस्त्रं योऽन्नदानादि पोषणात्।

अध्यापयति विप्रार्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः।।[1]

अर्थात् जो दस हजार मुनियों को भोजन देते हुए उनका पालन–पोषण करता था और उन्हें पढ़ाता था उसे कुलपति कहते थे।

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में महर्षि वसिष्ठ के आश्रम के विषय में वर्णन प्राप्त होता है कि महर्षि वसिष्ठ का आश्रम नाना प्रकार के फूलों, लताओं और वृक्षों से शोभा पा रहा था। नाना प्रकार के मृग वहाँ सब ओर फैले हुए थे तथा सिद्ध और चारण उस आश्रम में निवास करते थे। देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उसकी शोभा बढ़ाते थे। शान्त मृग वहाँ भरे रहते थे।

बहुत से ब्राह्मणों, ब्रह्मर्षियों और देवर्षियों के समुदाय उसका सेवन करते थे। तपस्या से सिद्ध हुए अग्नि के समान तेजस्वी महात्मा तथा ब्रह्मा के समान महामहिम महात्मा सदा उस आश्रम में भरे रहते थे। उनमें से कोई जल पीकर रहता था तो कोई वायु पीकर। कितने ही महात्मा फल–मूल खाकर अथवा सूखे पत्ते चबाकर रहते थे। राग आदि दोषों को जीतकर मन और इन्द्रियों पर काबू रखने वाले बहुत से ऋषि जप–होम में लगे रहते थे। बालखिल्य मुनिगण तथा अन्यान्य बैखानस महात्मा सब ओर से उस आश्रम की शोभा बढ़ाते थे। इन सब विशेषताओं के कारण महर्षि वसिष्ठ का वह आश्रम दूसरे ब्रह्मलोक के समान प्रतीत होता था–

वसिष्ठस्याश्रम पदं नानापुष्पलताद्रुतम्।

नानामृगगणाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम्।।

---

1. उत्तररामचरितम्, पृ0 263

देव–दानवगन्धर्वैः किंनरैरूपशोभितम्।

प्रशान्तहरिणाकीर्णं द्विजसङ्घ निषेवितम्।।

ब्रह्मर्षिगण संकीर्णं देवर्षिगण सेवितम्।

तपश्चरणसंसिद्धैरग्निकल्पैर्महात्मभिः।।

सततं संकुलं श्रीमद् ब्रह्मकल्पैर्महात्मभिः।

अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्चशीर्णपर्णाशनैस्तथा।।

फल मूलाशनैर्दान्तैर्जित दोषैर्जितेन्द्रियः।

ऋषिभिर्वालखिल्यैश्च जप होम परायणैः।।

अन्यैर्वैखानसैश्चैव समन्तादुपशोभितम्।

वसिष्ठस्याश्रमपदं ब्रह्मलोकमिवा परम्।।[1]

महर्षि वसिष्ठ इक्ष्वाकुवंश के कुलगुरू थे। इस वंश के समस्त राजाओं ने इन्हीं से उत्तम शिक्षा ग्रहण की थी। स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने इन्हीं से शिक्षा ग्रहण की थी तथा समस्त विद्याओं में पारङ्गत हुए थे, वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सर्वविद्यावृतस्नातो यथावत् साङ्गवेदवित्।

इष्वस्त्रे च पितुः श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः।।

कल्याणभिजनः साधुरदीनः सत्य वागृजुः।

वृद्धैरभिविनीतश्च द्विजैर्धर्मार्थदर्शिभिः।।

धर्मकामार्थ तत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 51/23–28

लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः।।[1]

अर्थात् भरत के बड़े भाई श्रीराम सम्पूर्ण विद्याओं के व्रत में निष्णात् और छहो अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदों के यथार्थ ज्ञाता थे। बाण विद्या में तो वे अपने पिता से भी बढ़कर थे। वे कल्याण की जन्मभूमि, साधु, दैन्य रहित, सत्यवादी और सरल थे, धर्म और अर्थ के ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मणों के द्वारा उन्हें उत्तम शिक्षा प्राप्त हुई थी। उन्हें धर्म, काम और अर्थ के तत्त्व का सम्यक् ज्ञान था। वे स्मरण शक्ति से सम्पन्न और प्रतिभाशाली थे। वे लोकव्यवहार के सम्पादन में समर्थ समयोचित धर्माचरण में कुशल थे।

तत्कालीन अयोध्या के शैक्षिक संस्थानों अथवा गुरूकुलों में छात्रों के सर्वाङ्गीण विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता था, जिसका ज्ञान भगवान् श्री रामचन्द्र जी के वर्णित गुणों का अवलोकन करने से प्राप्त होता है–

श्रेष्ठ्यं चास्त्र समूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रकेषु च।

अर्थ धर्मौ च संगृह्य सुखतन्त्रो न चालसः।।

हारिकाणां शिल्पानां विज्ञातर्थ विभागवित्।

आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम्।।

धनुर्वेद विदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथ सम्मतः।

अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः।।[2]

अर्थात् भगवान् श्रीराम ने सब प्रकार के अस्त्र समूहों तथा संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं से मिश्रित नाटक आदि के ज्ञान में निपुणता प्राप्त की थी। वे धर्म और अर्थ का संग्रह करते हुए तदनुकूल काम का सेवन करते थे

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 1/20–22
2. तदेव, 1/27–29

और कभी आलस्य को पास फटकने नहीं देते थे। क्रीड़ा या मनोरंजन के उपयोग में आने वाले सङ्गीत वाद्य और चित्रकारी आदि शिल्पों के भी विशेषज्ञ थे। अर्थों के विभाजन का भी उन्हें सम्यक् ज्ञान था। वे हाथियों और घोड़ों पर चढ़ने और उन्हें भलीभाँति की चालों की शिक्षा देने में भी निपुण थे। श्री रामचन्द्र जी इस लोक में धनुर्वेद के सभी विद्वानों में श्रेष्ठ थे।

अतिरथी वीर भी उनका विशेष सम्मान करते थे। शत्रु सेना पर आक्रमण और प्रहार करने में वे विशेष कुशल थे। सेना सञ्चालन की नीति में उन्होंने अधिक निपुणता प्राप्त की थी। इसी प्रकार नरसिंह पुराण में भी प्रोक्त है–

जन्मादिकृत संस्कारौ पितुः प्रीतिकरौनृप।

ववृधाते महावीर्यौ श्रुतिशब्दातिलक्षणौ।।

भरतः कैकयो राजन् भ्रात्रा सह गृहेऽवसत्।

वेदशास्त्राणि बुबुधेशस्त्रशास्त्रं नृपोत्तमः।।[1]

अर्थात् जातकर्मादि संस्कारों से सम्पन्न हो, वे दोनों महान् शक्तिशाली भाई, पिता की प्रसन्नता बढ़ाते हुए बढ़ने लगे। उनके शुभ लक्षण अश्रुत पूर्व एवं वर्णनातीत थे। अथवा वे वेद और व्याकरणादि शास्त्रों में पारङ्गत होने के शुभ लक्षण से सुशोभित थे। राजन् कैकेयी नन्दन भरत अपने अनुज शत्रुघ्न के साथ प्रायः घर पर ही रहते थे। नृपोत्तम! उन्होंने वेद, शास्त्र और अस्त्र विद्या भी सीख ली।

महर्षि विश्वामित्र से श्रीराम तथा लक्ष्मण जी ने बला–अतिबला नामक विद्या ग्रहण की थी–

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 47/43–44

बलामति बलां चैव समन्त्रे च ससंग्रहे।

क्षुत्पिपासापनयने पुनश्चैव महामतिः।।

अस्त्र ग्राममशेषं तु शिक्षयित्वा तुतौ तदा।

आश्रमाणि च दिव्यानि मुनीनां भावितात्मान्।।[1]

अर्थात् विश्वामित्र जी ने बला और अतिबला नामक दो विद्याएँ प्रदान की जो क्षुधा और पिपासा को दूर करने वाली हैं। मुनि ने उन विद्याओं को मन्त्र संग्रह पूर्वक सिखाया फिर उसी समय उन्हें सम्पूर्ण अस्त्र समुदाय की शिक्षा देकर उन साधु श्रेष्ठ मुनि ने श्रीराम और लक्ष्मण को अनेक आत्मज्ञानी मुनीश्वरो के दिव्य आश्रम दिखाये।

इसी का समर्थन वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

एतद् विद्या द्वये लब्धे न भवेत् सदृशस्तव।

बलाचातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।।

क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम।

बलामतिबलां चैव षठतस्तात राघव।।[2]

अर्थात् इन दोनों विद्याओ के प्राप्त हो जाने पर कोई तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा, क्योंकि ये बला और अतिबला नामक विद्याएँ सब प्रकार के ज्ञान की जननी हैं। बला और अतिबला का अभ्यास कर लेने पर तुम्हें भूख–प्यास का भी कष्ट नहीं होगा।

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 47/71–72
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 22/17–18

भारद्वाज ऋषि के आश्रम का वर्णन भी वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है। जहाँ पर वनवास काल में भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मण तथा सीताजी के साथ गये थे–

स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम्।

संशितवृतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम्।।

हुताग्निहोत्रं दृष्टवैव महाभागः कृताञ्जलिः।

रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतयाचाभ्यवादयत्।।[1]

अर्थात् पर्णशाला में प्रवेश करके उन्होंने तपस्या के प्रभाव से तीनों कालों की सारी बातें देखने की दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेने वाले एकाग्रचित्त तथा तीक्ष्ण व्रतधारी महात्मा भारद्वाज ऋषि का दर्शन किया, जो अग्निहोत्र करके शिष्यों से घिरे हुए आसन पर विराजमान् थे। महर्षि को देखते ही लक्ष्मण और सीता सहित महाभाग श्रीराम ने हाथ जोड़कर उनके चरणों में प्रणाम किया।

पौराणिक वाङ्मय के अतिरिक्त लौकिक साहित्य में भी अयोध्या की शैक्षिक स्थिति एवं आश्रमों का वर्णन हुआ है। महाकवि कालिदास विरचित रघुवंशम् में भी वसिष्ठ आश्रम का वर्णन प्राप्त है–

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुश फलाहरैः।

पूर्यमाणम दृश्याग्निपृत्युद्यातैस्तपस्विभिः।।

आकीर्ण मृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।

अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः।।

सेकान्ते मुनि कन्याभिस्तत्क्षणोज्झित वृक्षकम्।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 54/11–12

विश्वासायविहंगानामाल वालाम्बुपायिनाम्।।

आत पात्यय संक्षिप्त नीवारासु निषादिभिः।

मृगैर्वतितरो मन्थमुटजाङ्गण भूमिषु।।

अभ्युत्थिताग्नि पिशनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान्।

पुनानं पवनोद्भूतैर्धूमैराहुति गन्धिभिः।।[1]

अर्थात् वसिष्ठाश्रम की शोभा का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास कहते हैं कि समिधा कुश और फल लिए हुए अदृश्य अग्नि का आदर किए हुए वनों से लौटते हुए तपस्वियों से परिपूर्ण पत्तों की कुटी का द्वार रोकने वाले ऋषि पत्नियों की सन्तान की भाँति धान्य के भाग पाने वाले मृगों से भरा हुआ। थाँवलों का जलपान करने वाले पक्षियों के विश्वास के निमित्त मुनि कन्याओं के तत्काल सींचकर छोड़े हुए छोटे वृक्षों वाला। पर्णशालाओं के आङ्गन की भूमि में जहाँ कि गरमी के बीच से मुनियों ने अन्न इकट्ठा करके धरा है, बैठे हुए हरिणों के त्यागे हुए जुगालों वाला। जलती हुई आग के बताने वाले वायु के उठाये हुए आहुति की गन्ध से मिले हुए धुओं से आश्रम की ओर आते हुए अतिथियों को पवित्र करने वाला है।

रघुवंशम् में अन्यत्र प्रोक्त है–

निर्दिष्टा कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयत परिग्रह द्वितीयः।

तच्छिष्याध्ययन निवेदितावसानां संविष्ट कुशशयने निशांनिनाय।।[2]

अर्थात् कुलपति की दिखाई हुई पर्ण कुटी में जाकर उस पतिव्रता के साथी कुशासन पर सोने वाले उनके शिष्यों के वेद पढ़ने से जागे हुए सवेरे वाली रात्रि बिताई।

---

1. रघुवंशम्, 1/49–53
2. तदेव, 1/95

महाराज रघु की शिक्षा के विषय में भी रघुवंशम् में प्रोक्त है–

स वृत्तचूलश्चल काकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरान्वितः।

लिपेर्यथावद्गृहणेन वाङ्मयं नदी मुखेनेव समुद्रमाविशत्।।

अथोपनीतं विधिवद्विपश्वितो विनिन्युरेनं गुरुवो गुरुप्रियम्।

अबन्ध्ययत्नाश्वबभूवुरत्र ते क्रियाहि वस्तूपहिता प्रसीदति।।[1]

अर्थात् चूड़ाकर्म को प्राप्त हुए चलायमान अलकों वाले, समान अवस्था के मन्त्रि पुत्रों से युक्त वह रघु नदी द्वार से समुद्र में प्रवेश करने के समान अक्षरों को यथावत् ग्रहण कर शब्द शास्त्र में प्रविष्ट हुआ। इसके उपरान्त निपुण गुरूजन विधिपूर्वक यज्ञोपवीत को प्राप्त हुए, पिता के प्रिय इस रघु को सिखाते हुए और इस रघु में परिश्रम सफल हुआ, कारण कि सुपात्र में की हुई शिक्षा फलीभूत होती है।

शैक्षिक उत्कर्ष के साथ–साथ अयोध्या की सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति भी अपनी चरमोत्कर्ष अवस्था में थी। समाज में चारों वर्णों के लोग अपने–अपने वर्ण में निर्धारित धर्मों तथा कर्त्तव्यों के पालन में निरन्तर रत् रहते थे।

पद्म पुराण में प्रोक्त है–

ब्राह्मण वेदसम्पन्नाः पवित्रादर्भपाणयः।

धौतोत्तरीयवलिता जग्मुः श्रीरघुनायकम्।।

क्षत्रियां ये शूरतमा धनुर्बाणधरावराः।

संग्रामे बहुशोवीराजेतारोययुरप्यमुम्।।

वैश्याः धनसमृद्धाश्च मुद्राशोभितपाणयः।

---

1. रघुवंशम्, 3/28–29

शुभ्रवस्त्रपरीधाना अभिजग्मुर्नरेश्वरम्।।

शूद्राद्विजेषु ये भक्ताः स्वीयाचार सुनिष्ठिताः।

वेदाचार रतायेवैतेऽपि जग्मुः पुरी पतिम्।।[1]

अर्थात् जब श्री रामचन्द्र जी वनवास से अयोध्या आये तो वैदिक ज्ञान से सम्पन्न ब्राह्मण हाथों में कुश लिए, धोती और चादर से सुसज्जित होकर श्री रामचन्द्र जी के पास गये। क्षत्रिय जिन्होंने संग्राम भूमि में उनके वीरों पर विजय पायी थी, वे धनुष–बाण धारण करने वाले श्रेष्ठ और सूरमा क्षत्रिय भी उनके समीप गये। धन–धान्य से सम्पन्न तथा समृद्ध वैश्य भी सुन्दर वस्त्र पहनकर श्रीराम के निकट उपस्थित हुए। उस समय उनके हाथ स्वर्ण मुद्राओं से सुशोभित हो रहे थे तथा वे शूद्र जो ब्राह्मणों के भक्त थे, अपने जातीय आचार में दृढ़तापूर्वक स्थित और धर्म–कर्म का पालन करने वाले थे। अयोध्यापुरी के स्वामी श्री रामचन्द्र जी के पास आये।

इसी तथ्य का समर्थन वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है–

वर्णेष्वग्रय चतुर्थेषु देवतातिथि पूजकाः।

कृतज्ञाश्च वादान्याश्च शूरा विक्रम सङ्युता।।

दीर्घायुषो नराः सर्वेधर्मं सत्यं च संश्रिताः।

सहिताः पुत्रपौत्रेश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे।।

क्षत्रं ब्रह्ममुखंचासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।

शूद्राः स्वकर्म निरता स्त्रीन् वर्णानुपचारिणः।।[2]

---

1. पद्म पुराण, पातालखण्ड, 3/16–19
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 6/17–19

अर्थात् ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लोग देवता और अतिथियों के पूजक कृतज्ञ, उदार शूरवीर और पराक्रमी थे। उस श्रेष्ठ नगर में निवास करने वाले सब मनुष्य दीर्घायु तथा धर्म और सत्य का आश्रय लेने वाले थे। वे सदा स्त्री, पुत्र और पौत्र आदि परिवार के साथ सुख से रहते थे। क्षत्रिय ब्राह्मणों का मुँह जोहते थे, वैश्य, क्षत्रियों की आज्ञा का पालन करते थे और शूद्र अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा में संलग्न रहते थे।

ब्रह्माण्ड पुराण में भी प्रोक्त है–

ब्राह्मणादींस्तथा वर्णान्स्वेस्वेधर्मे पृथक् पृथक्।

स्थापयित्त्वा यथा न्यायं रक्षात्याहतेन्द्रियः।।

प्रजाश्च सर्ववर्णेषु यथा श्रेष्ठानुवर्तिनः।

वर्णाश्चैवनुलोम्येन तद्दर्थेषु च क्रमात्।।[1]

इसी प्रकार कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वर्णाश्रम व्यवस्था को समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बताया है। वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति को सामूहिक हित चिन्तन की ओर ले जाता है जबकि आश्रम व्यवस्था उसको व्यक्तिगत उन्नयन की ओर आकर्षित करती है, इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के द्वारा समाज के सभी वर्गों के कर्त्तव्य और धर्म निर्धारित थे– अर्थशास्त्र में प्रोक्त है–

स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति।

क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्रा जीवोभूतरक्षणं च।

वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च।

शूद्रस्यद्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारूकु–शीलव कर्म च।।[2]

---

1. ब्रह्माण्ड पुराण, मध्य भाग, उपोद्वातवाद, 50/2–3
2. अर्थशास्त्र, 1/2/3

अर्थात् ब्राह्मण का धर्म अध्ययन–अध्यापन, यज्ञ–याजन और दान देना तथा दान लेना है। क्षत्रिय का धर्म है पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना। वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषि कार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है। इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करे। खेती, पशुपालन तथा व्यापार करे और शिल्प, गायन, वादन एवं चारण, भाट आदि का कार्य करे।

इसी प्रकार मनुस्मृति का भी कथन चारों वर्णों के लिए है–

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।

दानंप्रीतग्रहञ्चैव ब्राह्मणानाम कल्पयत्।।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययन मेव च।

विषयेष्व प्रसक्तिश्चक्षत्रियस्य समासतः।।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।

वणिक् पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेव च।

एकमेवतु शूद्रस्य प्रभुकर्म समादिशत्।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूपानमूसूयया।।[1]

अर्थात् वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना यह छः कर्म ब्राह्मण के लिए बनाये।

प्रजा की रक्षा करना, वेद पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना और सांसारिक विषयों में चित्त न लगाना अर्थात् आसक्त न होना ये पाँच कर्म क्षत्रियों के लिए नियत किए।

---

1. मनुस्मृति, 1/88–91

चौपायों की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना, व्याज लेना, खेती करना ये सात कर्म वैश्यों के लिए नियत किए।

शूद्र के लिए एक ही कर्म प्रभु ने नियत किया अर्थात् तन और मन से तीनों वर्णों की सेवा।

वाल्मीकि रामायण में तो स्थाने–स्थाने चारों वर्णों के धर्म तथा कर्त्तव्य वर्णित हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज को सुचारूप रूप से चलाने के लिए अयोध्या में वर्ण व्यवस्था का प्रचलन सम्यक् रूपेण था।

मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु के अनन्तर कतिपय संस्कारों का वर्णन धर्मशास्त्रों में वर्णित है जिनके द्वारा मनुष्य गर्भादि दोषों से मुक्त होकर पवित्र होता है।

मनुस्मृति में बताया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को गर्भाधानादि शारीरिक संस्कार लोक और परलोक में पवित्र करने वाले होते हैं–

वैदिके कर्माभि पुण्यैर्निषेकादिर्द्विव जन्मनाम्।

कार्यः शरीर संस्कारपावनः प्रेत्य–चेह च।।[1]

तत्कालीन अयोध्या के समाज में इन संस्कारों का प्रचलन था। वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि महर्षि वसिष्ठ ने महाराजा दशरथ के चारों पुत्रों के नामकरण संस्कार विधि–विधान पूर्वक करवाये थे।

अतीत्यैकादशाहं तु नाम कर्मतथाकरोत्।

ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयी सुतम्।

सौमित्रिं लक्ष्मणमितिशत्रुघ्नमपरं तथा।

वसिष्ठ परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा।।

---

1. मनुस्मृति, 2/26

ब्राह्मणान् भोजयामास पौर जानपदानपि।

अददद् ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु।।

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।

तेषां केतुरिव ज्येष्ठोरामो रतिकरः पितुः।।[1]

अर्थात् ग्यारह दिन बीतने पर महाराज ने बालकों का नामकरण संस्कार किया उस समय महर्षि वसिष्ठ ने प्रसन्नता के साथ सबके नाम रखे। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र का नाम राम रखा। श्रीराम महात्मा थे। कैकेयी कुमार का नाम भरत तथा सुमित्रा के एक पुत्र का नाम लक्ष्मण और दूसरे का शत्रुघ्न निश्चित किया। राजा ने ब्राह्मणों, पुरवासियों तथा जनपदवासियों को भी भोजन कराया। ब्राह्मणों को बहुत से उज्ज्वल रत्न समूह दान किए।

महर्षि वसिष्ठ ने समय–समय पर राजा से उन बालकों के जातकर्म आदि सभी संस्कार करवाये।

उपर्युक्त संस्कारों की अवधि तथा विधि का निर्देश मनुस्मृति में भी प्रोक्त है–

प्राङ्नाभिर्वर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते।

मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्य मधुसर्पिसाम्।।

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यांवाऽस्यकारयेत्।

पुण्येतिथौ मुहुर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।।[2]

अर्थात् नासिका छेदन से पूर्व जातकर्म होता है उसमें मन्त्र पढ़कर सोने के अर्क व शहद तथा घी बालक को खिलाना चाहिए। जन्म से ग्याहरवें व

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/21–24
2. मनुस्मृति, 2/29–30

बारहवें दिन नामकरण करना चाहिए। यदि इन दिनों में न हो सके तो और किसी उत्तम तिथि नक्षत्र तथा दिन में करना चाहिए।

इसी प्रकार महाकवि कालिदास विरचित रघुवंशम् में भी संस्कार के विषय में प्रोक्त है–

स जात कर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते।

दिलीप सूनुर्मणिराकरोद्भवः प्रयुक्त संस्कार इवाधिकं बभौ।।[1]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में पाणिग्रहण संस्कार का भी वर्णन प्राप्त होता है। भगवान् श्रीराम तथा माता सीता के विवाह संस्कार के सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमन्त्रपुरस्कृतम्।

जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो मुनि पुंगवः।।

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम्।

समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा।।

अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्।

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।।

प्रतीच्छचैनां भद्रं ते पाणि गृहणीष्वपाणिना।

पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा।।

इत्युक्त्वा प्राक्षिपद् राजा मन्त्रपूतं जलं तदा।

साधुसाध्विति देवाना मृषीणां वदतां तदा।।[2]

---

1. रघुवंशम्, 2/18
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 73/24–28

अर्थात् मुनिवर वसिष्ठ ने मन्त्रोच्चारण करते हुए विधिपूर्वक अग्नि स्थापन किया और विधि को प्रधानता देते हुए मन्त्र पाठपूर्वक प्रज्ज्वलित अग्नि में हवन किया। तद्नन्तर राजा जनक ने सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित सीता को ले आकर अग्नि के समक्ष श्री रामचन्द्र जी के सामने बिठा दिया और माता कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाले उन श्रीराम से कहा– रघुनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणी के रूप में उपस्थित है। इसे स्वीकार करो और इसका हाथ अपने हाथ में लो। यह परम पतिव्रता महान् सौभाग्यवती और छाया की भाँति सदा तुम्हारे पीछे चलने वाली होगी। यह कहकर राजा ने श्रीराम के हाथ में मन्त्र से पवित्र हुआ सङ्कल्प का जल छोड़ दिया। उस समय देवताओं और ऋषियों के मुख से जनक के लिए साधुवाद सुनायी देने लगा।

इसी प्रकार वर्तमान समय में प्रचलित अन्तिम संस्कार तथा श्राद्ध आदि का वर्णन भी अयोध्या के तत्कालिक समाज में प्रचलित था। महाराजा दशरथ के अन्तिम संस्कार का वर्णन करते हुए वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

तदा हुताशनं हुत्त्वा जेपुस्तस्य तद्वत्विजः।

जगुश्च ते यथा शास्त्रं तत्र सामानि सामगाः।।

शिबिकाभिश्चयानैश्च यर्थाहं तस्य योषितः।

नगरान्निर्ययुस्तत्रवृद्धैः परिव्रतास्तथा।।[1]

अर्थात् उस समय अग्नि में आहुति देकर उनके ऋत्विजों ने वेदोक्त मन्त्रों का जप किया। सामगान करने वाले विद्वान् शास्त्रीय पद्धति के अनुसार साम श्रुतियों का गायन करने लगे। इसके बाद चिता में आग लगायी।

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 76/18–19

तदनन्तर बूढ़े रक्षकों के साथ आयी रानियों ने श्मशान भूमि में आकर शव की परिक्रमा आदि की।

इसी प्रकार मृत्यु के अनन्तर किये जाने वाले श्राद्ध आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है–

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः।

द्वादशेऽहानि सम्प्राप्तेश्राद्धकर्माण्यकारयत्।।[1]

अर्थात् तदनन्तर दशाह व्यतीत हो जाने पर राजकुमार भरत ने ग्यारहवें दिन आत्मशुद्धि के लिए स्नान और एकादशाह श्राद्ध का अनुष्ठान किया, फिर बारहवाँ दिन आने पर उन्होंने अन्य श्राद्ध कर्म किए।

इस प्रकार संस्कार आदि का प्रचलन अयोध्या के तत्कालिक समाज में दृष्टव्य है।

चारों वर्णों के लोग अयोध्या में अपने–अपने कर्त्तव्यों तथा धर्म का पालन करने में लगे रहते थे। इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवस्थाओं को सुचारू रूप से चलाने के लिए अयोध्या में विभिन्न वर्गों का विभाजन उनके व्यवसाय के अनुरूप था जिसका वर्णन वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है–

मणिकारश्च ये केचित् कुम्भकारश्च शोभना।

सूक्रकर्म विशेषज्ञा ये च शस्त्रोपजीविनः।।

मायूरकाः क्राकचिका वेधका रोचकस्तथा।

दन्तकाराः सुधाकाराः ये च गन्धोपजीविनः।।

सुवर्णकारः प्रख्यातास्तथा कम्बलकारकाः।

स्नायकोष्णोदकावैद्या धूपकाः शौण्डिकास्तथाः।।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 77/1

रजकास्तुन्नवायाश्च ग्रामघोष महत्तराः।

शैलूषाश्च सह स्त्रीभिर्यान्ति कैवर्तकास्तथा।।

समाहिता वेदविदो ब्राह्मणा वृत्तसम्मताः।

गोरथैर्भरतं यान्तुमनु जग्मुः सहस्त्रशः।।[1]

अर्थात् जो कोई मणिकार (मणियों को सान पर चढ़ाकर चमका देने वाले) अच्छे कुम्भकार, सूत का ताना–बाना करके वस्त्र बनाने की कला के विशेषज्ञ, शस्त्र निर्माण करके जीविका चलाने वाले मायूरक (मोर के पंखों से छत्र व्यञ्जन आदि बनाने वाले) आरेसे चन्दन आदि की लकड़ी चीरने वाले, मणि, मोती आदि में छेद करने वाले, रोचक (दीवारों और वेदी आदि में शोभा का सम्पादन करने वाले), दन्तकार (हाथी के दाँत आदि से नाना प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करने वाले), सुधाकार (चूना बनाने वाले), गन्धी, प्रसिद्ध स्वर्णकार, कम्बल और कालीन बनाने वाले, गरम जल से नहलाने का काम करने वाले, वैद्य, धूपक (धूपन क्रिया द्वारा जीविका चलाने वाले), शौण्डिक (मद्य विक्रेता), धोबी, दर्जी, गाँवों तथा गोशालाओं के महतो, स्त्रियों सहित नट, केवट तथा समाहित चित्त सदाचारी वेदवेत्ता, सहस्त्रों बैलगाड़ियों पर चढ़कर वन की यात्रा करने वाले भरत के पीछे–पीछे गये।

इनके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 80/1–3 में वर्णित कुछ अन्य विशेष वर्गों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

जिस समय महात्मा भरत भगवान् श्री रामचन्द्र जी को वन से वापस अयोध्या लाने के लिए गये थे उस समय भगवान् श्रीराम ने भरत से अयोध्या कीस्थिति विषयक कुशल क्षेम पूछते हैं जिससे तत्कालीन अयोध्या की उत्कृष्ट सामाजिक स्थिति का अन्वेषण प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 83/12–16

काच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्टः सुनिविष्ट जना कुलः।

देव स्थानैः प्रयाभिश्च तटाकैश्चोपशोभितः।।

प्रहृष्ट नरनारीकः समाजोत्सव शोभितः।

सुकृष्टसीमापशुमानहिंसाभिरभि वर्जित।।

अदेव मातृको रम्यः स्वापदैः परिवर्जितः।

परित्यक्तो भयैः सर्वैः खनिभिश्चोपशोभितः।।

विवर्जितो नरैः पापैर्ममपूर्वैः सुरक्षितः।

कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव।।

कच्चित् ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।

वार्तायां संश्रितस्तात् लोकोऽयं सुखमेधते।।

तेषां गुप्तपरीहारैः कच्चित् ते भरणं कृतम्।

रक्ष्याहिराज्ञाधर्मेण सर्वे विषय वासिनः।।

कच्चित् स्त्रियः सान्त्वयसे कच्च्वित्तास्ते सुरक्षितः।

कच्चिन् श्रद्धा स्यासां कच्चिद् गुह्यंन भाषसे।।

कच्चिना गवनं गुप्तं कच्चित् ते सन्तिधेनुकाः।

कच्चिन् गणिकाश्वानां कुञ्जराणां च तृप्यसि।।[1]

अर्थात् रघुनन्दन भरत! जहाँ नाना प्रकार के अश्वमेध आदि महायज्ञों के बहुत से चयन प्रदेश शोभा पाते हैं, जिसमें प्रतिष्ठित मनुष्य अधिक संख्या में निवास करते हैं, अनेकानेक देवस्थान, पौसले और तालाब जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, जहाँ के स्त्री पुरुष सदा प्रसन्न रहते हैं जो सामाजिक उत्सवों के कारण

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/43–50

सदा शोभा सम्पन्न दिखायी देता है जहाँ खेत जोतने में समर्थ पशुओं की अधिकता है, जहाँ किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती, जहाँ खेती के लिए वर्षा जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता (नदियों के जल से सिंचाई हो जाती है), जो बहुत ही सुन्दर और हिंसक पशुओं से रहित है, जहाँ किसी तरहका भय नहीं है, नाना प्रकार की खानें जिसकी शोभा बढ़ाती हैं, जहाँ पापी मनुष्यों का सर्वथा अभाव है तथा हमारे पूर्वजों ने जिसकी भलीभाँति रक्षा की है, वह अपना कोशल देश धन–धान्य से सम्पन्न और सुखपूर्वक बसा हुआ है न?

तात् कृषि और गोरक्षा से आजीविका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीति पात्र हैं न, क्योंकि कृषि और व्यापार आदि में संलग्न रहने पर ही यह लोक सुखी एवं उन्नतिशील होता है। उन वैश्यों को इष्टि की प्राप्ति कराकर और उनके अनिष्ट का निवारण करके तुम उन लोगों का भरण–पोषण तो करते हो न? क्योंकि राजा को अपने राज्य में निवास करने वाले सब लोगों का धर्मानुसार पालन करना चाहिए। क्या तुम अपनी स्त्रियों को संतुष्ट रखते हो? क्या वे तुम्हारे द्वारा भलीभाँति सुरक्षित रहती हैं? तुम उन पर अधिक विश्वास तो नहीं करते? उन्हें अपनी गुप्त बात तो नहीं कह देते?

जहाँ हाथी उत्पन्न होते हैं, वे जङ्गल तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हैं न? तुम्हारे पास दूध देने वाली गौएँ तो अधिक संख्या में हैं न? (अथवा हाथियों को फँसाने वाली हथिनियों की तुम्हारे पास कमी नहीं है?) तुम्हें हथिनियों, घोड़ों और हाथियों के संग्रह से कभी तृप्ति तो नहीं होती?

सामाजिक न्याय व्यवस्था–

इसी प्रकार से सामाजिक न्याय व्यवस्था का भी वर्णन प्राप्त होता है–

कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चाप कर्मणा।

अदृष्टः शास्त्र कुशलैर्नलोभाद् बध्यते शुचिः।।

गृहीतश्चैव पृष्ठश्च काले दृष्टः सकारणः।

कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ।।

व्यसने कच्चिदाढयस्य दुर्बलस्य च राघव।

अर्थ विरागा पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः।।

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्य श्रूणि राघव।

तानि पुत्र पशून् हनन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः।।[1]

अर्थात् कभी ऐसा तो नहीं होता कि कोई मनुष्य किसी श्रेष्ठ निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुष पर भी दोष लगा दे तथा शास्त्र ज्ञान में कुशल विद्वानों द्वारा उसके विषय में विचार कराये बिना ही लोभवश उसे आर्थिक दण्ड दे दिया जाता है? जो चोरी में पकड़ा गया हो, जिसे किसी ने चोरी करते समय देखा हो, पूछताछ से भी जिसके चोर होने का प्रमाण मिल गया हो तथा जिसके विरुद्ध और भी बहुत से कारण हों, ऐसे चोर को भी तुम्हारे राज्य में धन के लालच से छोड़ तो नहीं दिया जाता है?

यदि धनी और गरीब में कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्य के न्यायालय में निर्णय के लिए आया हो तो तुम्हारे बहुज्ञ मन्त्री धन आदि के लोभ को छोड़कर उस पर विचार करते हैं न?

निरपराध होने पर भी जिन्हें मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है उन मनुष्यों की आँखों से जो आँसू गिरते हैं, वे पक्षपात पूर्ण शासन करने वाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं। मनुस्मृति में भी न्याय के अनुसार दण्ड व्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है–

दुष्येषुः सर्व वर्णाश्च भिद्यरेन्सर्वसेतवः।

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100/56–59

सर्व लोक प्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्।।[1]

अर्थात् दण्डनीय पुरुषों को दण्ड न देने से अदण्डनीय पुरुषों को दण्ड देन से सब वर्ण दुष्ट हो जावेंगे तथा मार्यादा टूट जावेगी। समस्त संसार क्रोधित हो जावेगा।

स्कन्द पुराण में भी महाराजा रघु जो उस समय अयोध्या के सम्राट् थे, के विषय में प्रोक्त है–

आसीत्पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्धनः।

रघुर्निजभुजोदार वीर्यशासित भूतलः।।

प्रतापतापितारातिवर्ग व्याख्यात् सद्यशाः।

प्रजाः पालयता सम्यक्तेन नीतिमतासता।।

यशः पूरेण संलिप्ता दिशोदशसितात्विषा।

स चक्रे प्रौढ़ विभव साधनां विजय क्रमात्।।

नानादेशान्समाक्रम्यचतुरङ्ग बलान्वितः।

भूतानिवशमानीयवसु जग्राहदण्डतः।।[2]

अर्थात् पूर्वकाल में इक्ष्वाकु कुल का वर्धन करने वाले रघुपति रघु ने अपने उदार भुजवीर्य से समस्त पृथ्वी मण्डल पर शासन किया उनके शत्रु यपि उनके प्रताप से भले ही तापित रहे हों तथापि वे भी उन रघु के शासन गुणों के कारण उनका यशगान करते थे। उन राजा रघु ने उत्तम नीति का आश्रय लेकर प्रजा का शासन तथा संरक्षण किया। उनकी यशः किरणें उस समय दसों दिशाओं को समाछन्न कर रही थीं। उस समय राजा रघु ने दिग्विजय से

---

1. मनुस्मृति, 7/24
2. स्कन्द पुराण, वैभव खण्ड, 4/34–37

अर्जित धन द्वारा विभव साधन का विचार करके नाना देशों पर आक्रमण करके चतुरङ्गिणी सेना लेकर दण्ड द्वारा राजाओं को वश में किया तथा उनसे धन लिया।

इसके अतिरिक्त राज्य व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए अनेकानेक पदाधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान था परन्तु राजा का स्थान सर्वोपरि था। अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के गुणों का वर्णन पौराणिक वाङ्मय में सर्वत्र वर्णित है।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुन्धरा।

प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्।।

येषां स सगरोनाम सागरोयेन खनितः।

षष्टिपुत्र सहस्त्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्।।

इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशो महात्मनाम्।

महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्।।[1]

अर्थात् यह समस्त पृथ्वी पूर्वकाल में प्रजापति मनु से लेकर अब तक जिस वंश के विजयशाली नरेशों के अधिकार में रही है, जिन्होंने समुद्र को खुदवाया था और जिन्हें यात्राकाल में साठ हजार पुत्र घेरकर चलते थे, वे महाप्रताप राजा सगर जिनके कुल में उत्पन्न हुए इन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओं की कुल परम्परा में रामायण नाम से प्रसिद्ध इस महान् ऐतिहासिक काव्य की अवतारणा हुई।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/1–3

महाकवि कालिदास ने अयोध्या के राजाओं के गुणों का वर्णन करते हुए रघुवंशम् में लिखा है–

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।

आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।

तदन्वये शुद्धि मति प्रसूतः शुद्धि मत्तरः।

दिलीप इति राजेन्दुरिन्दु क्षीरनिधाविव।।[1]

अर्थात् वैवस्वत नाम के मनु विद्वानों का पूजनीय राजाओं में प्रथम हुआ जैसे छन्दों में ओंकार। उसी पवित्र वंश में दिलीप नाम अति पवित्र राजेन्द्र ने जन्म लिया जैसे क्षीर सागर से चन्द्रमा ने।

अन्यत्र रघुवंशम् में ही प्रोक्त है–

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः।।[2]

अर्थात् वह नीति सिखलाने, रक्षा करने और पालने से प्रजाओं का पिता था, उनके माता–पिता केवल जन्म देने के ही कारण थे।

महाराजा दशरथ के सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण में वर्णन आया है–

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित् सर्वसंग्रहः।

दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः।।

इक्ष्वाकूणामति रथो यज्वा धर्मपरोवशी।

महर्षि कल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।

---

1. रघुवंशम्, 1/11–12
2. तदेव, 1/24

बलवान् निहतामित्रोमित्रवान् विजितेन्द्रियः।

धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्र वैश्रवणोपमः।।

यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता।

तथा दशरथो राजा लोकस्यपरि रक्षिता।।[1]

अर्थात् उस अयोध्यापुरी में रहकर राजा दशरथ प्रजा वर्ग का पालन करते थे। वे वेदों के विद्वान् तथा सभी उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करने वाले थे। दूरदर्शी और महान् तेजस्वी थे। नगर और जनपद की प्रजा उनसे बहुत प्रेम रखती थी। वे इक्ष्वाकु कुल के अतिरथी वीर थे। यज्ञ करने वाले, धर्म परायण और जितेन्द्रिय थे। महर्षियों के समान दिव्य गुण सम्पन्न राजर्षि थे। उनकी तीनों लोकों में ख्याति थी। वे बलवान्, शत्रुहीन, मित्रों से युक्त एवं इन्द्रिय विजयी थे। धन और अन्य वस्तुओं के सञ्चय की दृष्टि से इन्द्र और कुबेर के समान जान पड़ते थे, उसी प्रकार महाराजा दशरथ भी करते थे।

इसी प्रकार भगवान् श्री रामचन्द्र जी के राज्य काल का वर्णन वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।

न व्याधि जंभयंचासीद् रामे राज्यं प्रशासति।।

निर्दस्युरभवल्लोको नानार्थं कश्चिद् स्पृशत्।

न च स्म वृद्धाबालानां प्रेत कार्याणि कुर्वते।।

सर्वं मुदित मेवासीत् सर्वो धर्मो परोऽभवत्।

राममेवानु पश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम्।।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 6/1–4

आसन् वर्ष सहस्त्राणि तथा पुत्रसहस्त्रिणः।

निरामयाविशोकाश्च रामेराज्यंप्रशासीत।।

रामो रामो रामइतिप्रजानामभवन् कथाः।

रामभूतं जगदभूत् रामे राज्यं प्रशासति।।

नित्य मूला नित्यफलास्तरवस्तत्रपुष्पिताः।

कामवर्षी च पर्जन्यः सुख स्पर्शश्च मारुतः।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभ विवर्जिताः।

स्वकर्मसुप्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः।।

आसन् प्रजा धर्मपरा रामेशासतिनानृताः।

सर्वे लक्षण सम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः।।[1]

अर्थात् श्रीराम के राज्य शासनकाल में कभी विधवाओं का विलाप नहीं सुनायी पड़ता था। सर्प आदि दुष्ट जन्तुओं का भय नहीं था और रोगों की भी आशङ्का नहीं थी। सम्पूर्ण जगत् में कहीं चोरों या लुटेरों का नाम भी नहीं सुना जाता था। कोई भी मनुष्य अनर्थकारी कार्यों में हाथ नहीं डालता था और बूढ़ों को बालकों के अन्त्येष्टि संस्कार नहीं करने पड़ते थे। सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे सभी धर्मपरायण थे और श्रीराम पर ही बारम्बार दृष्टि रखते हुए कभी एक–दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचाते थे। श्रीराम के राज्य शासन करते समय लोग सहस्त्रों वर्षों तक जीवित रहते थे, सहस्त्रों पुत्रों के जनक होते थे और उन्हें किसी प्रकार का रोग या शोक नहीं होता था। श्रीराम के राज्य शासनकाल में प्रजा वर्ग के भीतर केवल राम, राम, राम की ही चर्चा होती थी। समस्त जगत् श्री राममय हो रहा था। श्रीराम के राज्य में वृक्षों की जड़ें सदा

1. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 128/98–105

मजबूत रहती थी। वे वृक्ष सदा फूलों और फलों से लदे रहत थे। मेघ प्रजा की इच्छा और आवश्यकतानुसार ही वर्षा करते थे। वायु मन्द गति से चलती थी, जिससे उसका स्पर्श सुखमय जान पड़ता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के लोग लोभरहित होते थे। सबको अपने ही वर्णाश्रमोचित कर्मों से संतोष था और सभी उन्हीं के पालन में लगे रहते थे। समस्त प्रजा धर्म में तत्पर रहती थी। झूठ नहीं बोलती थी। सब लोग उत्तम लक्षणों से सम्पन्न थे और सबने धर्म का आश्रय ले रखा था।

इसी प्रकार पद्म पुराण, पातालखण्ड में प्रोक्त है–

राज्यं प्राप्तम् सापत्नं समृद्धबलवाहनम्।

ऋषिभिर्हृष्टपुष्टैश्चरम्यं हाटकभूषणैः।।

सम्पुष्टमिष्टा पूर्तानां धर्माणां नित्य कर्तुभिः।

सदा सम्पन्न सस्यं चसुव सुक्षेत्र सङ्युतम्।।

सुदैश सुप्रजं स्वस्थं सुतृणं बहुगोधनम्।

देवतायतनानांच राजिभिः परिराजितम्।।

सुपर्णां यत्रवै ग्रामाः सुक्तिर्द्धि विराजिताः।

सुपुष्पकृत्रिमोद्यानाः सुस्वादुफल पादपाः।।[1]

अर्थात् श्रीराम का राज्य शत्रु रहित था तथा ऋषि–मुनि हृष्ट–पुष्ट थे, बाजार सदैव सजे एवं रम्य रहते थे। सदा इष्ट (यज्ञ–यागादि) और आपूर्त (कुएँ खुदवाने वाले, बगीचे लगवाने वाले) के अनुष्ठान करने वाले लोगों के द्वारा उस राज्य की जड़ मजबूत होती थी। समूचे राष्ट्र में सदा हरी–भरी खेती लहराती थी। जहाँ सुगमतापूर्वक यात्रा की जा सके ऐसे क्षेत्रों से वह देश भरा

1. पद्म पुराण, पातालखण्ड, 5/28–31

हुआ था। उस राज्य का देश सुन्दर और प्रजा उत्तम थी, सब लोग स्वस्थ रहते थे। गौएँ अधिक थीं और घास–पात का अच्छा सुभीता था। स्थान–स्थान पर देव मन्दिरों की श्रेणियाँ रामराज्य की शोभा बढ़ाती थीं, उस राज्य में सभी गाँव भरे–पूरे रहते थे और सम्पत्ति से सुशोभित थे। वाटिकाओं में सुन्दर–सुन्दर पुष्प शोभा पाते थे और वृक्षों में स्वादिष्ट फल लगते थे, कमलों से भरे हुए तालाब वहाँ की भूमि का सौन्दर्य बढ़ा रहे थे।

इसी प्रकार महाभारत में प्रोक्त है–

अधर्मारुचयो लुब्धा मूर्खा वा ना भवंस्तदा।

शिष्टेष्ट यज्ञ कर्माणः सर्वेवर्णास्तदा भवन्।।[1]

अर्थात् श्रीराम राज्य में लोग अधर्म में रुचि रखने वाले, लोभी और मूर्ख नहीं होते थे। उस समय सभी वर्णों के लोग अपने लिए शास्त्रविहित यज्ञ–यागादि का अनुष्ठान करते थे।

न तस्करा वा व्याधिर्वाविविधोपद्रवाः कचित्।

अनावृष्टिं भयं चात्र दुर्भिक्षो व्याधय कचित्।।

सर्वे प्रसन्नमेवासीदत्यन्त सुख सञ्युतम्।

एवं लोकोऽभवत् सर्वो रामे राज्यं प्रशासति।।[2]

अर्थात् श्रीराम राज्य में नाना प्रकार के रोग और भाँति–भाँति के उपद्रव नहीं थे। दुर्भिक्ष, व्याधि और अनावृष्टि का भय कहीं नहीं था। सारा जगत् अत्यन्त सुख से सम्पन्न और प्रसन्न ही दिखायी देता था। इस प्रकार श्रीराम के राज्य में सब लोग बहुत सुखी थे।

---

1. महाभारत, द्रोणपर्व, 59/17
2. तदेव, 59/20

महाकवि कालिदास कृत रघवंशम् में प्रोक्त है–

तेनाथवाल्लोभपराङ्मुखेन तेन हनता विघ्नभयं क्रियावान्।

तेनास लोकः पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री।।[1]

अर्थात् राम निर्लोभ थे इसलिए उन्होंने प्रजा पर कोई कर नहीं लगाया। फल यह हुआ कि थोड़े दिनों में प्रजा धनी हो गयी, वे कहीं भी विघ्न नहीं आने देते थे। इसलिए सभी लोग प्रसन्नता से यज्ञ आदि क्रियाएँ करने लगे। वे सभी को ठीक मार्ग पर चलाते थे इसलिए सभी इनको पिता के समान मानते थे, विपत्ति पड़ने पर वे सबको सहायता करते थे, इसलिए वे पुत्रवान् भी थे।

इसी प्रकार महाराजा दिलीप के सन्दर्भ में महाकवि कालिदास ने कहा है कि प्रजाओं के कल्याण कराने के निमित्त ही उन्होंने उनसे कर लिया जैसे सूर्य हजार गुना वर्षा करने के लिए पृथ्वी से जल ग्रहण करता है–

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत।

सहस्त्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।[2]

अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के समय में अयोध्या की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति का वर्णन स्कन्द पुराण में भी प्राप्त होता है।

स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ता ब्रहस्पति समैर्द्विजः।

वणिग्जनैस्तथापौरैः कल्पवृक्षैरिवा कृता।।

अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुत्यैर्दतिभिर्दिग्गजैरिव।

इति नाना विधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरी समा।।

---

1. रघुवंशम्, 14/23
2. तदेव, 1/18

यस्यां जाता महीपालाः सूर्यवंश समुद्भवाः।

इक्ष्वाकु प्रमुखाः सर्वे प्रजापालन तत्पराः।।[1]

अर्थात् अयोध्या में कहीं पर श्रेष्ठ ब्राह्मण बृहस्पति के समान सत्कवियों के साथ सम्भाषण करते हुए जा रहे हैं। कहीं पुरवासी कल्पतरु के समान वणिकों के साथ व्यापार चर्चा में लगे हैं। कहीं उच्चैश्रवा के समान घोड़े घूम रहे हैं। कहीं दिग्गजों के समान बृहद् हाथी जिनके बड़े–बड़े दाँत हैं, विचर रहे हैं। इस प्रकार नाना समृद्धियों से समृद्ध अयोध्या देवपुरी से समानता करती हुई विराजित है।

इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न प्रजा पालनरत सूर्यवंश समुद्भूत राजा इस अयोध्या में जन्मे थे।

राजा के अतिरिक्त राज्य व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए अन्य पदाधिकारी भी सहभाग करते थे जिनका पूर्व में अयोध्या के राजनैतिक महत्त्व के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है। प्रमुख रूप से राज्य की सम्यक् व्यवस्था का उत्तरदायित्व पूर्णरूपेण राजा का ही होता था।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी राजा को ही पूर्णतः उत्तरदायी बताया गया है–

राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गाय प्रजा धर्मेण रक्षितुः।

अरक्षितुर्वाक्षेप्तुर्वा मिथ्या दण्डमतोऽन्यथा।।[2]

अर्थात् धर्मपूर्वक प्रजा पर शासन करना ही राजा का निजी धर्म है वही उसको स्वर्ग तक ले जाता है। इसके विपरीत प्रजा की रक्षा न कर उसको पीड़ा पहुँचाने वाला राजा कभी सुखी नहीं रह सकता।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, 1/40–42
2. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 3/1/4

इसके अतिरिक्त अयोध्या के लोग उत्सव प्रिय थे। राजधानी में अवसर प्राप्त होने पर प्रजाजन अत्यन्त उत्साह एवं प्रसन्नतापूर्वक उत्सव इत्यादि का आयोजन किया करते थे। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है कि महाराजा दशरथ के यहाँ पुत्रों के जन्म पर महान् उत्सव मनाया गया था–

उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।

रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तकसञ्कुलाः।।

गायनैश्च विराविण्योवादनैश्च तथा परैः।

विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्न समन्विताः।।

प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधवन्दिनाम्।

ब्राह्मणेभ्योददौवित्तं गोधनानि सहस्त्रशः।।[1]

अर्थात् अयोध्या में बहुत बड़ा उत्सव हुआ। मनुष्यों की भारी भीड़ एकत्र हुई। गलियाँ और सड़कें लोगों से खचाखच भरी थीं। बहुत से नट और नर्तक वहाँ अपनी कलाएँ दिखा रहे थे, वहाँ सब ओर गाने–बजाने वाले तथा दूसरे लोगों के शब्द गूँज रहे थे। दीन–दुःखियों के लिए लुटाये गये सब प्रकार के रत्न वहाँ बिखरे पड़े थे। राजा दशरथ ने सूत–मागध और बन्दीजनों को देने योग्य पुरस्कार दिये तथा ब्राह्मणों को धन एवं सहस्त्रों गोधन प्रदान किये।

इसी प्रकार जब भगवान् श्री रामचन्द्र जी माता सीता जी से विवाह के उपरान्त मिथिला से अयोध्या आये थे तब अयोध्यावासियों ने उनकी भव्य आगवानी की थी–

चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम्।

पताका ध्वजिनीं रम्यांतूर्योद् धुष्टनिनादिताम्।।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/18–20

सिक्तराजपथा रम्यां प्रकीर्ण कुसुमोत्कराम्।

राजप्रवेश सुमुखैः पौरैर्मङ्गल पाणिभिः।।

सम्पूर्णां प्राविशद् राजा जनौघैः समलङ्कृताम्।

पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः।।[1]

अर्थात् सेना को नगर की ओर कूच करने की आज्ञा देकर वहाँ से चलकर बड़ी शीघ्रता के साथ वे अयोध्यापुरी जा पहुँचे। उस समय उस पुरी में सब ओर ध्वजा पताकाएँ फहरा रही थीं। सजावट से नगर की रमणीयता बढ़ गयी थी और भाँति–भाँति के वाद्यों की ध्वनि से सारी अयोध्या गूँज उठी थी। सड़कों पर जल का छिड़काव हुआ था, जिससे पुरी की सुरम्य शोभा बढ़ गयी थी। यत्र–तत्र ढेर के ढेर पुष्प बिखेरे गये थे। पुरवासी मनुष्य हाथों में माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर राजा के प्रवेश मार्ग पर प्रसन्न मुख होकर खड़े थे। इन सबसे भरी पूरी तथा जनसमुदाय से अलंकृत हुई अयोध्यापुरी में राजा ने प्रवेश किया। नागरिकों तथा पुरवासी ब्राह्मणों ने दूर तक आगे जाकर महाराज की आगवानी की थी।

इसी प्रकार भगवान् श्री रामचन्द्र जी के युवराज पर पर अभिषेक के समय भी महान् उत्सव का वर्णन प्राप्त होता है–

अलङ्कारंपुरस्यैवं कृत्त्वा तत् पुरवासिनः।

आकांक्षमाणा रामस्य यौवराज्याभिषेचनम्।।

समेत सङ्घशः सर्वे चत्वरेषु सभासु च।

कथयन्तो मिथस्तत्र प्रशशंसुर्जनाधिपम्।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 77/6–8
2. तदेव, अयोध्याकाण्ड, 6/19–20

अर्थात् इस प्रकार नगर को सजाकर श्रीराम के युवराज पद पर अभिषेक की अभिलाषा रखने वाले समस्त पुरवासी चौराहों और सभाओं में झुण्ड एकत्र होकर वहाँ परस्पर बातें करते हुए महाराज दशरथ की प्रशंसा करने लगे।

इसी प्रकार नरसिंह पुराण में प्रोक्त है–

प्रत्युत्थाय ततः पौराः सङ्खतुर्यादिभिःस्वनैः।

विशन्तं राममागत्य कृतदारं रणेऽजितम्।।[1]

अर्थात् नगरवासी जन शंख, दुन्दुभि आदि गाजे–बाजे के साथ राम की अगवानी किए तथा पत्नी सहित प्रभु श्रीराम को नगर में प्रवेश करते देख आनन्दमग्न हुए।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत् में भी अयोध्या के उत्सव के विषय में प्रोक्त है–

रामेलक्ष्मण सीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽ्हि सत्तमाः।

तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः।।

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान पतिंवीक्ष्य चिरागतम्।

उत्तरा कोसला माल्यैः किरन्तोननृतुर्मुदा।।[2]

अर्थात् इसके बाद सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ भगवान् श्रीराम ने ब्राह्मण और पूजनीय गुरूजनों को नमस्कार किया तथा समस्त प्रजा ने बड़े प्रेम से सिर झुकाकर भगवान् के चरणों में प्रणाम किया।

---

1. श्री नरसिंह पुराण, 47/156
2. श्रीमद्भागवत् महापुराण, 9/10/41–42

उस समय उत्तर कोशल देश की रहने वाली समस्त प्रजा ने अपने स्वामी भगवान् को बहुत दिनों के बाद आया देख अपने दुपट्टे हिला–हिलाकर पुष्पों की वर्षा करती हुई आनन्द से नाचने लगी।

इसके अतिरिक्त कला एवं संस्कृति की दृष्टि से अयोध्या अत्यन्त वैभवयुक्त अवस्था में थी क्योंकि अयोध्या में सभी शास्त्रों के विद्वान् मनुष्य निवास करते थे। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

अन्य कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन्।

पार्थिवांश्चनर व्याघ्रः पण्डितान् नैगमां स्तथा।।

पौराणिकान् शब्दविदो ये वृद्धाश्च द्विजातयः।

स्वराणां लक्षण ज्ञांश्च उत्सुकान् द्विज सत्तमान्।।

लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान् नैगमांश्च विशेषतः।

पादाक्षर समासज्ञांश्छन्दः सुपरिनिष्ठतान्।।

कला मात्र विशेषज्ञाञ्ज्योतिषे च परंगतान्।

क्रिया कल्पविदश्चैव तथा कार्यविशारदान्।।

भाषाज्ञानिङ्गितज्ञांश्चनैगमांश्चाप्यशेषतः।

हेतूपचार कुशलान् हैतुकांश्च बहुश्रुतान्।।

छन्दोविदः पुराणज्ञान् वैदिकान् द्विजसत्तमान्।

चित्रज्ञानवृत्त सूत्रज्ञान गीतनृत्यविशारदान्।।

शास्त्रज्ञानं नीति निपुणान् वेदान्तार्थ प्रबोधकान्।

एतान् सर्वान् समानीय गातारौ समवेशयत्।।[1]

अथात् लव–कुश द्वारा रामायण गान सुनने के लिए भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने कर्मानुष्ठान से अवकाश मिलने पर बड़े–बड़े मुनियों, राजाओं, वेदवेत्ता पण्डितों, पौराणिकों, वैयाकरणों, बड़े–बूढ़े ब्राह्मणों, स्वरों और लक्षणों तथा सङ्गीत विद्या के जानकारों विशेषतः निगमागम के विद्वानों अथवा पुरवासियों, भिन्न–भिन्न छन्दों के चरणों, उनके गुरू–लघु अक्षरों तथा उनके सम्बन्धों का ज्ञान रखने वाले पण्डितों, वैदिक छन्दों के परिनिष्ठित विद्वानों, स्वरों की ह्रस्व दीर्घ आदि मात्राओं के विशेषज्ञों, विभिन्न भाषाओं और चेष्टा तथा सङ्केतों को समझने वाले पुरुषों एवं सारे महाजनों को बुलवाया। इतना ही नहीं तर्क के प्रयोग में निपुण नैयायिकों, युक्तिवादी एवं बहुज्ञ विद्वानों, छन्दों, पुराणों और वेदों के ज्ञाता द्विजवरों, चित्रकला के जानकारों, धर्मशास्त्र के अनुकूल सदाचार के ज्ञाताओं, दर्शन एवं कल्पसूत्र के विद्वानों, नृत्य और गीत में प्रवीण पुरुषों, विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाताओं, नीति–निपुण पुरुषों तथा वेदान्त के अर्थ को प्रकाशित करने वाले ब्रह्मवेत्ताओं को भी वहाँ बुलवाया। इन सबको एकत्र करके भगवान् श्रीराम ने रामायण गान करने वाले दोनों बालकों को सभा में बुलाकर बिठाया।

इस प्रकार पौराणिक तथा लौकिक वाङ्मय के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि अयोध्या में समाज के चारों वर्णों ने वैदिक काल से ही शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सहिष्णुता की पृष्ठभूमि को प्रशस्त किया। अतः निश्चप्रचयेव अयोध्या को धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक–सांस्कृतिक आदर्श के प्रतिमान् के रूप में प्रतिष्ठित स्वीकार किया जा सकता है।

*****

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 94/4–10

नवम अध्याय

पौराणिक अयोध्या के साम्प्रतिक वैशिष्ट्य

पौराणिक अयोध्या के साम्प्रतिक वैशिष्ट्य–

प्राचीनकाल से अयोध्या नगरी की गणना सप्त मोक्षदायिनी पुरियों में होती रही है। अयोध्या के वैशिष्ट्य पर पुराण तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों के वर्णनों से यह सर्वविदित है कि अयोध्या शताब्दियों तक सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी रही है जिसे स्वयं महाराजा मनु ने बसाया था। वाल्मीकि रामायण के साथ–साथ अनेकानेक पुराणों ने इसे इन्द्र की राजधानी अमरावती पुरी से भी बढ़कर वैभवशालिनी बताया है। इसे स्वयं साक्षात् भगवान् विष्णु के चक्र पर अवस्थित बताया गया है। अयोध्या में महाराजा सगर, महाराजा भगीरथ, हरिश्चन्द्र, रघु, दशरथ जैसे महाप्रतापी अनेकानेक सम्राटों ने शासन किया। स्वयं परमात्मा विष्णु अपने अंशों के साथ श्रीराम रूप में अवतार लिए तथा समस्त संसार को धर्म और मर्यादा की शिक्षा दी।

अयोध्या न केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह सनातन मतावलम्बियों की आस्था का केन्द्र है। अपितु वह जितना सनातन धर्मियों के लिए महत्त्वपूर्ण है उतना ही अन्य धर्मावलम्बियों के लिए भी आस्था के केन्द्रबिन्दु के रूप में भी प्रसिद्ध है। जैन धर्म के अनुसार विश्व की कर्मभूमि में अयोध्या पहला नगर है। इसके सूत्रधार इन्द्रदेव थे और इसे देवताओं ने बनाया तथा बसाया था। जैन धर्म के 5 तीर्थङ्करों की जन्मभूमि अयोध्या मानी जाती है और इन्हीं के नाम के मन्दिर आज भी अयोध्या में विद्यमान् हैं। इन मन्दिरों में तीर्थङ्करों के चरण चिह्न बने हैं तथा इनके दर्शन को दूर–दूर तक के जैन मतावलम्बी आते रहते हैं।

बौद्ध धर्मावलम्बियों के मतानुसार बौद्ध धर्म का आदि जन्म स्थान अयोध्या है। यहीं से यह धर्म विश्व के अनेक देशों में जैसे– चीन, तिब्बत, श्रीलङ्का आदि देशों को गया। प्राचीनकाल में महात्मा बुद्धदेव ने यहाँ 16 वर्षों तक तपस्या की थी और ज्ञान प्राप्त किया था। किसी समय पर यहाँ बहुत

बड़ा बौद्ध विहार था जिसमें हजारों बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। अयोध्या के मध्य में एक सुन्दर तालाब है जिसे दन्त धावन कुण्ड कहते हैं इसके समीप में बहुत बड़ा विहार है जिसमें हजारों बौद्ध भिक्षु निवास करते हैं।

अयोध्या में सरयू तट के पास स्थित गुरुद्वारा ब्रह्म कुण्ड सिख मतावलम्बियों की आस्था का द्योतक है। यहाँ पर रखे हुए उनके धर्मग्रन्थों का दर्शन करने के लिए प्रतिवर्ष हजारों सिख यात्री अयोध्या आते हैं।

वैदिक काल से लेकर पौराणिक साहित्य तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में अयोध्या नगरी का जिस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है उससे यह विदित होता है कि सूर्यवंशी राजाओं के समय में अयोध्या अपने चरम वैभव पर थी। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंशम् में वर्णन किया है कि महाराजा कुश के समय में जब अयोध्या के वैभव में कमी आयी तो स्वयं अयोध्या की राजलक्ष्मी ने कुश को इस बात से अवगत कराया तथा महाराजा कुश ने पुनः अयोध्या का जीर्णोद्धार कराया।

सूर्यवंशी राजाओं के शासनकाल के पश्चात् अयोध्या के वैभव में उतार–चढ़ाव आता रहा। पश्चात् ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुशीलन से प्राप्त होता है कि महाराजा विक्रमादित्य ने पुनः अयोध्या का जीर्णोद्धार कराया था। सभी धर्मों के समय में अयोध्या के महत्त्व एवं वैभव में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु इस्लाम धर्म के भारत आगमन के पश्चात् मुस्लिम आततायियों की क्रूर दृष्टि अयोध्या पर भी पड़ी जिसके परिणाम के कुप्रभाव अयोध्या के वैभव पर भी पड़े। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जहाँ सम्पूर्ण भारत के मन्दिरों तथा प्रमुख स्थानों को नष्ट–भ्रष्ट किया वहीं अयोध्या के प्राचीन मन्दिरों तथा प्रमुख स्थानों को नष्ट किया तथा उनके नाम में परिवर्तन किया। मुस्लिम शासकों द्वारा परिवर्तित कुछ प्राचीन स्थलों के नाम निम्नलिखित हैं–

	प्राचीन नाम	शाही रूपान्तर नाम
1.	चक्रतीर्थ	इस्लामाबाद
2.	वसिष्ठ कुण्ड	कजियाना
3.	रामकोट	बेगमपुरा
4.	सप्त सागर	इटउबा
5.	मीरापुर	डेरा बीबी
6.	शृङ्गार हाट	नौगजी
7.	प्रमोद वन	वामेहयात
8.	राजद्वार	रहमानगंज
9.	मणि पर्वत	शीश पैगम्बर
10.	गोप्तार घाट	सआदगंज
11.	यम स्थली	हसनू कटरा
12.	स्वर्ग द्वार	सैद बाड़ा
13.	पापमोचन घाट	गोड़ियाना फटर
14.	रामगंज	रायगंज
15.	कुब्जगली	टेढ़ी बाजार
16.	त्रेता नाथ	उर्दू बाजार
17.	ऋण मोचन	फकीर बाड़ा
18.	कौशिल्या घाट	बेगम जहूरन की ड्यौढ़ी
19.	तुलसी बाड़ी	खजूरगंज
20.	राम घाट	रहीमाबाद
21.	जानकी घाट	अख्तरगंज
22.	वासुदेव घाट	अंगूरी बाग
23.	विशाषा वन	औलियाबाद
24.	कैकेयी घाट	जीनत मंजिल

25.	लक्ष्मण घाट	इमाम हुसैन की ड्यौढ़ी
26.	मत्त गजेन्द्र	पीर मतगेंड
27.	सुमित्रा घाट	अख्तर मंजिल
28.	बृहस्पति कुण्ड	बाग विजेसर
29.	विभीषण कुण्ड	सुत हट्टी
30.	सरजू बाग	अवेहयात
31.	नागकेसर वन	मस्ताव बाग
32.	स्वर्ण खान कुण्ड	सुलेमान बाग[1]

अयोध्या पर जब मुगल बादशाह बाबर ने सन् 1528 में आक्रमण किया जिसमें बाबर के मन्त्री मीरबांकी ने अपनी सेना के साथ पवित्र जन्मभूमि पर आक्रमण किया तथा जन्मभूमि के स्थान पर बाबरी मस्जिद का निर्माण करवाया। तभी से सनातन धर्मावलम्बी रामजन्म भूमि की मुक्ति के लिए प्रयास करने लगे तथा अनेकों हिन्दुओं ने अपना बलिदान दिया। तत्पश्चात् जब यह विवाद न्यायालय के अधीन हो गया तब भी सनातन धर्मी अपने स्तर से प्रयासरत् रहे। रामजन्म भूमि के पुनरूद्धार के लिए विश्व हिन्दू परिषद् तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कारसेवकों का बलिदान उल्लेखनीय तथा अविस्मरणीय है जिन्होंने आत्मोसर्ग द्वारा सम्पूर्ण देश ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के सनातन धर्मियों के हृदय में अयोध्या तथा रामजन्म भूमि के पुनरूद्धार की ज्योति जलायी। तथापि हिन्दू–मुस्लिम पक्षकारों के मध्य यह विवाद न्यायालय में चलता रहा।

30 सितम्बर, 2010 को उच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने सर्वसम्मति से रामजन्मभूमि के पक्ष में निर्णय दिया जिसके पश्चात् मुस्लिम

1. अयोध्या का प्राचीन इतिहास एवं गाइड, पृ0 41

पक्षकार सर्वोच्च न्यायालय चले गये। सर्वोच्च न्यायालय ने अनेकों मध्यस्थों के माध्यम से इस विवाद को सुलझाने का प्रयास किया परन्तु विवाद नहीं सुलझा अन्ततोगत्वा 9 नवम्बर, 2019 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निर्णय दे दिया। जिसमें विवादित भूमि पर रामलला का अधिकार बताते हुए तीन महीने में ट्रस्ट बनाने का आदेश दे दिया। साथ ही मुस्लिम पक्ष को भी अयोध्या में भूमि उपलब्ध कराने का आदेश उत्तर प्रदेश सरकार को दिया, जिसके लिए 5 एकड़ भूमि निर्धारित कर दी गयी।

इस प्रकार सन् 1528 ई0 से सन् 2020 तक अर्थात् 492 वर्ष के पश्चात् श्री रामजन्म भूमि तथा अयोध्या विवाद का पटाक्षेप हो पाया। इस समयावधि में अनेकानेक उतार–चढ़ाव अयोध्या ने देखे।

लखनऊ ब्यूरो अपडेटेड 10 फरवरी, 2021 से प्राप्त जानकारी के अनुसार वर्तमान् उत्तर प्रदेश सरकार तथा भारत सरकार दोनों के संयुक्त प्रयास द्वारा पौराणिक वैभवमयी अयोध्या का भव्य तथा नव्य स्वरूप देने का प्रयास प्रारम्भ किया जा चुका है। श्रीराम मन्दिर निर्माण से पूर्व अयोध्या को विश्वस्तरीय नगर बनाने की तैयारी है इसके लिए एल0ई0ए0 कम्पनी को मुख्य योजना बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

कम्पनी स्मार्ट सिटी की प्लॉनिंग, रिवर एरिया डेवलपमेंट, हेरिटेज टूरिज्म व अर्बन इन्फ्रास्ट्रक्चर का प्लॉन बनायेगी। पञ्चकोसी व चौदहकोसी परिक्रमा मार्ग पर श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए रेल उपरिगामी पुल, पुराने शहर में सीवरेज का निर्माण, शहर में नए तरीके से विद्युतीकरण, सरयू नदी पर बाँधों का निर्माण, बस स्टेशन का विस्तारीकरण, नमामि गङ्गे प्रोजेक्ट के अन्तर्गत नालों को सरयू नदी में गिरने से रोकना, सड़कों का सुदृढ़ीकरण जैसी अनेक योजनाओं पर शीघ्र ही कार्य प्रारम्भ होने वाला है। अयोध्या के सभी मन्दिरों के

साथ यहाँ के अन्य ऐतिहासिक तथा जातीय मन्दिरों को भी विकसित करने की योजना है। इसके लिए प्रथम चरण में इन मठ–मन्दिरों के महन्तों से मिलकर विकसित करने को कहा जायेगा। इसके लिए उनकी सहायता करने की योजना पर विचार किया जा रहा है।

सिंचाई व जल संसाधन विभाग द्वारा रिवर फ्रंट डेवलपमेंट के अन्तर्गत गुप्तार घार से राजघाट तक बाँधों का निर्माण व सुदृढ़ीकरण होगा। सरयू नदी पर बैराज, रबड़ डैम का निर्माण होगा इसके लिए अयोध्या बैराज स्थल का सर्वेक्षण कार्य हो चुका है। लोक निर्माण विभाग द्वारा अयोध्या की 10 सड़कों का सुदृढ़ीकरण किया जायेगा। राज्य सेतु निगम को उपरिगामी पुल निर्माण हेु निर्देश एवं राशि प्रदान कर दी गयी है। जैन धर्मावलम्बियों के धार्मिक स्थलों के पुनरूद्धार तथा संग्रहालय के लिए सरकार प्रयत्नशील है। गुरुद्वारा ब्रह्मकुण्ड के सौन्दर्यीकरण हेतु सरकार ने धनराशि आवंटित की है।

राम मन्दिर निर्माण के साथ ही अयोध्या विश्वस्तरीय पर्यटन नगरी के रूप में विकसित हो रही है। इसी क्रम में अब अयोध्या में आधुनिक सुख–सुविधाओं से सुसज्जित विश्वस्तरीय संग्रहालय बनाये जाने की योजना है। यह अपने आप में अद्वितीय संग्रहालय होगा क्योंकि इसके द्वारा देश–विदेश के लोगों को भारतीय संस्कृति के साथ–साथ भारतीय ज्ञान–विज्ञान, मन्दिर निर्माण की परम्परा, उनकी अद्भुत तकनीक, स्थापत्य, वास्तु शास्त्र की जानकारी भी उपलब्ध हो सकेगी। संग्रालय में अलग–अलग प्रकल्प बनाये जायेंगे। एक में मन्दिरों की शैली, दूसरे में हजारों साल पुराने मन्दिरों की तकनीक तो किसी में विदेश में स्थित हिन्दू धर्म के मन्दिरों की जानकारी रहेगी। संग्रहालय में मन्दिरों के कई प्राचीन स्वरूप भी होंगे। मन्दिर का विकास कब से शुरू हुआ, किस–किस शैली के मन्दिरों का निर्माण हुआ। आज

तक मन्दिर का निर्माण क्रम कैसे आगे बढ़ा, इन सबकी जानकारी मिल सकेगी।

पौराणिक अयोध्या के साम्प्रतिक वैशिष्ट्य में यह उल्लेख भी आवश्यक है। पौराणिक वाङ्मय में वर्णन आता है कि अयोध्या में जब कोई उत्सव होता था तब सम्पूर्ण नगर के प्रासादों तथा राजपथों को सजाया जाता था। राम राज्याभिषेक के पूर्व रात्रि में दीप मालाओं से सम्पूर्ण नगर जगमगा रहा था। वर्तमान उत्तर प्रदेश सरकार ने 3 नवम्बर, 2012 को अयोध्या स्थित राम की पैड़ी पर 9 लाख और अयोध्या के शेष हिस्सों में 3 लाख दीप प्रज्ज्वलित किए। रामजन्म भूमि परिसर में 51 हजार दीप प्रज्ज्वलित किए गए। इस कारण से यह दीपोत्सव गिनीज बुक ऑफ रिकार्ड में अङ्कित किया गया। वर्तमान सरकार भव्य एवं नव्य अयोध्या के नवनिर्माण के लिए पूर्ण मनोयोग से प्रयत्नशील है।

*****

उपसंहार

उपसंहार

पौराणिक वाङ्मय के महत्त्व के विषय में जितना भी कहा जाय कम है। वेदों के गूढ़तम् अर्थ को पुराणों में अत्यन्त सहज तथा सरस रूप में वर्णित किया गया है जो साधारण जनमानस को पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पालन क लिए सहज ही प्रेरित करता है। पुराणों में जिस प्रकार से धर्म–अधर्म, पुण्य–पाप, कर्म–अकर्म, उत्तम मानवीय गुण जैसे दया, दान, शौच, तप, त्याग, सेवा, सहनशीलता को उदाहरण के माध्यम से समझाया गया है, ऐसा विश्व साहित्य में कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता।

पुराणों की व्यवहारिक भाषा के द्वारा जहाँ मानव का क्लान्त मन विश्रान्ति प्राप्त करता है वहीं अनेकों प्रकार की सामाजिक एवं व्यवहारिक शिक्षा प्राप्त कर लेता है। पुराणों में सर्वसामान्य के जीवन की दैनन्दिन उपयोगिताओं से सम्बन्धित आख्यानों का वर्णन किया गया है। पुराणकार ने मनुष्य के जीवन के लिए कल्याणकारी बिन्दुओं को कहीं न कहीं स्पर्श अवश्य किया है जिससे प्राणियों के सर्वाङ्गीण विकास का मार्ग प्रशस्त हो सका। इस प्रकार पुराणों को सूर्य प्रकाश की भाँति समझा जा सकता है जो अंधेरे में भटके प्राणियों के जीवन को प्रकाशित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ। पुराणों में मनुष्य को सर्वाङ्गीण विकास के लिए अनेकों प्रकार के साधन बताये गये हैं जिनमें तीर्थ यात्रा का प्रमुखता से वर्णन किया गया है। अनेकों प्रकार के यज्ञों से मनुष्य को जो फल प्राप्त होता है वह फल तीर्थ यात्रा करके मनुष्य को सहजता से प्राप्त हो जाता है। तीर्थों की अत्यन्त महिमा है। तीर्थ यात्रा में जाकर मनुष्य स्वयं देवमय हो जाता है क्योंकि तीर्थ स्थानों में एक तो देवता या ऋषि विशेष का अंश शक्ति रूप में होता है तथा वहाँ निवास करने वाले ऋषि–मुनियों सदाचारी मनुष्यों के सत्सङ्ग से भी मनुष्य को अनेकानेक लाभ प्राप्त होते हैं।

प्राचीनकाल से ही तीर्थों की भूमि परम पवित्र मानी जाती है, वहाँ का वातावरण परम पवित्र होता है। तीर्थों में धार्मिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए मनुष्यों को सभी प्रकार से सहायता प्राप्त होती है क्योंकि तीर्थ इन सबके केन्द्रबिन्दु के रूप में होते हैं। तीर्थों में वैदिक एवं पौराणिक परम्पराओं के पालन सम्बन्धी क्रिया–कलापों के द्वारा एक आध्यात्मिक तथा धार्मिक वातावरण का सृजन हो जाता है, जहाँ पहुँचकर मनुष्य स्वयं को एक उच्च स्तर पर अवस्थित करने का प्रयास करता है, जो उसके तीर्थस्थल से लौटने के पश्चात् भी उसी प्रकार से मानवीय चेतना में रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है। तीर्थस्थल पर पहुँचकर मनुष्य के समस्त पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार स्वयमेव नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही जगत् गुरू की उपाधि से विभूषित रहा है क्योंकि कि यहाँ पर स्वयं श्री भगवान् का अवतरण हुआ है। देवता भी यहाँ जन्म लेने के लिए लालायित रहते हैं। वैसे तो सम्पूर्ण भारतभूमि तीर्थमय है परन्तु उसमें भी कुछ स्थान विशेष का अत्यधिक महत्त्व है। ऐसे ही महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थलों में अयोध्या परम पावन तीर्थस्थल है जहाँ पर स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने अवतार लिया तथा विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों को मानवता की शिक्षा प्रदान की।

अयोध्या को वैदिक काल से ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भगवान् श्री रामचन्द्र जी के अयोध्या शासन काल में समस्त प्रजा अत्यन्त सुखी तथा आनन्दित थी। मनुष्यों की कभी अकाल मृत्यु नहीं होती थी। कहीं पर रोग आदि का प्रकोप नहीं होता था। अयोध्या नगरी अपने पूर्ण वैभव पर थी। सम्पूर्ण राष्ट्र में सदा हरी–भरी खेती लहराती थी। जहाँ सुगमतापूर्वक यात्रा की जा सके ऐसे क्षेत्रों से वह देश हरा–भरा हुआ था। उस राज्य का देश सुन्दर तथा प्रजा उत्तम थी। सब लोग स्वस्थ रहते थे, गौएं अधिक थीं तथा सब प्रकार से हृष्ट–पुष्ट थीं। स्थान–स्थान पर देव मन्दिरों की श्रेणियाँ अयोध्या की

शोभा बढ़ाती थीं। अयोध्या में सभी गाँव भरे–पूरे और धन–सम्पत्ति से सुशोभित थे। वाटिकाओं में सुन्दर–सुन्दर पुष्प शोभा पाते थे और वृक्षों में स्वादिष्ट फल लगते थे, तालाब कमलों से परिपूर्ण सुशोभित होते थे।

अयोध्या के राजप्रासाद अत्यन्त भव्य थे। राजपथ सदैव साफ–सुथरे तथा बृहद् थे। बाजारों में सदैव चहल–पहल रहती थी। राज्य व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी। भगवान् राम के पूर्वज अर्थात् वे राजा जिन्होंने पूर्व में अयोध्या पर शासन किया था उन्होंने राज्य व्यवस्था की पूरे मनोयोग से देखभाल की थी तथा राजकोष को भी सुसम्पन्न किया था।

अयोध्या की सम्पूर्ण प्रजा भी अपने–अपने धर्म का पूर्ण मनोयाग से पालन करती थी। चारों वर्णों के लोग अपनी–अपनी वर्णव्यवस्था में निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करते हुए पुरुषार्थ चतुष्ट्य का अनुगमन करते थे।

नगर–निर्माण कला का जिस प्रकार का वर्णन पौराणिक तथा लौकिक साहित्य में प्राप्त होता है, उससे यह पता चलता है कि अयोध्या प्राचीनकाल से ही नगरीय सभ्यता की जननी रहा होगा। भौगोलिक, राजनीतिक तथा प्राकृतिक दृष्टिकोण से भारतवर्ष के अत्यन्त सुसम्पन्न क्षेत्र में अयोध्या नगरी स्थित है।

धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक रूप में देखा जाये तो अयोध्या ने समस्त संसार को शिक्षा प्रदान की है। सनातन धर्मियों के लिए तो यह धार्मिक केन्द्रबिन्दु रहा ही है अपितु बौद्ध धर्म के लिए भी यहीं से प्रकाशपुञ्ज बिखरा जिसने विश्व के अनेक देशों को आलोकित किया।

जैन ग्रन्थों में अयोध्या को प्रथम नगरी के रूप में वर्णन स्वयमेव अयोध्या के महत्त्व को प्रकाशित करता है। मध्यकाल में सिख धर्म के प्रथम गुरु

नानकदेव, नौवें गुरु तेग बहादुर एवं दसवें गुरु गोविन्द सिंह इस धरती को पवित्र कर चुके हैं। उनकी पावन स्मृतियों में यहाँ गुरुद्वारे भी हैं।

यहाँ पर प्राचीनकाल में वेद विद्या में पारङ्गत ब्राह्मण निवास करते थे, स्वयं वसिष्ठ, वाल्मीकि जैसे विद्वानों की अयोध्या आश्रय स्थली रही है। वर्तमान् समय में भी अनेक अखाड़े तथा छावनियाँ हैं जिनमें धार्मिक क्रिया–कलाप तथा सनातन संस्कृति का रक्षण एवं अभिवर्धन सतत् प्रयत्नशील रहता है।

अतः अयोध्या नगरी की विशिष्टता के सन्दर्भ को दृष्टिगत करते हुए अनेक क्षेत्रों में शोध की सम्भावनाएँ पायी जाती हैं। अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं ने शासन किया जिनके चरित्र तथा समाज में योगदान पर शोध सम्भव है। अयोध्या भारतीय समाज की अमूल्य धरोहर पर शोध कार्य अवश्यम्भावी होना सार्थक सिद्ध होगा।

इस प्रकार पौराणिक वाङ्मय में अयोध्या का यत्र–तत्र–सर्वत्र किसी न किसी रूप में वैभव वर्णन प्राप्त है जिसके अन्वेषण से यह विदित होता है कि प्राचीनकाल से ही अयोध्या नगरी पूर्णतयः सुसम्पन्न थी तथा इस नगरी ने सम्पूर्ण विश्व को शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान की। समय–समय पर इसके वैभव में कुछ उतार–चढ़ाव देखने को अवश्य प्राप्त हुए परन्तु प्राचीनकाल से आद्यतन इसकी महिमा में कमी नहीं आयी। यह नगरी समस्त धर्मों को स्वयं में समेटे है तथा सभी धर्मों की आस्था की सङ्गमस्थली के रूप में विद्यमान् है तथा हम सभी का यह कर्त्तव्य बनता है कि सनातन संस्कृति की रक्षा तथा अभिवर्धन हेतु अयोध्या के महत्त्व को समझें तथा इसके सम्वर्धन हेतु प्रयास करें।

*****

परिशिष्ट–1

अयोध्या के प्रसिद्ध देव प्रासाद तथा स्थल

अयोध्या के प्रसिद्ध देव-प्रासाद तथा स्थल

क्रमांक	देव–प्रासाद स्थल	विवरण पृष्ठ सङ्ख्या
1.	कनक भवन	162
2.	कालेराम मन्दिर	163
3.	कैकेयी भवन	164
4.	कोप भवन	164
5.	गुप्तार घाट	178
6.	चन्द्र हरि	135
7.	झुनकी घाट	169
8.	छोटी देवकाली	165
9.	जानकी महल मन्दिर	169
10.	हनुमान गढ़ी	161
11.	तुलसी स्मारक भवन	
12.	नन्दि ग्राम	166
13.	नागेश्वरनाथ महादेव	
14.	बड़ी देवकाली	165
15.	ब्रह्मकुण्ड गुरुद्वारा	133
16.	भरत मन्दिर	166
17.	मणि पर्वत	166
18.	मन्दिर इच्छा भवन	168
19.	रत्न सिंहासन	168
20.	लक्ष्मण किला	169
21.	वाल्मीकि रामायण भवन	165
22.	वेद मन्दिर	169
23.	शेषावतार लक्ष्मण मन्दिर	168
24.	दुग्धेश्वर महादेव	153
25.	दिगम्बर जैन मन्दिर	172

26.	बिड़ला मन्दिर	170
27.	पंचमुखी महादेव	170
28.	श्रीराम जन्मभूमि	160
29.	श्री सिद्ध हनुमान बाग	169
30.	श्रीमहेश्वर महादेव	
31.	श्रीराम गुरुपीठ विद्या स्थली	
32.	श्रीराम हर्षण मन्दिर	163
33.	श्री नारायण आश्रम दुर्गा मन्दिर	164
34.	श्री आनन्द भवन	164
35.	श्रावण कुञ्ज	164
36.	सूर्य कुण्ड	169
37.	सुमित्रा भवन	164
38.	सीता कूप	138
39.	सीता रसोई	165
40.	स्वर्ग द्वार	134
41.	त्रेतानाथ जी	
42.	वासुदेव घाट	163
43.	धर्म हरि	136
44.	बिल्व हरि	
45.	बौद्ध तप स्थल	171
46.	दशरथ महल	164
47.	मन्दिर श्री विजय राघव जी	163

परिशिष्ट–2

अयोध्या–देव प्रासाद–चित्रवीथिका



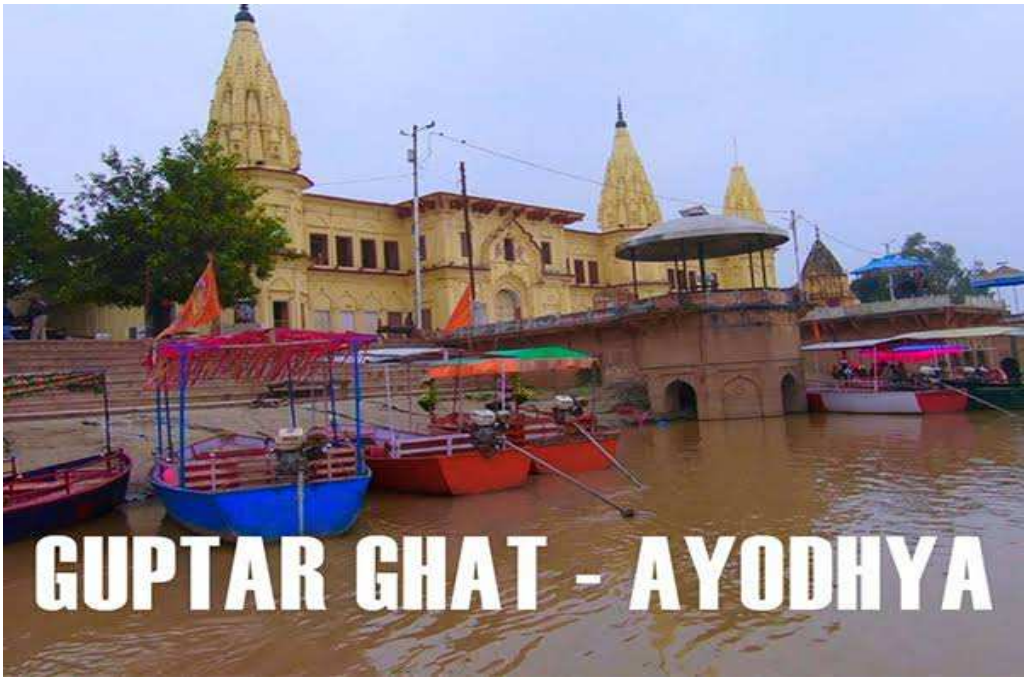
मुख्य प्रवेश द्वार



कनक भवन



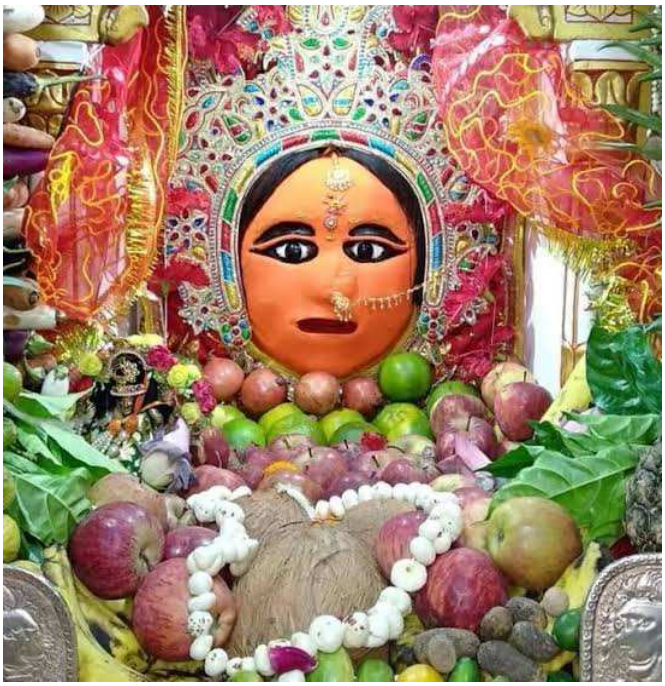
कालेराम



गुप्तार घाट



गुरूद्वारा ब्रह्मकुण्ड



छोटी काली



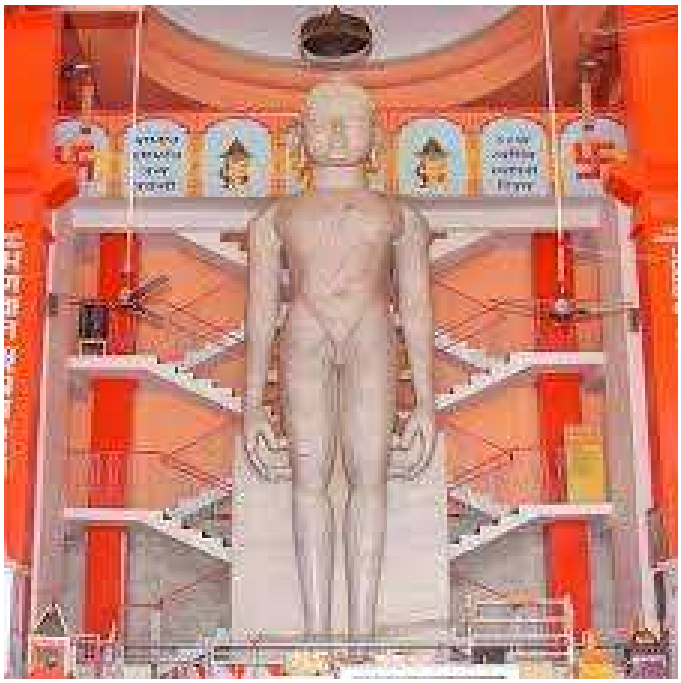
जानकी महल ट्रस्ट



तुलसी चौरा



दशरथ महल



दिगम्बर जैन



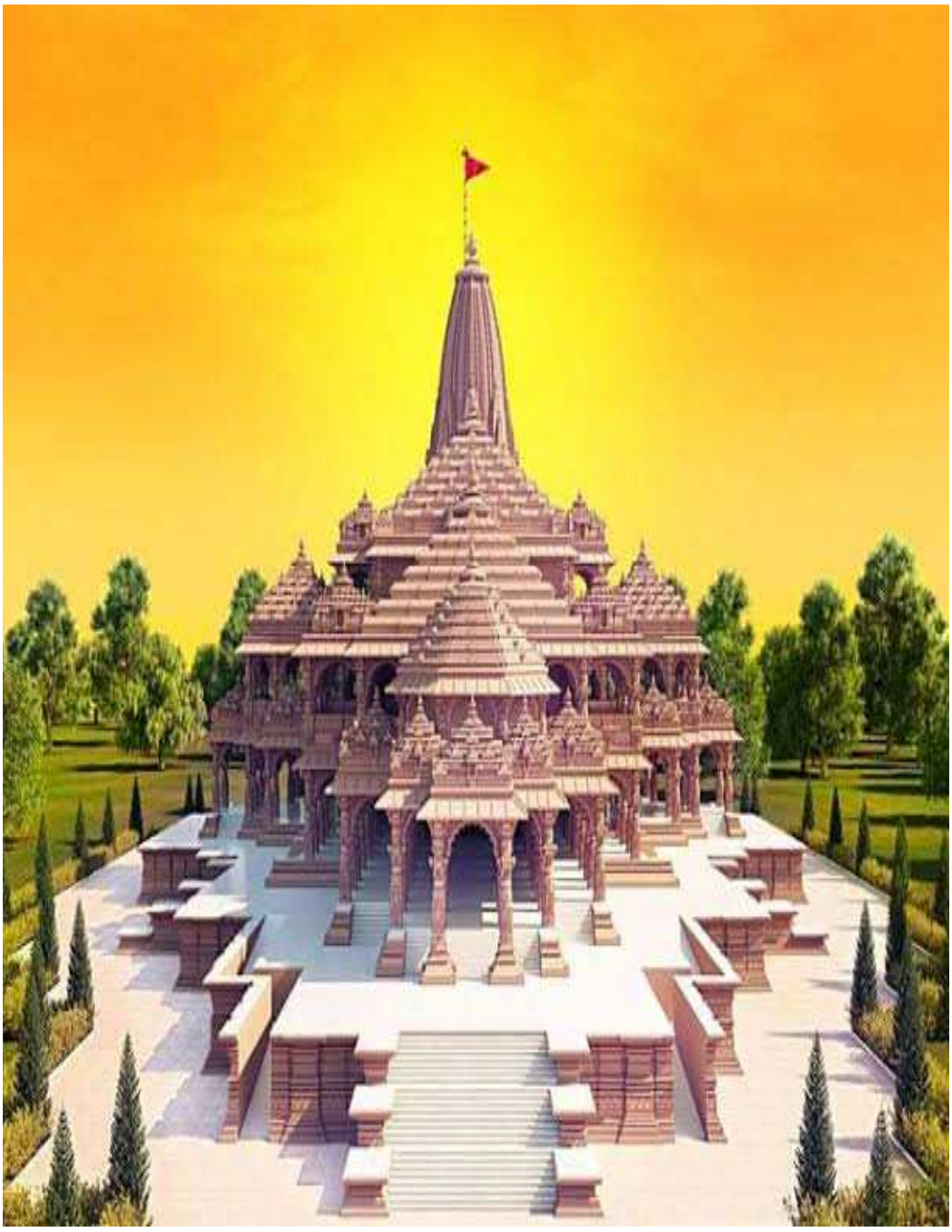
नंदीग्राम भरत कुण्ड



नागेश्वर नाथ



पञ्चमुखी महादेव



प्रस्तावित निर्माणाधीन नूतन भव्य राम मन्दिर



बड़ी देवकाली



बिरला मन्दिर



मणि पर्वत



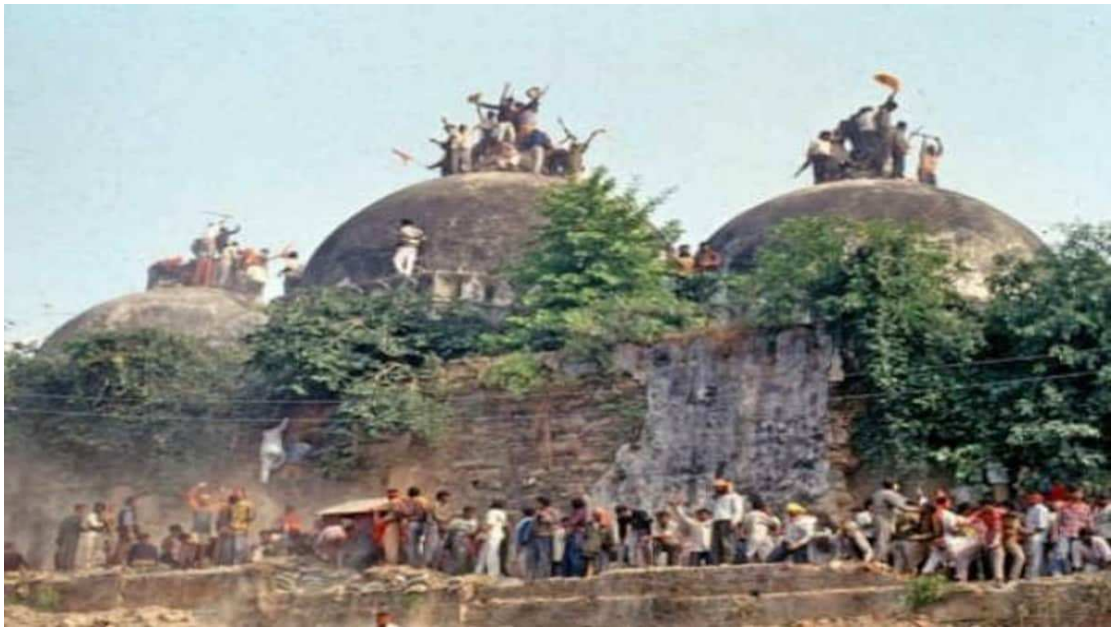
रत्न सिंहासन



लक्ष्मण किला



वेद मन्दिर



श्रीराम जन्मभूमि



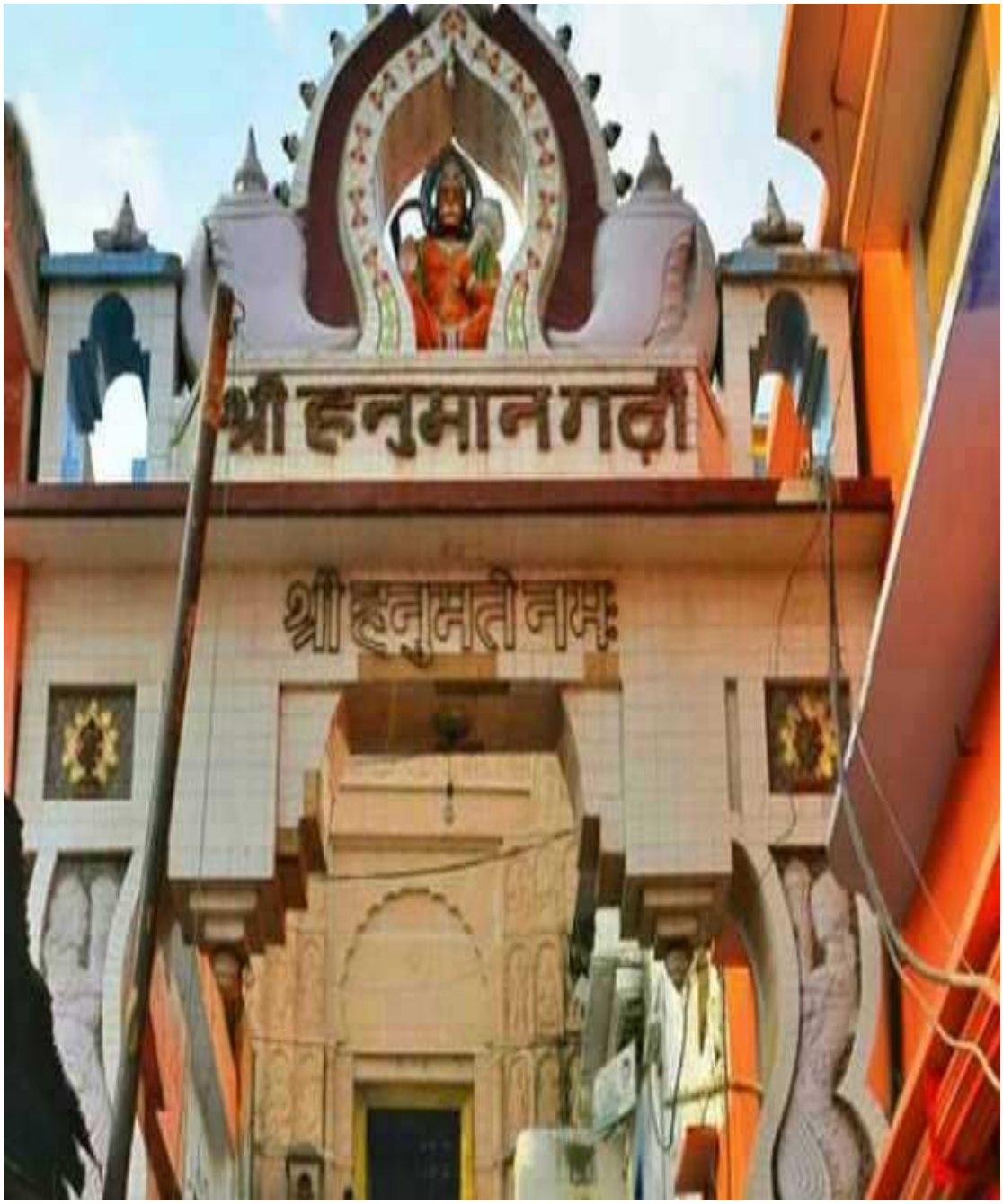
श्री सिद्ध हनुमान बाग



सीता रसोई



सूर्य कुण्ड



हनुमान गढ़ी

परिशिष्ट–3

अयोध्या की राजवंशावली

अयोध्या की राजवंशावली कालक्रमानुसार

1. अज
2. अग्निवर्ण
3. अनरण्य
4. अमर्ष
5. अतिथि
6. अम्बरीश
7. अयुतायु (श्रुतायु)
8. अहिनगु
9. अंशुमान
10. अश्मक
11. असमंजस
12. आर्द्र
13. इक्ष्वाकु
14. इलविल
15. उस्थ
16. ऋतुपर्ण
17. कुवलयाश्व (धुन्धुमार)
18. काकुत्स्थ (पुरञ्जय)
19. कुश
20. कृशाश्व
21. चंचु
22. दशरथ प्रथम (शतरथ)
23. दशरथ द्वितीय
24. दिलीप प्रथम
25. देवानीक
26. द्रढ़ाश्व

27. दिलीप द्वितीय
28. दीर्घबाहु
29. ध्रुव सन्धि
30. नल
31. नाभा
32. नाभाग
33. निकुम्भ
34. निघ्न
35. निषण
36. पुरुकुत्सं
37. पुण्डरीक
38. पुष्य
39. परियात्र
40. प्रथुश्रत
41. पृथु
42. पृशदश्व
43. ब्रहठल
44. बाहु
45. बृद्ध शर्मा
46. भगीरथ
47. मनु
48. मरु
49. महाश्वत
50. मान्धाता
51. मित्रसह कल्माष पाद
52. मूलक
53. युवनाश्व प्रथम

54. युवनाश्व द्वितीय
55. रघु
56. राम
57. रूरुक (रूचक)
58. रोहित
59. वसुमनस (सुमनः)
60. विजय
61. विजिताश्व
62. विश्वसह प्रथम
63. विश्वसह द्वितीय
64. विकुक्षि (शशाद)
65. विमुतवत्
66. वृक (छवक)
67. वृहदश्व
68. व्रमसेउ
69. वज्रनाभ
70. व्युषिताश्व
71. शल
72. शीघ्र
73. शंखण (शंख)
74. सगर
75. सत्यवृत (त्रिशंकु)
76. सम्भूत
77. सुदास
78. सयोधन (अनेनस)
79. सर्वकाम
80. सिन्धु द्वीप

81. संहताश्व
82. सुदर्शन
83. सुसन्धि
84. श्रावस्त
85. श्रुत
86. हर्यश्व प्रथम
87. हर्यश्व द्वितीय
88. हिरण्यनाभ
89. हरित
90. हरिश्चन्द्र
91. क्षेमधन्वा
92. त्रयारूणि
93. त्रिधन्वा
94. त्रसदस्यु

परिशिष्ट–4

अयोध्या की प्रमुख संस्थाएँ तथा आचार्य परम्परा

अयोध्या के प्रमुख संस्थाएँ तथा आचार्य परम्परा

(अयोध्या के सात प्रमुख अखाड़े)

	नाम अखाड़ा	संस्थापक	स्थापना काल
1.	श्री निर्वाण अखाड़ा	श्री अभयराम दास जी	सन् 1754 ई0
2.	श्री निर्वाणी अखाड़ा	श्री दयाराम जी	सन् 1754 ई0
3.	श्री खाकी अखाड़ा	श्री बलराम दास जी	सन् 1800 ई0
4.	श्री दिगम्बर अखाड़ा	श्री गोविन्द राम जी	सन् 1800 ई0
5.	श्री सन्तोषी अखाड़ा	श्री रतिराम दास जी	नवाब सफरदरजंग का शासन काल
6.	श्री निरालम्बी अखाड़ा	श्री वीरमल दास जी	नवाब शुजाउद्दौला का शासन काल
7.	श्री महानिर्वाण अखाड़ा	श्री पुरुषोत्तम दास जी	नवाब शुजाउद्दौला का शासन काल

अयोध्या की प्रमुख छावनियाँ

	नाम	संस्थापक
1.	श्री मणिरामदास जी छावनी	श्री बाबा मणिराम दास जी
2.	श्री तपस्वी जी की छावनी	श्री रामदास जी तपस्वी
3.	रघुनाथ दास जी छावनी	श्री बाबा रघुनाथ दास जी
4.	बाबा राम प्रसाद जी की गद्दी	श्री बाबा रामप्रसाद जी

अयोध्या के कुछ अन्य विशिष्ट स्थान

1. श्री बाबा राउरदास जी की कुटी
2. श्री प्रमोद वन
3. श्री विवहुती भवन
4. श्री खाक चौक
5. श्री ग्वालियर पाठशाला
6. श्री जानकी वल्लभ कुञ्ज
7. श्री हनुमत निवास
8. श्री सतगुरु सदन गोलाघाट
9. श्री गोकुल भवन (वशिष्ठ कुण्ड)
10. श्री उत्तरतोताद्रि मठ
11. श्री विजय राघव मन्दिर
12. श्री पलटूदास जी का अखाड़ा
13. श्री बावन जी का स्थान
14. श्री रानू पाली स्थान
15. श्री रूपकला कुञ्ज
16. श्री दिव्यकला कुञ्ज
17. श्री पोहार जी का स्थान
18. हनुमान कुण्ड वटला
19. श्री बाबारामदास प्रसाद घाट
20. श्री राघव जी का मन्दिर राजघाट
21. श्री जानकी महल ट्रस्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रमांक	पुस्तक	लेखक / सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण तथा वर्ष
1.	**अग्नि पुराण**	व्यास	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	प्रथम संस्करण, 1986
2.	**अग्नि पुराण**	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस, गोरखपुर	15वां पुनर्मुद्रण, सम्वत् 2075
3.	**अथर्ववेद संहिता**	श्रीराम शर्मा आचार्य	ब्रह्मवर्चस्	शान्ति कुंज, हरिद्वार, 5वां पुनर्मुद्रण, सम्वत् 2059
4.	**अयोध्या का इतिहास**	रायबहादुर लाला सीताराम	सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली	संस्करण 2021
5.	**अयोध्या का प्राचीन इतिहास एवं अयोध्या गाइड**	आचार्य गुदुन जी शर्मा	पं0 द्वारिका प्रसाद शिव गोविन्द पुस्तकालय	सम्वत् 2075
6.	**अष्टादश पुराण दर्पण**	पं0 ज्वाला प्रसाद मिश्र	नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली	प्रथम संस्करण 1905, तृतीय संस्करण, 2006
7.	**अष्टाध्यायी**	पाणिनि	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी	1984
8.	**आदि पुराण**	डॉ0 हीरालाल जैन	सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी	द्वितीय संस्करण, 1963
9.	**उत्तररामचरितम्**	पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी आचार्य	रामनरायन लाल, इलाहाबाद	संस्करण, 2021
10.	**ऋग्वेद संहिता**	डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार	दिल्ली संस्कृत अकादमी	प्रथम संस्करण, 2013

11.	**कल्याण कूर्म पुराणाङ्क**	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस, गोरखपुर	संस्करण, 1997
12.	**कल्याण जीवनचर्या अङ्क (जनवरी, 2010)**	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस, गोरखपुर	कल्याण, 84वां वर्ष
13.	**कादम्बरी पूर्व भाग**	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत संस्थान	वि0सं0, 2026
14.	**कूर्म पुराण**	व्यास/नाग शरण सिंह	नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली	संस्करण, 1983
15.	**कौटिलीय अर्थशास्त्रम्**	वाचस्पति गैरोला	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	तृतीय संस्करण, 1984
16.	**गरुड़ महापुराण**	व्यास/क्षेमराज श्रीकृष्ण दास	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	वि0सं0 1963
17.	**गोपथ ब्राह्मण**	राजेन्द्र लाल मिश्र	बिब्लियो थेका इण्डिका, ऐशियाटिक सोसायटी, कोलकाता	संस्करण, 1872
18.	**गौतम धर्मसूत्र**	हरदत्त, हरिनारायण आप्टे	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना	संस्करण 1910
19.	**छान्दोग्योपनिषद**	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस, गोरखपुर	वि0सं0 2019
20.	**जानकीहरणम्**	श्रीकृष्ण दास	मित्र प्रकाशन प्रा0लि0, इलाहाबाद	संस्करण, 1966
21.	**तैत्तिरीय आरण्यक**	राजेन्द्र लाल मिश्र	बिब्लियो थेका इण्डिका, ऐशियाटिक सोसायटी, कोलकाता	संस्करण, 1872
22.	**दशरूपक (सावलोकम्)**	डॉ0 भोलाशंकर व्यास	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	संस्करण, 2007

23.	**दुर्गा सप्तशती**		गीता प्रेस, गोरखपुर	वि0सं0 2021
24.	**धर्मशास्त्र का इतिहास (तृतीय भाग)**	भारत रत्न डॉ0 पी0वी0 काणे	शिशिर निदेशक, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ	पंचम संस्करण, 2018
25.	**नारदीय पुराण**	व्यास/क्षेमराज श्रीकृष्ण दास	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	वि0सं0 1845
26.	**निरुक्तम्**	यास्क/गोविन्द शास्त्री,	वेंकटेश्वर प्रेस, क्षेमराज श्रीकृष्ण दास वेङ्कटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई	संस्करण 1969
27.	**पद्म पुराण**	व्यास	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुण्याख्य पत्तनम	संस्करण, 1894
28.	**पापुलर मास्टर गाइड**	डॉ0 प्रीति सिंह	रमेश पब्लिशिंग हाउस	संस्करण, 2019
29.	**प्राचीन अयोध्या का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन**	राम बिहारी उपाध्याय	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	द्वितीय संस्करण 2017
30.	**पुराण विमर्श**	आचार्य बलदेव उपाध्याय	चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी	पुनर्मुद्रित संस्करण, 2018
31.	**पुराण साहित्यादर्शः**	प्रो0 बृजेश कुमार शुक्ला	न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2019
32.	**बुद्धचरितम्**	अश्वघोष	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी	संस्करण 1971
33.	**ब्रह्मवैवर्त महापुराण**	व्यास	जीवानन्द विद्यासागर, कालिका तातः	संस्करण, 1988

34.	**बृहदारण्यकोपनिषद**		गीता प्रेस, गोरखपुर	वि0सं0 2012
35.	**भविष्य महापुराणम्**	व्यास / क्षेमराज	श्रीकृष्ण दास वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	संस्करण 1897
36.	**महाभारत**	व्यास / पंचानन्द तर्करत्नः	बङ्गवासी प्रेस, कलकत्ता	सम्वत् 1826–30
37.	**महाभारत**	डॉ0 पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसार	संस्करण, 1969
38.	**महाभारत**	व्यास / मोतीलाल जालान	गीता प्रेस, गोरखपुर	सम्वत् 2026
39.	**मनुस्मृति**	महामहोपाध्याय गङ्गानाथ झा	ऐशियाटिक सोसायटी, कोलकाता	संस्करण, 1932, 1939
40.	**मत्स्य महापुराण**	व्यास	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुण्याख्य पत्तनम	संस्करण, 1981
41.	**मार्कण्डेय महापुराण**	व्यास / डॉ0 धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री	साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सुभाष नगर	
42.	**याज्ञवल्क्य स्मृति**	याज्ञवल्क्य / हरिनारायण आप्टे	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, संख्या 46, पूना	संस्करण, 1903–04
43.	**रघुवंशम्**	डॉ0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी	चौखम्भा सुरभारती, वाराणसी	संस्करण, 2014
44.	**रामायण मञ्जरी**	क्षेमेन्द्र / पं0 भवदत्त शास्त्री	कृष्णदास अकादमी, चौखम्भा प्रेस, वाराणसी	सम्वत् 2042
45.	**वराह पुराणम्**	श्री हृषिकेष शास्त्री	चौखम्भा अमर भारती	प्रथम संस्करण,

			प्रकाश, वाराणसी	1893, द्वितीय, 1982
46.	**वायु पुराण (प्रथम खण्ड)**	पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य	संस्कृत संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली	द्वितीय संस्करण, 1969
47.	**वराह महापुराणम्**	व्यास / हृषिकेष शास्त्री	ऐशियाटिक सोसायटी, कोलकाता	संस्करण, 1893
48.	**वेदान्तसार (सदानन्द योगेन्द्र विरचित)**	डॉ0 सन्त नारायण श्रीवास्तव्य	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	संस्करण, 2019
49.	**वैदिक वाङ्मय परीक्षा दृष्टि**	सर्वज्ञ भूषण	संस्कृत गङ्गा, दारागंज, प्रयाग	संस्करण, 2019
50.	**शतपथ ब्राह्मण**	पं0 गङ्गा प्रसाद उपाध्याय	प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसन्धान संस्थानम्, नई दिल्ली	संस्करण, 1970
51.	**श्री पद्म महापुराण**	व्यास / नागरशरण सिंह	नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली	संस्करण, 1984
52.	**श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस, गोरखपुर	54वां संस्करण, 2076
53.	**श्रीमद्भागवत् महापुराण (प्रथम खण्ड)**	हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस, गोरखपुर	सम्वत् 2061, 52वां पुनर्मुद्रण
54.	**श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या**	बनवारी लाला कंछल	मनोज पब्लिकेशन	चतुर्थ संस्करण, 2019
55.	**श्रीस्कन्द महापुराणम् (वैष्णव खण्ड)**	व्यास / क्षेमराज श्रीकृष्ण दास	नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली	संस्करण, 1986

56.	**संक्षिप्त पद्म पुराण**	जयदयाल गोयंदका	गीता प्रेस, गोरखपुर	सम्वत् 2076, 32वां पुनर्मुद्रण
57.	**सांख्यतत्त्व कौमुदी प्रभा**	डॉ0 आद्याप्रसाद मिश्र	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	संस्करण, 2017
58.	**साहित्यदर्पण**	विश्वनाथ कविराज (शालिग्राम शास्त्री)	मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, दिल्ली	अष्टम् पुनर्मुद्रण, वि0सं0 2076
59.	**स्कन्द पुराण**	व्यास/श्रीराम शर्मा आचार्य	संस्कृत संस्थान, बरेली	प्रथम संस्करण, 1970
60.	**स्कन्द पुराण**	व्यास/क्षेमराज	श्रीकृष्ण दास वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	संस्करण, 1910
61.	**हर्षचरित**	बाणभट्ट/श्री जगन्नाथ पाठक	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी	संस्करण 1958

पौराणिक वाङ्मय में निरूपित अयोध्या : एक समीक्षात्मक अनुशीलन

लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ की पी-एच्०डी० (संस्कृत)
उपाधि-हेतु प्रस्तुत

शोध-सङ्क्षिप्तिका

शोध-निर्देशक

डॉ० प्रयाग नारायण मिश्र
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधच्छात्र

विनय कुमार पाण्डेय
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
वर्ष-२०२२

शोध-सङ्क्षप्तिका

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का शीर्षक **"पौराणिक वाङ्मय में निरूपित अयोध्या : एक समीक्षात्मक अनुशीलन"** है। भूमिका भाग में पैराणिक वाङ्मय की उपादेयता, तीर्थों का महत्त्व तथा भगवान् श्रीराम की पावन जन्मभूमि, प्राचीनकाल से ही नगरीय सभ्यता की जननी, सप्तपुरियों में प्रथम परिगणित आद्या नगरी अयोध्या के महत्त्व पर प्रकाश डालने के अनन्तर सम्पूर्ण शोध–प्रबन्ध को 4 परिशिष्ट तथा उपसंहार सहित नौ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक अध्याय का सङिक्षप्त विवेचन इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय
(संस्कृत वाङ्मय में पुराण तथा पौराणिक वाङ्मय)

प्रथम अध्याय का नाम **"संस्कृत वाङ्मय में पुराण तथा पौराणिक वाङ्मय"** है। सर्वप्रथम इस अध्याय में पुराणों का की उपादेयता पर विचार किया गया है। भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही जगत् गुरु की उपाधि से विभूषित रहा है क्योंकि भारतीय संस्कृति ने प्राचीनकाल से ही समस्त विश्व को मानवता की अमूल्य शिक्षा प्रदान की है।

भारतीय जीवन संस्कृति के मूलाधार वेद हैं, वे भगवान् के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं–

यस्य निश्श्वसितं वेदः।[1]

अतः वे भगवत्स्वरूप ही है। श्रुत ब्रह्म वाणी का संरक्षण परम्परा से ऋषियों द्वारा होता रहा, इसीलिए इसे श्रुति कहते हैं। भगवदीय वाणी वेदों के सत्य को समझने के लिए षड्ङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द,

---

1. ऋग्वेद, भाष्य भूमिका, सायण भाष्य, श्लोक 2

ज्योतिष का अध्ययन आवश्यक था। परन्तु जन सामान्य के लिए यह सहज सम्भव नहीं था। वेदों के दुर्बोध अर्थ को जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए उनको बोध गम्य बनाने हेतु पुराणों का उदय हुआ इसीलिए महाभारत में प्रोक्त है–

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंह्येत्।

विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयंप्रहरिष्यति।।[1]

वेदों के सन्दर्भ पर पूर्ण प्रकाश डालने में पुराणों का अत्यधिक महत्त्व है। अतः महाभारतकार के मत में पुराण रूपी पूर्ण चन्द्रमा के द्वारा श्रुति रूपी चन्द्रिका प्रस्तारित है–

पुराण पूर्ण चन्द्रेण श्रुति ज्योत्सना प्रकाशिता।[2]

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत ग्रन्थों में यत्र–तत्र–सर्वत्र प्राप्त है। पुराणों की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में स्वयं पुराणों में वर्णन किया गया है तथा यास्क आदि ने भी इस पर प्रकाश डाला है–

पुरा नवं भवति।[3]

अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया है। वायुपुराण के अनुसार पुरा अनति अर्थात् प्राचीनकाल में भी जो जीवित था।

यस्मात् पुराह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।[4]

इसी प्रकार पुराणों की प्राचीनता तथा इसकी महत्ता का वर्णन अथर्ववेद से लेकर इतिहास ग्रन्थ, ब्राह्मण साहित्य, आरण्यक, उपनिषद, सूत्र ग्रन्थ तथा वर्तमान संस्कृत साहित्य तक सर्वत्र विद्यमान है।

---

1. महाभारत, आदिपर्व, 2/267; वायुपुराण, 1/20
2. महाभारत, आदिपर्व, 1/86
3. यास्क कृत निरुक्त, 1/19
4. वायुपुराण, 1/203

भारतीय प्राचीन परम्परा के जीवंत उदाहरण जो कि जनसामान्य के लिए भी सुगम बोधगम्य हैं इनका ज्ञान पुराणों के माध्यम से प्राप्त होता है। वैदिक संस्कृत के धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों का समग्र ज्ञान पुराणों में निहित है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में पुराण चौदह विद्याओं में परिगणित है। महापुराणों की संख्या अष्टादश मानी गयी है। इसके अतिरिक्त तीस उपपुराणों का परिचय मिलता है। गरुड़ पुराण में उपपुराणों की संख्या अष्टादश ही बतायी गयी है। पुराणों के पाँच लक्षण, सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर तथा वंशानुचरित विष्णु पुराण में प्रतिपादित हैं। पुराणों में ऐसा कोई तथ्य नहीं छूटा है जो प्राचीन से लेकर अद्यतन मानव जीवनोपयोगी है।

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य पद्मश्री प्रो0 बृजेश कुमार शुक्ल जी ने अपने ग्रन्थ पुराण साहित्यादर्शः, पृष्ठ तीन पर वर्णन किया है–

भारतीय समाजस्य भारतीय संस्कृतेश्च प्राचीनं रूपं पुराणेषु दरीदृश्यते। यदि कोऽपि पुरुषः पुरा भारतीय समाजः कीदृश आसीत् कीद्रशी वा भारतीय संस्कृतिरिति ज्ञातुमिच्छति तर्हि तेनावश्यमेव पुराणानामध्ययनं कर्तव्यम्।

इस प्रकार पुराण मनुष्य के भूत, भविष्य तथा वर्तमान का वह दर्पण है जिसमें अपने अतीत को देखकर वह अपना वर्तमान संवार सकता है तथा भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है।

द्वितीय अध्याय

(पुराणों में तीर्थ प्रशस्ति तथा श्रीराम सङ्कीर्तन)

पौराणिक वाङ्मय में मानव जीवन के सर्वविधि उत्थान की चेतना प्राप्त होती है। प्राचीनकाल में उस विशुद्ध चेतना की प्राप्ति के स्थान तीर्थ माने जाते थे आज भी वे तीर्थ अपनी पावनता का परिचय दे रहे हैं। तीर्थ यात्रा से मानव को महान् पुण्य की प्राप्ति बतायी है वहाँ जाने पर प्राणी देवाधिदेव हो

जाता है। क्योंकि प्राणी तीर्थ जाने से पूर्व अपने शरीर को सदाचार, सद्विचार और सदुपासना द्वारा विशुद्ध बना लेता है जिससे तीर्थयात्रा का महान् पुण्य उसे सहज ही प्राप्त हो जाता है और फिर तीर्थों की पावन भूमि तथा वहाँ निवास करने वाले पुण्यात्माओं के सङ्ग से मनुष्यों के समस्त पाप दूर हो जाते हैं–

तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्र परायणः।

यद्दर्शनं नृणां पाप राशि दाहाशुशुक्षणिः।।[1]

पुराणों में तीर्थ की महिमा का अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन किया गया है। तीर्थ शब्द से सामान्तयः उस स्थल विशेष को निर्देशित या इङ्गित किया जाता है जहाँ पर किसी ऋषि मुनि ने अपनी तपस्थली बनायी हो अथवा ईश्वर ने सृष्टि सर्जनार्थ या पालनार्थ किसी प्रकार की लीला की हो।

धार्मिक, आध्यात्मिक या दार्शनिक दृष्टिकोण से नदी, तट, पर्वत शृङ्खला अथवा वनाच्छादित पवित्र स्थल जिनका प्राचीन सम्बन्ध पवित्र अथवा दिव्य कर्मों से रहा हो तीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थों की महत्ता के विषय में स्कन्द पुराण में प्रोक्त है–

तीर्थानां दर्शनं श्रेय स्पर्शनं स्नानमेव च।

कीर्तनं स्मरणं चापि नस्यात्पुण्य बिना परम।।[2]

अर्थात् तीर्थों के दर्शन, स्पर्शन, कीर्तन, स्मरण तथा उसमें स्नान करने से श्रेय प्राप्त होता है। इसके समान पुण्यप्रद कुछ भी नहीं है। तीर्थों की अनन्त महिमा है। वे अपनी स्वाभाविक शक्ति से ही सबका पाप नाश कर उन्हें मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। सनातन धर्म के शास्त्रों में तीर्थों के नाम, रूप,

---

1. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, 19/16
2. स्कन्द पुराण, माहेश्वर खण्ड, 58/12

लक्षण और महत्त्व का बड़ा विशद वर्णन किया गया है। महाभारत, रामायण आदि के साथ ही प्रायः सभी पुराणों में तीर्थ की महिमा गायी गयी है। पद्म पुराण और स्कन्द पुराण तो तीर्थ महिमा से परिपूर्ण है। महाभारत में प्रोक्त है–

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरत सत्तम्।

तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।।[1]

इस प्रकार महाभारत में तीर्थ यात्रा से प्राप्त पुण्य फल को यज्ञ द्वारा प्राप्त पुण्य फल से भी महान् बताया गया है।

(श्रीराम सङ्कीर्तन)

भगवान् श्रीराम अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परमपिता परमेश्वर के अवतार थे और धर्म, मर्यादा रखने के लिए भारत भूमि अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी राजा दशरथ के यहाँ पुत्र रूप में अवतरित हुए। वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।

नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमान्वशी।।[2]

महाभारत के आरण्यक पर्व में प्रोक्त है कि इक्ष्वाकुवंश में अज नाम के महान् राजा थे उनके पुत्र का नाम दशरथ था उन्हीं परम पुण्यवान् महाराजा दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नाम से चार महान् पुत्र हुए–

अजो नामाभवद्राजा महानिक्ष्वाकुवंशजः।

तस्य पुत्रो दशरथः शश्वत्स्वाध्यायवाञ्शुचिः।।

अभवंस्तस्य चत्वारः पुत्रा धर्मार्थकोविदाः।

---

1. महाभारत, आरण्यक पर्व, 80/38
2. रामायण, बालकाण्ड, 1/8

रामलक्ष्मणशत्रुघ्नाभरतश्च महाबलः।।[1]

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत् महापुराण में प्रोक्त है–

तस्यापि भगवानेषु साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।

अंशासेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।

रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया।।[2]

अर्थात् देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परम ब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ने ही अपने अंशासेन चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न थे।

कूर्म पुराण में श्रीराम सङ्कीर्तन करते हुए बताया गया है कि राजा रघु के अज उत्पन्न हुए उनसे राजा दशरथ हुए। दशरथ के पुत्र राम वीर, धर्मज्ञ और लोक प्रसिद्ध हुए। यहाँ पर श्री भगवान् राम को विष्णु का अवतार बताया गया है–

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथ स्ततः।

रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोक विश्रुतः।।

जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वकृत।।[3]

पुराणों में सर्वत्र यह वर्णन प्राप्त होता है कि चारों भाइयों में श्रीराम अत्यन्त गुणवान् थे तथा राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों में राम को सर्वाधिक स्नेह करते थे, क्योंकि वे अपने गुणों से तथा कार्यों से पिता को सर्वाधिक आनन्द प्रदान करते थे।

---

1. महाभारत, आरण्यक पर्व, 258/6–7
2. श्रीमद्भागवत पुराण, 9/10/2
3. कूमपुराण, पूर्व विभाग, 20/17–18

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

सर्वेज्ञानोपसम्पन्ना सर्वे समुदिता गुणैः।

तेषा मपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।।

इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः।

गण स्कन्धेऽश्व पृष्ठे च रथ चर्यासु सम्मतः।।[1]

अर्थात् सभी ज्ञानवान् और समस्त सद्गुणों से सम्पन्न थे। उनमें भी सत्य पराक्रमी श्री रामचन्द्र जी सबसे अधिक तेजस्वी और सब लोगों के विशेष प्रिय थे। वे निष्कलङ्क चन्द्रमा के समान शोभा पाते थे। उन्होंने हाथी के कन्धे पर तथा घोड़े की पीठ पर बैठने तथा रथ हाँकने की कला में भी सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त किया था।

श्रीराम सङ्कीर्तन के विषय में इसी प्रकार पद्म पुराण में प्रोक्त है–

रघुनाथ सतीकीर्तिर्मद्बुद्धिर्निर्मलीमसाम्।

करिष्यति स्वसंपर्कात्कनकंत्वनलो यथा।।[2]

अर्थात् जैसे अग्नि के सम्पर्क से सोना शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार रघुनाथ जी की उत्तम कीर्ति मेरी बुद्धि को निर्मल बना देगी।

इसी प्रकार पद्म पुराण में अन्यत्र वर्णित है–

वदन्ति मुनयः सर्वे साधूनां सङ्गमं वरम्।

यस्मात्पापक्षयकरी रघुनाथ कथा भवेत्।।[3]

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/26–27
2. पद्म पुराण, पातालखण्ड, 1/15
3. तदेव, 1/10

इस प्रकार निःसन्देह पौराणिक वाङ्मय यह उद्घोष करता है कि आज तक पृथ्वी पर जन्मे मनुष्यों में श्री रामचन्द्र जी सबसे अधिक सुन्दर, सद्गुणी, पराक्रमी, दयालु और सर्वाधिक प्रतिष्ठित तथा श्रेष्ठतम् थे।

तृतीय अध्याय
(अयोध्या का पौराणिक तथा ऐतिहासिक वैभव)

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जन्मभूमि है परम पवित्र अयोध्या नगरी। भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व की नगरीय सभ्यता की जननी के रूप में भी यदि इसे संज्ञा प्रदान की जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्राचीन वैदिक साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में स्थान–स्थान पर अयोध्या वैभव का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित अयोध्या नगरी कोशल जनपद की वैभवशालिनी राजधानी रही है। जो मानवों में प्रथम स्वयं महाराज मनु द्वारा निर्मित बतायी गयी है–

कोशलो नाम मुदितः स्फीतोजनपदो महान्।

निविष्टः सरयूतीरे प्रभूत धन धान्यवान्।।

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोक विश्रुता।

मनुन मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।।[1]

अर्थात् कोशल नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है जो सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धन–धान्य से सम्पन्न सुखी और समृद्धिशाली है। उसी जनपद में अयोध्या नाम की नगरी है जो समस्त लोकों में विख्यात् है। उस पुरी को स्वयं महाराज मनु ने बनवाया और बसाया था।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/5–6

अयोध्या नगरी की पवित्रता तथा महत्त्व का पता इस बात से भी चलता है कि हमारे भारतवर्ष की मोक्षदायिनी सप्त पुरियों का वर्णन जो कि पुराणों में किया गया है उसमें अयोध्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है–

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।

पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।[1]

स्कन्द पुराण में अयोध्या को भगवान् विष्णु के चक्र पर स्थित बताया गया है–

अयोध्या परमं स्थानं अयोध्या परमं महत्।

अयोध्यायाः समा काञ्चित पुरी नैव दृश्यते।

अयोध्या परमं स्थानं विष्णु चक्रे प्रतिष्ठितम्।।[2]

अर्थात् अयोध्या सर्वोत्तम स्थान है। अयोध्या के समान कहीं कोई पुरी नहीं है। परम स्थान अयोध्या विष्णु चक्र पर स्थित है।

स्कन्द पुराण के वैभवखण्ड में अयोध्या नगरी की भव्यता का अतीव सुन्दर वर्णन किया गया है तथा बताया गया है कि यह नगरी अतीव पावन है तथा सत्कर्मी लोगों को ही प्राप्त होती है। क्योंकि स्वयं हरि यहाँ मूर्त होकर विराजमान् हैं तथा देवपुरी इन्द्र की अमरावती की भाँति इसकी शोभा है–

सरयूतीरमासाद्य दिव्या परम शोभना।

अमरावती निभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः।।[3]

---

1. ब्रह्मपुराण, 4/40/91; अग्निपुराण, 109/24
2. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/71–22
3. तदेव, 1/31

अर्थात् अमरावती पुरी जैसे परम शोभाशालिनी दिव्यपुरी अयोध्या सरयू तट पर विराजित है। इस पुरी में सर्वत्र तपोधन गण विराजित रहते हैं।

इसी तथ्य का समर्थन श्री नरसिंह पुराण में वर्णित है–

आसीद् भूमौ महाभाग पुरी दिव्या सुशोभना।
सरयूतीर मासाद्य अयोध्या नाम नामतः।।
अमरावत्यतिशया त्रिंशद्यो जन जालिनी।
हस्त्यश्वरथपत्त्योधैर्द्रुमैः कल्प द्रुम प्रभैः।।[1]

अर्थात् सरयू नदी के किनारे अयोध्या नाम से प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्य पुरी है। वह अमरावती से भी बढ़कर सुन्दर और तीस योजन लम्बी–चौड़ी थी। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों के समूह तथा कल्पवृक्ष के समान कान्तिमान् वृक्ष उस पुरी की शोभा बढ़ाते थे।

आदिपुराण में वर्णन आता है कि देवताओं ने अयोध्या नगरी को विशेष सुन्दर बनाया था जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानों इस मध्यम लोक में स्वर्गलोक का प्रतिबिम्ब रखने की इच्छा से उन्होंने उसे अत्यन्त सुन्दर बनाया हो–

स्वर्गस्यैव प्रतिच्छन्दं भूलोकेऽस्मिन्निधित्सुभिः।
विशेष रमणीयैव निर्ममे सामरैः पुरी।।[2]

इसी प्रकार पुराणों तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों के अनुशीलन द्वारा निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अयोध्या नगरी प्राचीनकाल से ही प्रत्येक युग में वैभवशाली रही है।

---

1. नरसिंह पुराण, 24/3–4
2. आदिपुराण, 12/71

चतुर्थ अध्याय

(पुराणोल्लिखित श्रीराम मन्दिर तथा अयोध्या का देव–प्रासाद वैभव)

त्रेतायुग में मार्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी अयोध्या की इस पावन भूमि पर अवतरित हुए थे। श्री रामचन्द्र जी के जन्म के समय यह स्थान बहुत ही विराट, सुवर्ण एवं सभी प्रकार की सुख–सुविधाओं से सम्पन्न एक राजमहल के रूप में था। महर्षि वाल्मीकि जी ने रामायण में जन्मभूमि की शोभा तथा महत्ता की तुलना दूसरे इन्द्रलोक से की है। धन–धान्य रत्नों से भरी अयोध्या नगरी की अतुलनीय छटा तथा गगनचुम्बी इमारतों के अयोध्या नगरी में होने का वर्णन भी वाल्मीकि रामायण में मिलता है–

प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम्।

कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम्।।[1]

अर्थात् वहाँ के महलों का निर्माण नाना प्रकार के रत्नों से हुआ था। वे गगनचुम्बी प्रासाद पर्वतों के समान जान पड़ते थे। उनसे उस अयोध्यापुरी की बड़ी शोभा हो रही थी। बहुसंख्यक कूटागारों (गुप्त गृहों अथवा स्त्रियों के क्रीड़ा भवन) से परिपूर्ण वह नगरी इन्द्र की अमरावती के समान जान पड़ती थी।

नरसिंह पुराणकार ने अयोध्या को समस्त वसुधा की सारभूता के रूप में उल्लिखित किया है–

सर्वतः सारभूता च पुरी चेयं समन्ततः।

अद्य शोभान्विता कार्या कर्तव्यं याग मण्डलम्।।[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/15
2. तदेव, 48/13

वाल्मीकि रामायण में श्री रामचन्द्र जी के भवन का सुन्दर वैभव प्राप्त होता है–

रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्रवेश्मसम प्रभम

महाकपाटपिहितं वितर्दिशत शोभितम्।।

काञ्चन प्रतिमैकाग्रं मणिविद्रुमतोरणम्।

शारदाभ्रघनप्रख्यं दीप्तं मेरुगुहा समम्।।[1]

अर्थात् सुमन्त्र को भगवान् श्रीराम का सुन्दर भवन दिखायी दिया, जो इन्द्र भवन के समान दीप्तिमान था। उसका फाटक विशाल किवाड़ों से बन्द था। सैकड़ों वेदिकाएँ उस भवन की शोभा बढ़ा रही थीं। उसका मुख्य अग्र भाग सोने की देव प्रतिमाओं से अलंकृत था। उसके बाहर फाटक में मणि और मूँगे जड़े हुए थे।

महकवि कालिदास ने रघुवंशम् में वर्णन किया है–

तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितम् पार्श्व चरानुयातः।

आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रिंलिहमारुरोहः।।[2]

अर्थात् राम ने सीता से कहा कि तुम्हारी यह इच्छा मैं अवश्य पूरी करूँगा। इतना कहकर वे सेवक के साथ अति मनोहर अयोध्या की सुन्दरता को देखने के लिए अपने गगनचुम्बी राजभवन की छत पर जा चढ़े।

इस प्रकार सप्तपुरियों में श्रेष्ठ अयोध्या मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओं की यह राजधानी रही है। इक्ष्वाकु से श्रीराम जी तक उनके परवर्ती वंशजों के सभी चक्रवर्ती नरेशों ने अयोध्या के सिंहासन

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 15/31–32
2. रघुवंशम्, 14/29

को भूषित किया। भगवान् श्रीराम की जन्म भूमि होने के कारण अयोध्या का अपना सर्वश्रेष्ठ वैभव है।

पञ्चम् अध्याय

अयोध्या के प्रसिद्ध तीर्थ, दर्शनीय स्थल तथा परिक्रमा प्रशस्ति

अयोध्या भारत की सप्त पुरियों में से एक महत्त्वपूर्ण पुरी है। पुराण आदि ग्रन्थों के साथ–साथ इतिहास की पुस्तकें भी इस नगरी की कहानियाँ सुनाती हैं। अयोध्या एक ऐसा धार्मिक नगर है जहाँ के प्रत्येक रजकण में एक–एक तीर्थ विद्यमान है। महर्षि वाल्मीकि ने अयोध्या का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है, जिसे पढ़ने से प्रतीत होता है कि अयोध्या किसी आधुनिक राजधानी से किसी प्रकार कम न थी। इससे यह भी पता चलता है कि प्राचीनकाल में भारत के नगर कितनी उच्चकोटि के होते थे। स्कन्द पुराण के वैभवखण्ड में अयोध्या माहात्म्य के वर्णन में इसे आद्या नगरी के नाम से अभिहित किया गया है।

अयोध्या के विभिन्न तीर्थ स्थलों का अति गहन ज्ञान स्कन्द पुराण में वर्णित है। स्कन्द पुराण के अयोध्या माहात्म्य में बताया गया है कि एक बार भारद्वाज आदि ऋषियों ने व्यास शिष्य मुनिसत्तम रोम हर्षण सूत से पूछा कि हे महाभाग सूत! हम सब आपसे महापुरी अयोध्या की उत्तम गुणमयी रहस्य युक्त सनातन महिमा सुनना चाहते हैं तब सूत जी ने उत्तम ऋषियों को अयोध्या माहात्म्य सुनाया था–

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामः सरहस्य सनातनम्।

अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणोज्ज्वलम्।।

कीदृशी सा सदा मेध्याऽयोध्या विष्णुप्रियापुरी।

आद्या सा गीयते वेदै पुरीणां मुक्तिदायिका।।

संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः।

कानि तीर्थानि पुण्यानि महात्म्य तेषु कीदृशम्।।[1]

इसके पश्चात् सूत जी ने अयोध्या के विभिन्न तीर्थ स्थलों का वर्णन प्रारम्भ किया कतिपय तीर्थ स्थलों के नाम प्रस्तुत हैं– चक्रतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, स्वर्गद्वार, चन्द्रहरि तीर्थ, धर्महरि तीर्थ, हरिस्मृति तीर्थ, सरयू घाघरा सङ्गम तथा गुप्तहरि तीर्थ, गोप्रातार तीर्थ, क्षीरोदक तीर्थ, बृहस्पति कुण्ड, रुक्मिणी कुण्ड, धनयक्ष तीर्थ, वसिष्ठ कुण्ड, सागर कुण्ड, योगिनी कुण्ड, उर्वशी कुण्ड, घोषार्क कुण्ड, रति कुण्ड तथा कुसुमा युध कुण्ड, महारत्न तीर्थ, दुर्भर तथा सुकृतोदर सरोवर, महाविद्या तीर्थ, दुग्धेश्वर, सुग्रीव चरित तीर्थ, हनुमत् कुण्ड तथा विभीषण कुण्ड, जटा कुण्ड, गया कुण्ड, पिशाच मोचन तीर्थ, मानस तीर्थ, तमसा नदी, माण्डव्य आश्रम, महर्षि गौतम तथा च्यवनमुनि आश्रम, भैरव तीर्थ, भरत कुण्ड, मत्त गजेन्द्र, सुरसा राक्षसी, पिण्डारक, विघ्नेश, रामजन्म भूमि, हनुमानगढ़ी, कनक भवन, नागेश्वर नाथ मन्दिर, कालेराम मन्दिर, गोरेराम मन्दिर, नयाघाट क्षेत्र के मन्दिर, दशरथ महल, कैकेयी भवन, कोप भवन, सुमित्रा भवन, श्री आनन्द भवन, सीता रसोई, वासुदेव घाट, छोटी देवकाली, बड़ी देवकाली, मणि पर्वत, भरत मन्दिर, नन्दिग्राम, तुलसी चौरा, रत्न सिंहासन, मन्दिर इच्छा भवन, सहस्त्र धारा शेषावतार लक्ष्मण मन्दिर, वेद मन्दिर, श्री सिद्धबाग हनुमान मन्दिर, पञ्चमुखी महादेव मन्दिर, दुग्धेश्वर महादेव, क्षीरेश्वर महादेव, मखभूमि, विल्वहरि, सूर्य कुण्ड इसके अतिरिक्त अयोध्या के ऐतिहासिक टीले, पवित्र तीर्थ स्थलों की श्रेणी में आते हैं।

सनातन धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त अयोध्या नगरी अन्य धर्मों के मतावलम्बियों का भी पुण्य तीर्थ क्षेत्र है। इसके अन्तर्गत बौद्ध–तपस्थल, सिख गुरुद्वारा तथा जैन धर्मों के मन्दिर भी अयोध्या के वैभव में श्रीवृद्धि करते हैं।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 1/16–18

परिक्रमा प्रशस्ति

परिक्रमा की प्रथा अत्यन्त प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। सामान्यतः परिक्रमा का उद्देश्य किसी पूज्य स्थान या किसी विशेष देवी–देवता को सम्मान देने का होता है।

परिक्रमा शब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में संस्कृत–हिन्दी शब्दकोष में वर्णन मिलता है–

परि + क्रम + घञ् – इधर–उधर भ्रमण करना, इतस्ततः घूमना, भ्रमण, टहलना, प्रदक्षिणा करना, इच्छानुसार टहलना, सिलसिला, क्रम, यथाक्रम, उत्तरोत्तर, घूमना।[1]

अयोध्या धाम की परिक्रमा में 3 प्रकार की परिक्रमाओं का उल्लेख प्राप्त होता है–

(1) **पञ्चकोसी परिक्रमा–** कार्तिक माह के शुक्लपक्ष की एकादशी को अयोध्या में पञ्चकोसी परिक्रमा की जाती है।

(2) **चौदहकोसी परिक्रमा–** यह परिक्रमा कार्तिक शुक्ल नवमी तिथि को की जाती है।

(3) **चौरासीकोसी परिक्रमा–** यह परिक्रमा ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा से प्रारम्भ की जाती है।

यह समस्त परिक्रमाएँ अयोध्या के भीतर तथा बाह्य क्षेत्र जो किसी न किसी प्रकार भगवान् श्रीराम के जीवन से सम्बन्धित है, पूर्ण की जाती है।

षष्ठ अध्याय

अयोध्या की राजनैतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि

1. संस्कृत हिन्दी शब्द कोष, पृ0 562

महान् भारत भूमि का एक अत्यन्त उत्तम प्रदेश है उत्तर प्रदेश। उत्तर प्रदेश शब्द का वास्तविक अर्थ है उत्तरी प्रान्त और यह भारत के उत्तरी भाग में स्थित है।

उत्तर प्रदेश $23^0$52′ उत्तरी अक्षांश से $31^0$28′ उत्तरी अक्षांश तथा $77^0$51′ पूर्वी देशान्तर से $84^0$38′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। वर्तमान में इस प्रदेश की राजधानी लखनऊ है। लखनऊ से लगभग 130 किमी0 पूर्व दिशा में अयोध्या स्थित है। अयोध्या नगरी का अक्षांश $26^0$27′ उत्तर तथा देशान्तर लन्दन से $82^0$15′ पूर्व और वाराणसी से $7^0$30′ पश्चिम है।[1]

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड (5/5–6) में वर्णन आता है कि कोशल नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है, जो सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धन–धान्य से सम्पन्न, सुखी समृद्धिशाली है। उसी जनपद में अयोध्या नाम की एक नगरी है जो समस्त लोकों में विख्यात् है।

इसी प्रकार श्री नरसिंह पुराण (24/3) में सरयू नदी के किनारे अयोध्या नाम से प्रसिद्ध एक शोभायमान दिव्य पुरी का वर्णन आया है।

आदिपुराण में प्रोक्त है–

सुत्रामा सूत्रधारोऽस्या शिल्पिनः कल्पजा सुराः।

वास्तु जातं मही कृत्स्ना सोद्धानास्तु कथंपुरी।

सञ्चस्कुरुश्च तां वप्रप्राकार परिखादिभिः।

अयोध्या न परं नाम्ना गुणेनात्यरिभिः सुराः।[2]

---

1. http//www/dristiias.com
2. आदिपुराण, 12/75–76

उस नगरी की रचना करने वाले कारीगर स्वर्ग के देव थे उनका अधिकारी सूत्रधार इन्द्र था और मकान वगैरह बनाने के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी पड़ी थी तब यह नगरी प्रशंसनीय क्यों न हो। फिर देवों ने कोट और खाईं से इसे अलंकृत किया और अयोध्या केवल नाम से ही नहीं अयोध्या शत्रुओं के लिए भी अयोध्या थी।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

कपाट तोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।

सर्वयन्त्रा युधवतीं मुषितां सर्वशिल्पिभिः।।

सूतमागधसम्बाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्।

उच्चाटालध्वजवतीं शतघ्नींशत संकुलाम्।।

वधूनाटक संघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्।

उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं साल मेखलाम्।।

दुर्ग गम्भीर परिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।

वाजिवारण सम्पूर्णा गोभिरूष्ट्रैः खरैस्तथा।।[1]

अर्थात् वह पुरी बड़े–बड़े फाटकों और कवाड़ों से सुशोभित थी। उसके भीतर पृथक्–पृथक् बजारें थीं। वहाँ सब प्रकार के यंत्र और अस्त्र–शस्त्र सञ्चित थे। उस पुरी में सभी कलाओं के शिल्पी निवास करते थे। स्तुति पाठ करने वाले सूत और वंशावली का बखान करने वाले मागध वहाँ भरे हुए थे।

वह पुरी सुन्दर शोभा से सम्पन्न थी। उसकी सुषमा की तुलना कहीं नहीं थी। वहाँ ऊँची–ऊँची अट्टालिकाएँ थीं जिनके ऊपर ध्वज फहराते थे।

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 5/10–13

सैकड़ों शतघ्नियों से वह पुरी व्याप्त थी। उस पुरी में ऐसी बहुत सी नाटक मण्डलियाँ थीं जिनमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य एवं अभिनय करती थीं।

वाल्मीकि रामायण में अन्यत्र वर्णन आता है–

आयाता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।

श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्त महापथा।।[1]

अर्थात् वह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी थी। वहाँ बाहर के जनपदों में जाने का जो विशाल राजमार्ग था, वह उभय पार्श्व में विविध वृक्षावलियों से विभूषित होने के कारण सुस्पष्टतया अन्य मार्गों से विभक्त जान पड़ता था।

इसी प्रकार राजनीति व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, युवराज, कारागाराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सचिव, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष, कार्य–निर्माण कर्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रपाल तथा वन रक्षक इत्यादि अनेक पदाधिकारियों का वर्णन पुराण तथा इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

इस प्रकार पौराणिक वाङ्मय से लेकर आद्यतन संस्कृत साहित्य में अयोध्या की राजनैतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि का स्थाने–स्थाने वर्णन प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में तो तत्कालीन अयोध्या की राजनैतिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि का उत्कर्षपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है जिससे विदित होता है कि अयोध्या प्राचीनकाल से ही अत्यन्त समृद्ध एवं सम्पन्न नगरी थी।

सप्तम अध्याय

---

1. तदेव, 5/7

अयोध्या का धार्मिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व

प्राचीनकाल से ही अयोध्या अत्यन्त धार्मिक नगरी के रूप में विख्यात् है। सम्पूर्ण पौराणिक वाङ्मय अयोध्या नगरी की धार्मिकता, दार्शनिकता तथा आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत है। अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी राजा अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे। स्कन्द पुराण में महाराजा रघु के विषय में प्रोक्त है–

नृपञ्चक्रे ततो राज्ञं विश्वदिग्जय सञ्ज्ञितम्।

नाना सम्भार मधुरकृतं सर्वस्व दक्षिणम्।।

नाना विधेन दानेन मुनि सन्तोष हर्षकृता।

सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः।।

तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान्।

बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च।।[1]

अर्थात् महाराजा रघु ने विविध द्रव्य के ढेर को मँगवाकर अपना सर्वस्व दक्षिणा के रूप में देकर विश्वजित् यज्ञाचरण किया। उनके यज्ञ में मुनियों ने अनेक प्रकार के दान को ग्रहण किया था तथा अत्यन्त संतुष्ट हो गये। तदनन्तर सभी हर्षित होकर राजा द्वारा पूजित होकर स्वगृह चले गये।

महाभारत के द्रोणपर्व में अयोध्या की धार्मिक स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है–

ब्याप्यं कृत्स्नं जगत्कीर्त्या सुरर्षिगण सेवितः।

स प्राप्य विधिवद् राज्यंसर्वभूतानुकम्पकः।।

आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन्।

निरर्गलं राजसूयमश्वमेधं च तं विभुः।।

---

1. स्कन्द पुराण, वैभव खण्ड, 4/48–50

आजहार सुरेशस्य हविषामुदमाहरत्।

अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः।।[1]

अर्थात् देवर्षिगणों से सेवित श्रीराम ने विधिपूर्वक राज्य पाकर अपनीकीर्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर दिया और समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करते हुए वे धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे, भगवान् राम ने निर्बाध रूप से राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया और देवराज इन्द्र ने हविष्य से तृप्त करके उन्हें आनन्द प्रदान किया। राजा राम ने नाना प्रकार के दूसरे यज्ञ भी किये जो अनेक गुणों से सम्पन्न थे।

महाराजा दशरथ ने ऋष्यशृङ्ग के द्वारा एक पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाया था वह स्थान आज भी अयोध्या में प्रसिद्ध तीर्थ स्थल के रूप में विख्यात् है। वालल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

गुरूणां वचनाच्छीघ्रं सम्भाराः सम्भ्रियन्तु मे।

समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायोविमुच्यताम्।।

सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञ भूमिर्विधीयताम्।

शान्तयश्चाभिवर्धन्ता यथा कल्पं यथा विधि।।[2]

अर्थात् गुरुजनों की आज्ञा के अनुसार तुम लोग शीघ्र ही मेरे लिए यज्ञ की सामग्री जुटा दो। शक्तिशाली वीरों के संरक्षण में यज्ञिय अश्व छोड़ा जाये और उसके साथ प्रधान ऋत्विज भी रहें। सरयू के उत्तर तट पर यज्ञभूमि का निर्माण हो, शास्त्रोक्त विधि के अनुसार क्रमशः शान्ति कर्म–पुण्याह वाचन आदि का विस्तारपूर्वक अनुष्ठान किया जाये, जिससे विघ्नों का निवारण हो।

इसी तथ्य का समर्थन स्कन्द पुराण में भी प्राप्त होता है–

---

1. महाभारत, 59/8–10
2. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 12/15–16

पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिं नाम नामतः।

चकार विधवद् यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चाऽऽदरात्।।

क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरि दक्षिणम्।

यज्ञान्ते क्रतु भुक्तम् मूर्तिमान्सम दृश्यत्।।[1]

अर्थात् पूर्वकाल में राजा दशरथ ने आदरपूर्वक पुत्र कामनार्थ यहाँ पुत्रेष्टि यज्ञ किया था। राजा दशरथ ने जब प्रचुर दक्षिणा वाला पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न किया उस समय यज्ञावसान काल में हुताशन ने मूर्तिमान् होकर उनको दर्शन दिया था।

इसी प्रकार मानव धर्म, राज धर्म, पुत्र धर्म, स्त्री धर्म इत्यादि अनेकानेक धर्मों के स्वरूपों का वाल्मीकि रामायण में स्थाने–स्थाने वर्णन किया गया है। जिनका अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि तत्कालीन अयोध्या की धार्मिक स्थिति अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी।

इसी प्रकार अयोध्या के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व से पौराणिक वाङ्मय ओत–प्रोत है। अयोध्यापुरी के सन्दर्भ में स्कन्द पुराण में वर्णित है कि– जो मनुष्य इस कलिकाल में दशरथ तनय राम की अयोध्यापुरी का दर्शन करते हैं, उनको गया श्राद्ध तथा पुरुषोत्तम दर्शन इतना लाभ प्राप्त होता है–

गया श्राद्धञ्च ये कृत्वा पुरुषोत्तम दर्शनम्।

कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौ दाशरथीं पुरीम्।।[2]

---

1. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 7/2–3
2. स्कन्द पुराण, वैभवखण्ड, अयोध्या माहात्म्य, 10/28

इसी प्रकार दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व का वर्णन पौराणिक वाङ्मय में प्राप्त होता है जिससे अयोध्या नगरी की महिमा अत्यधिक गौरव को प्राप्त करती है।

अष्टम अध्याय

अयोध्या का शैक्षिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व

महाराजा मनु द्वारा स्थापित तथा इक्ष्वाकुवंशीय नरेशों द्वारा शासित यह नगरी शैक्षिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से आदिकाल से ही सर्वोन्नत अवस्था में थी। यहाँ के ब्राह्मण अत्यन्त विद्वान् तथा वेद विद्या में पारङ्गत थे। आदिकाव्य के प्रणेता स्वयं महर्षि वाल्मीकि तत्कालीन इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के गुरू माने जाते थे।

महकवि भवभूति कृत उत्तररामचरित में वर्णन प्राप्त होता है–

वसिष्ठ एव ह्याचार्यो रघुवंशस्य सम्प्रति।

स एव चानयोर्ब्रह्मक्षत्र कृत्यं करिष्यति।।

यथा वसिष्ठागिङ्गरसौ ऋषिः प्राचेसस्तथा।

जनकाणां रघूणां च वंशयोरुभयोर्गुरुः।।[1]

अर्थात् इस समय महर्षि वसिष्ठ ही रघुकुल के आचार्य हैं और वही इन दोनों बालकों (लव, कुश) के ब्राह्मणोचित (वेदाध्ययनादि) तथा क्षत्रियोचित (धनुर्वेदाध्ययनादि) कार्य सम्पन्न करेंगे। जिस प्रकार रघुवंशी और जनकवंशी इन दोनों वंशों के राजाओं के महर्षि वसिष्ठ तथा शतानन्द क्रमशः गुरू हैं, उसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि भी इन दोनों वंशों के गुरू हैं।

---

1. उत्तररामचरित, 7/14–15

तत्कालीन अयोध्या की शैक्षिक महत्ता का वर्णन स्वयं आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है कि तत्कालीन शिक्षा कितनी उत्कृष्ट कोटि की थी तथा शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत किन–किन विषयों का समावेश था। विद्यार्थी आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे।

वाल्मीकि रामायण में प्रोक्त है–

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।

भ्रातेरो स्वर सम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ।।

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठतौ।

वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत् प्रभुः।।

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।

पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरित वृतः।।

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।

जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलय समन्वितम्।।

रसैः शृङ्गार करुण हास्य रौद्र भयानकैः।

वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतद्गायताम्।।

तौ तु गान्धर्व तत्त्वज्ञौ स्थान मूर्च्छन कोविदौ।

भ्रातरौ स्वर सम्पन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ।।[1]

अर्थात् राजकुमार कुश और लव दोनों भाई धर्म के ज्ञाता और यशस्वी थे। उनका स्वर बड़ा ही मधुर था और वे मुनि के आश्रम पर ही रहते थे

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 4/5–10 (स्वर और मूर्च्छना शब्द सङ्गीत गायन विद्या से सम्बन्धित है)

उनकी धारणा शक्ति अद्भुत थी। और वे दोनों ही वेदों में पारङ्गत हो चुके थे। भगवान् वाल्मीकि ने उनकी ओर देखा और उन्हें सुयोग्य समझकर उत्तम व्रत का पालन करने वाले उन महर्षि ने वेदार्थ का विस्तार से ज्ञान कराने के लिए उन्हें सीता के चरित्र से युक्त सम्पूर्ण रामायण नामक महाकाव्य का जिसका दूसरा नाम पौलस्त्य वध या दशानन वध था, अध्ययन कराया।

वह महाकाव्य पढ़ने में, गाने में भी मधुर, द्रुत, मध्य और विलम्बित इन तीनों गतियों से अन्वित षड्ज आदि सातों स्वरों से युक्त, वीणा बजाकर स्वर और ताल के साथ गाने योग्य तथा शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर तथा भयानक आदि सभी रसों से अनुप्राणित है। दोनों भाई कुश और लव उस महाकाव्य को पढ़कर उसका गान करने लगे। वे दोनों भाई गान्धर्व विद्या (सङ्गीत शास्त्र) के तत्त्वज्ञ, स्थान और मूर्च्छना के जानकार, मधुर स्वर से सम्पन्न तथा गन्धर्वों के समान मनोहर रूप वाले थे।

उत्तररामचरितम् में कुलपति शब्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है–

अवनिरयर सिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः, स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां य प्रयोक्ता।

स च मुनि रनु यातारून्धती को वसिष्ठ स्तव, विररतुभद्रंभूयसे मङ्गलाय।।[1]

अर्थात् हम जैसों के साथ (अर्थात् तमसा जैसी नदियों और बासन्ती जैसी वन देवताओं के साथ) पृथ्वी, गङ्गा और छन्दों के सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले वह कुलपति वाल्मीकि और अरून्धती से अनुगत वह ऋषि वसिष्ठ आपके महान् कल्याण के लिए मङ्गल प्रदान करें।

उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त 'कुलपति' शब्द की विवेचना करते हुए पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी आचार्य ने वर्णन किया है–

---

1. उत्तररामचरितम्, 3/48

मुनीनां दशसाहस्त्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।

अध्यापयति विप्रार्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः।।[1]

अर्थात् जो दस हजार मुनियों को भोजन देते हुए उनका पालन–पोषण करता था और उन्हें पढ़ाता था उसे कुलपति कहते थे।

इस प्रकार अयोध्या की शैक्षिक पद्धति का उत्कर्ष पौराणिक वाङ्मय में स्थाने–स्थाने दृष्टिगोचर होता है। शैक्षिक उत्कर्ष के साथ–साथ अयोध्या की सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति भी अपने चरमोत्कर्ष अवस्था में थी। समाज में चारों वर्णों के लोग अपने–अपने वर्ण में निर्धारित धर्मों तथा कर्त्तव्यों के पालन में निरन्तर रत् रहते थे। पद्म पुराण में प्रोक्त है–

ब्राह्मण वेद सम्पन्नाः पवित्रादर्भपाणयः।

धौतोत्तरीय वलिता जग्मुः श्री रघुनायकम्।।

क्षत्रियां ये शूरतमा धनुर्बाणधरावराः।

संग्रामे बहुशोवीराजेतारोययुरप्यमुम्।।

वैश्याधनसमृद्धाश्च मुद्राशोभितपाणयः।

शुभ्रवस्त्रपरिधाना अभिजग्मुर्नरेश्वरम्।।

शूद्राद्विजेषु ये भक्ताः स्वीयाचार सुनिष्ठिताः।

वेदाचाररतायेवैतेऽपि जग्मुः पुरी पतिम्।।[2]

अर्थात् जब श्री रामचन्द्र जी वनवास से अयोध्या आये तो वैदिक ज्ञान से सम्पन्न ब्राह्मण हाथों में कुश लिए, धोती और चादर से सुसज्जित होकर श्री रामचन्द्र जी के पास गये। क्षत्रिय जिन्होंने संग्राम भूमि में उनके वीरों पर

---

1. तदेव, पृ0 263
2. पद्म पुराण, पातालखण्ड, 3/16–19

विजय पायी थी, वे धनुष–बाण धारण करने वाले श्रेष्ठ और सूरमा क्षत्रिय भी उनके समीप गये। धन–धान्य से सम्पन्न तथा समृद्ध वैश्य भी सुन्दर वस्त्र पहनकर श्रीराम के निकट उपस्थित हुए। उस समय उनके हाथ स्वर्ण मुद्राओं से सुशोभित हो रहे थे तथा वे शूद्र जो ब्राह्मणों के भक्त थे, अपने जातीय आचार में दृढ़तापूर्वक स्थित और धर्म–कर्म का पालन करने वाले थे।

इस प्रकार पौराणिक तथा लौकिक वाङ्मय के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि अयोध्या में समाज के चारों वर्णों ने वैदिक काल से ही शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सहिष्णुता की पृष्ठभूमि को प्रशस्त किया। अतः निश्चप्रचयेव अयोध्या क धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक–सांस्कृतिक आदर्श के प्रतिमान् के रूप में प्रतिष्ठित स्वीकार किया जा सकता है।

नवम अध्याय

पौराणिक अयोध्या के साम्प्रतिक वैशिष्ट्य

अयोध्या के वैशिष्ट्य पर पुराण तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों के वर्णनों से यह सर्वविदित है कि अयोध्या शताब्दियों तक सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी रही है जिसे स्वयं महाराजा मनु ने बसाया था। वाल्मीकि रामायण के साथ–साथ अनेक पुराणों ने इसे इन्द्र की राजधानी अमरावती पुरी से भी बढ़कर वैभवशालिनी बताया है। इसे स्वयं साक्षात् भगवान् विष्णु के चक्र पर अवस्थित बताया गया है। अयोध्या में महाराजा सगर, महाराजा भगीरथ, हरिश्चन्द्र, रघु, दशरथ जैसे महाप्रतापी अनेकानेक सम्राटों ने शासन किया। स्वयं परमात्मा विष्णु अपने अंशों के साथ श्रीराम रूप में अवतार लिए तथा समस्त संसार को धर्म और मर्यादा की शिक्षा दी।

सनातन धर्मियों के लिए तो अयोध्या एक प्रमुख धार्मिक केन्द्रबिन्दु ही है अपितु बौद्ध धर्म के लिए भी यहीं से प्रकाश पुञ्ज बिखरा जिसने विश्व के अनेक देशों को आलोकित किया है।

जैन धर्म में अयोध्या को प्रथम नगरी के रूप में वर्णन स्वयमेव अयोध्या के महत्त्व को दर्शाता है।

मध्यकाल में सिख धर्म के प्रथम गुरु नानकदेव, नौवें गुरु तेग बहादुर एवं दसवें गुरु गोविन्द सिंह इस धरती को पवित्र कर चुके हैं। उनकी पावन स्मृतियों में यहाँ गुरुद्वारे भी हैं।

सभी धर्मों के समय में अयोध्या के महत्त्व एवं वैभव में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु इस्लाम धर्म के भारत आगमन के पश्चात् मुस्लिम आततायियों की क्रूर दृष्टि अयोध्या पर भी पड़ी जिसके परिणाम के कुप्रभाव अयोध्या के वैभव पर भी पड़े। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जहाँ सम्पूर्ण भारत के मन्दिरों तथा प्रमुख स्थानों को नष्ट–भ्रष्ट किया वहीं अयोध्या के प्राचीन मन्दिरों तथा प्रमुख स्थानों को नष्ट किया तथा उनके नाम में परिवर्तन किया।

अयोध्या पर जब मुगल बादशाह बाबर ने सन् 1528 में आक्रमण किया जिसमें बाबर के मन्त्री मीरबांकी ने अपनी सेना के साथ पवित्र जन्मभूमि पर आक्रमण किया तथा जन्मभूमि के स्थान पर बाबरी मस्जिद का निर्माण करवाया। तभी से सनातन धर्मावलम्बी रामजन्म भूमि की मुक्ति के लिए प्रयास करने लगे तथा अनेकों हिन्दुओं ने अपना बलिदान दिया। न्यायालय में भी विवाद चलता रहा। इस प्रकार सन् 1528 ई0 से सन् 2020 तक अर्थात् 492 वर्ष के पश्चात् श्री रामजन्म भूमि तथा अयोध्या विवाद का पटाक्षेप हो पाया। इस समयावधि में अनेकानेक उतार–चढ़ाव अयोध्या ने देखे।

वर्तमान् उत्तर प्रदेश सरकार तथा भारत सरकार दोनों के संयुक्त प्रयास द्वारा पौराणिक वैभवमयी अयोध्या का भव्य तथा नव्य स्वरूप देने का प्रयास प्रारम्भ किया जा चुका है। राम मन्दिर निर्माण के साथ–साथ ही अयोध्या विश्वस्तरीय पर्यटन नगरी के रूप में विकसित हो रही है।

*****